मुद्रक—
तारकेश्वर पाण्डेय
ज्ञानपीठ लि०,
पटना।

पहली बात

आज से बीस-बाईस वर्ष पूर्व हमने विद्यार्थियों के लिए रचना की पुस्तक लिखने का प्रथम प्रयास किया था जिसके फलस्वरूप सन् १९२९ में 'रचना-मयंक' नामक पुस्तक प्रकाश में आयी। पटना विश्वविद्यालय तथा देवघर हिंदी विद्यापीठ ने उसे प्रवेशिका परीक्षा की रचना-संबंधी पाठ्य-पुस्तकों में स्थान देकर उसकी उपयोगिता की परिपुष्टि कर दी। इससे हमें प्रोत्साहन मिला और अवसर मिलने पर एक दूसरी रचना-पुस्तक प्रस्तुत करने की प्रेरणा भी जगी।

प्रस्तुत पुस्तक—'रचना-कला'—उसी प्रेरणा का फल है। गत बीस वर्षों से हिंदी-भाषा का आशातीत विकास हुआ और भारत-संघ जैसे विराट राज्य-संघ की राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठा होने के कारण इसके विकास की प्रगति में दिन-प्रतिदिन तीव्रता ही आ रही है। अतः इसकी रचना तथा व्याकरण-संबंधी बातों में युग के अनुसार नवीनता का समावेश होते रहना स्वाभाविक ही है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर हमें युग की माँग के आधार पर सर्वथा नवीन प्रणाली के अनुसार एक नवीन रचना-पुस्तक प्रकाश में लाने की आवश्यकता प्रतीत हुई और उसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए 'रचना-कला' प्रकाशित की गई है।

प्रस्तुत पुस्तक में अनेक नये-नये प्रचलित प्रयोगों, नवीन-लेखन-प्रणालियाँ तथा नये-नये विषयों को समावेश करने की चेष्टा की गई है। निबंध के चुनाव में इस बात का ध्यान रखा गया है कि पाठ्य-क्रम के अनुसार अब वे दिन लद गये जब कि विद्यार्थी गाय, घोड़ा, तोता, मैना ादि विषयों पर निबंध रट लिया करते थे और परीक्षा में उत्तीर्ण होने में अपने को समर्थ बना लेते थे। मगर अब तो विषयों के चुनाव में बहुत कुछ परिवर्तन देखा जा रहा है। विषय केवल वर्णनात्मक न होकर उपयोगी भी हों और वर्णन-शैली भी प्रचलित प्रणाली के अनुसार हो। हमने इस पुस्तक में निबंधों के चुनाव में इन बातों पर विशेष रूप से

ध्यान दिया है। इसमें जितने लेख दिये गये हैं, उनमें अधिकांश ऐसे ही अधिकारी विद्वानों के लिखे हुए हैं, जिनकी अपनी-अपनी पृथक शैली है जिसका अनुकरण करना विद्यार्थियों के लिए सर्वथा लाभप्रद है।

'पत्र-रचना' के अध्याय में भी इस पुस्तक में बिलकुल नवीन प्रणाली का अनुसरण किया गया है। युग की माँग है कि विद्यार्थि समाचार-पत्रों से संबंध रक्खें, स्थानीय समाचार आदि को समाचार-पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजा करें। सभा-सोसायटियों के कार्य-विवरणों को लिखने का उन्हें अभ्यास रहना चाहिए। विज्ञापन, नोटिस, निमंत्रण-पत्रादि लिखने में उन्हें हिचक नहीं हो। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर 'पत्र-रचना' संबंधी परिच्छेद लिखा गया है।

अंगरेजी राज्य समाप्त हो गया, मगर अँगरेजी भाषा से हिंदी में अनुवाद करने का महत्त्व पहले से विशेष बढ़ रहा है। भाषा को विभिन्न विषयों के साहित्य से भरापूरा करने के लिए इसकी आवश्यकता भी है। हमने इस पुस्तक में विद्यार्थियों की अनुवाद-संबंधी कठिनाइयों को दूर करने की भरसक चेष्टा की है। साथ ही, पुस्तक के अंत में पारिभाषिक तथा अन्य उपयोगी अंगरेजी के शब्दों के आजकल प्रयुक्त होनेवाले आधुनिक हिंदी पर्यायवाची शब्द बताते हुए एक शब्दावली भी दे दी है। हमारा विश्वास है कि अनुवाद करने की दिशा में यह शब्दावली विद्यार्थियों के मार्ग-प्रदर्शन का काम करेगी।

अंत में, हम उन विद्वानों तथा लेखकों के प्रति कृतज्ञता-प्रकाश करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, जिनके लेख हमने इस पुस्तक के निबंध-खंड में उद्धृत किये हैं।

—लेखक

विषय-सूची

[प्रथम खंड]

रचना-कला

[प्रथम खंड]

प्रथम परिच्छेद

१. भाषा की परिभाषा

भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने मनोगत भाव दूसरों पर स्पष्ट रूप से प्रगट कर सकता है और दूसरों के मनोगत भावों को समझ लेता है।

मनुष्य के मस्तिष्क में समय-समय पर जो भाव, विचार या इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं उन्हें कार्यरूप में परिणत करने के लिए दूसरों की सहायता या सम्मति की आवश्यकता पड़ती है और इसीलिए उन भावों, विचारों या इच्छाओं को दूसरों के सामने प्रगट करना पड़ता है, जो भाषा के ही द्वारा प्रगट हो सकती हैं। संसार का सारा व्यापार भाषा के ही सहारे संपन्न होता है; भाषा मनुष्य के भावों के आदान-प्रदान की साधन है और इसीलिए सांसारिक व्यवहार की भित्ति है। भाषा ही मानव-समाज को एक सूत्र में बाँधने की जबरदस्त शृंखला है। संक्षेप में, भाषा मानवों की बोलियों का संस्कृत रूप है।

अन्य सांसारिक वस्तुओं की नाईं भाषा भी परिवर्तनशील है। ज्यों-ज्यों मनुष्य के भाव तथा विचार विकसित होते जाते हैं, त्यों-त्यों उनकी भाषा भी विकसित होती जाती है। जिस भाषा का विकास या प्रवाह रुक जाता है, वह जीवित भाषा नहीं कहला सकती। साथ ही, कोई भी जीवित या प्रचलित भाषा एक सहस्राब्द से अधिक काल तक एक ही

रूप में नहीं रह सकती। आज जिस हिंदी को हमलोग व्यवहार में लाते हैं, वह पहले इस रूप में नहीं थी। जब से इसका सूत्रपात माना जाता है, अर्थात् सरहपा तथा चंदवरदाई के समय से ही आजतक न जाने, इसमें कितने परिवर्तन हुए, हो रहे हैं और होनेवाले हैं। पर हाँ, भाषा में परिवर्तन इस मंद गति से होता है कि हमें कुछ पता नहीं चलता और अंत में इन परिवर्तनों के परिमाण-स्वरूप नई-नई भाषाएँ तक उत्पन्न हो जाती है। हमारी हिंदी भी तो संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं का परिवर्तित रूप मानी जाती है।

भाषा के इस परिवर्तन-चक्र में स्थान, जलवायु और सभ्यता का सर्वोपरि प्रभाव पड़ता है। एक स्थान में जो भाषा बोली जाती है, वही भाषा दूसरे स्थान में हूबहू उसी रूप में नहीं बोली जा सकती। जलवायु के परिवर्तन से एक ही भाषा के शब्दों के उच्चारण में भेद पड़ जाता है। इसी प्रकार सभ्यता के विकास के साथ-साथ भाषा का विकास भी अवश्यंभावी है; क्योंकि सभ्यता की उन्नति और विकास के साथ-साथ नये-नये भाव और विचार उत्पन्न होते हैं जो नये-नये शब्दों की सृष्टि कर भाषा के शब्द-भांडार की वृद्धि में सहायक होते हैं।

२. भाषा का सौष्ठव

मनुष्य जिस प्रकार अपनी अन्य कृतियों को सुन्दर बनाना चाहता है, उसी प्रकार अपनी भाषा में भी सौंदर्य लाना चाहता है। भाषा में सुंदरता लाने के लिए मुख्यतः तीन बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना पड़ता है। उनमें सबसे पहली बात है—अधिक से अधिक शब्दों की जानकारी और उनके ठीक-ठीक अर्थों का ज्ञान। सभ्य, शिक्षित और समुन्नत देश की भाषा भी शिष्ट, संयत और समुन्नत होती है और उसका शब्द-भांडार भी बहुत बड़ा होता है। अतः, ऐसी भाषा पर अधिकार रखने तथा उसे सुन्दर ढंग से बोलने या लिखने के लिए उनके शब्द-भांडार के अधिकाधिक शब्दों की जानकारी रखना तथा उन शब्दों के ठीक-ठीक अर्थों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है।

भाषा को सुन्दर बनाने में सहायक है व्याकरण। समुन्नत भाषा का शब्द-भांडार तो विशाल होता ही है; साथ ही, उसका कार्य-क्षेत्र भी व्यापक होता है। अतएव, ऐसी भाषा में मनोगत भावों को व्यक्त करने की प्रणालियाँ भी बहुत बढ़ जाती हैं। ऐसी अवस्था में भाषा-संबंधी भूलों की भी पूरी गुंजाइश रहती है। इन्हीं भूलों से भाषा को परिष्कृत करने के लिए व्याकरण-शास्त्र की रचना की गई है। भाषा के नियमों को ढूंढकर उन्हें स्थिर और क्रमबद्ध करना ही व्याकरण का मुख्य काम है। किसी निश्चित और मान्य प्रणाली के अंतर्गत भाषा को क्रम-बद्ध करने से ही उसमें सुंदरता आ सकती है और यह काम है उस भाषा के व्याकरण का।

भाषा का सौंदर्य बढ़ाने में तीसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है--भाषा पर अधिकार। शब्दों का बहुत बड़ा भांडार तो हमें शब्द-कोषों में मिल जाता है। शुद्ध-शुद्ध भाषा बोलने या लिखने के नियम हमें व्याकरण-ग्रंथों में मिल जाते हैं। पर सारे कोष और सारे व्याकरण कंठाग्र कर लेने पर भी हमारी भाषा शुद्ध, संयत और मुहावरेदार नहीं बन सकती। भाषा में खूबसूरती और जान लाने के लिए हमें उस पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करना होता है और यह तभी संभव है जब कि हम भाषा पर अधिकार रखनेवालों की भाषा का मनन कर उस पर चिंतन करने का अभ्यास डालते रहें।

३. भाषा का निर्माण

भाषा का निर्माण शब्दों से होता है, अर्थात् शब्द ही भाषा-निर्माण के आधार हैं। हम अनेक प्रकार की ध्वनि या आवाज सुनते हैं। हम अपने मनोगत भावों को व्यक्त करने की चेष्टा में अपने मुँह से ध्वनि निकालते हैं। पशु-पक्षी भी अपने-अपने मन के भावों को प्रगट करने के लिए मुँह से आवाज निकालते हैं। दो या दो से अधिक पदार्थों के आपस में टकराने से भी ध्वनि सुनाई पड़ती है। जब आकाश-मंडल में बादलों के खंड आपस में टकराते हैं तब उनसे घुमड़ने की आवाज

निकलती है। किसी वस्तु से टकरा जाने पर हवा भी एक प्रकार की आवाज पैदा करती है। पहाड़ों आदि से टकरा जाने पर पानी की धारा भी शोर मचाने लगती है। इन सब ध्वनियों को हम 'शब्द' कहते हैं। संक्षेप में—

कान से जो ध्वनि या आवाज सुनाई पड़ती है उसे हम 'शब्द' कहते हैं।

लेकिन, हम जितने तरह के शब्द सुनते हैं उन सबका अर्थ हम नहीं समझ सकते। पदार्थों के टकराने से जो ध्वनि निकलती है उससे हम केवल इतना ही समझते हैं कि अमुक वस्तु से अमुक वस्तु टकरा गई है जिससे इस तरह की ध्वनि पैदा हुई है। पशु-पक्षियों की बोली से भी हम केवल इतना ही समझते हैं कि अमुक पशु या अमुक पक्षी बोल रहा है। उनकी बोलियों के चढाव-उतार, बोलियों के भारीपन या हल्कापन आदि के अनुसार हम उन बोलियों को अलग-अलग नामों से व्यक्त भी करते हैं। जैसे—हम गाय की बोली को 'डकारना' कहते हैं; बकरी की बोली को 'मेंमियाना'; हाथी की बोली को 'चिग्घाड़ना'; गदहे की बोली को 'रेंकना'; कौवे की बोली को 'काँव-काँव' करना; कबूतर की बोली को 'घुटरना'; मेंढ़क की बोली को 'टरटराना'; घोड़े की बोली को 'हिनहिनाना'; बाघ की बोली को 'गुर्राना' और बंदर की बोली को 'किकियाना' कहते हैं। मगर हम उन्हें स्पष्ट रूप से समझ नहीं सकते।

लेकिन, जब कोई मनुष्य अपने मनोगत भावों को प्रगट करने के लिए कुछ बोलता है तब उन्हें हम समझ लेते हैं। इससे प्रगट होता है कि हम दो तरह के शब्द सुना करते हैं। एक तरह के शब्द ऐसे होते हैं जिनकी ध्वनि मात्र ही हमारे कान में जाती है, उनके अर्थ हम नहीं समझ पाते। ऐसे शब्दों का न तो स्पष्ट उच्चारण कर सकते हैं और न उन्हें लिख ही सकते हैं। बहुत हुआ तो अनुकरण कर लेते है। दूसरे तरह के शब्द वे हैं जिनकी ध्वनि तो हम सुनते ही है। साथ ही, उनके अलग-अलग खंडों को भी हम स्पष्टतः सुन लेते हैं। उनके अर्थ भी समझ लेते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें लिख भी लेते है।

दो या दो से अधिक पदार्थों के आपस में टकराने से जो ध्वनि सुनाई पड़ती है या पशु-पक्षियों के मुँह से जो आवाज निकलती है--वे सभी शब्द पहले प्रकार के हैं तथा मनुष्यों के मुँह से जो ध्वनियाँ निकलती हैं वे दूसरे प्रकार के शब्दों के अंतर्गत आती है। मगर मनुष्य भी कभी-कभी आयँ-बायँ बोल देता है। कभी-कभी हमारे मुँह से ऐसे अस्फुट शब्द निकल पड़ते हैं जिन्हें दूसरे नहीं समझ पाते। ऐसे शब्दों को हम लिख तो लेते हैं, मगर उनका कोई अर्थ नहीं निकलता।

संक्षेप में, हम चार प्रकार के शब्द सुना करते हैं :--

(१) ध्वन्यात्मक शब्द—जिनकी केवल ध्वनिमात्र सुनाई पड़ती है। (२) वर्णात्मक शब्द—जिन ध्वनियों के अलग-अलग खंड भी स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ते हैं। (३) निरर्थक शब्द—जिनके अलग-अलग खड स्पष्टतः सुनाई तो पड़ते हैं, मगर शब्दों का कुछ अर्थ नहीं निकलता। (४) सार्थक शब्द—जिनके अलग-अलग खंडों का भले ही कुछ अर्थ न निकले, मगर संपूर्ण शब्दों का कुछ-न-कुछ अर्थ निकलता ही है।

जिन शब्दों का कोई अर्थ नहीं निकलता उनसे भाषा का निर्माण नहीं हो सकता। सार्थक शब्द ही भाषा-निर्माण के आधार हैं। अतः सार्थक शब्दों के व्याकरण-सम्मत प्रयोग से ही हमारी भाषा शुद्ध और परिष्कृत हो सकती है।

अभ्यास

१—भाषा किसे कहते हैं ? किन-किन परिस्थतियों में भाषा के रूप में परिवर्तन संभव है ?

२—भाषा में सौंदर्य लाने के लिए किन-किन बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना पड़ता है ?

३—शब्द किसे कहते हैं ? समझाइए कि शब्द भाषा के आधार हैं। शब्द कितने प्रकार के हैं; समझाकर लिखिए।

दूसरा परिच्छेद

१. शब्दों का वर्गीकरण

किसी समय हमारे देश में अधिकांश पढ़े-लिखे लोगों की भाषा संस्कृत थी और साधारण बोलचाल की भाषा प्राकृत कहलाती थी। कालांतर में संस्कृत का प्रचार कम होने लगा। उसके बदले प्राकृत भाषा का प्रचार इतना बढ़ा कि उसी में साहित्य भी रचा जाने लगा। पश्चात् प्रत्येक प्रदेश की प्राकृत भी एक दूसरी से कुछ-कुछ भिन्न होती गयी तथा स्थान-स्थान पर अपभ्रंश भाषाओं का विकास और प्रचार हुआ। उन्हीं अपभ्रंश भाषाओं से हिंदी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाएँ निकली हैं। यही कारण है कि हिंदी भाषा में मुख्यतः दो प्रकार के शब्द मिलते हैं—एक तो वे शब्द, जो प्राकृत तथा अपभ्रंश के द्वारा अपना रूप बदलते हुए आजतक हिंदी में बोले जा रहे हैं। ऐसे शब्द 'तद्भव' कहलाते हैं। 'तद्भव' शब्द ही हिंदी भाषा की अपनी पूंजी हैं, क्योंकि हिंदी शब्द-भांडार के अधिकांश शब्द तद्भव रूप में ही प्रयोग में आ रहे हैं। हिंदी की प्रायः सभी क्रियाएँ और सर्वनाम तथा अधिकांश संज्ञाएँ, विशेषण और क्रियाविशेषण तद्भव ही हैं।

दूसरे प्रकार के वे शब्द हैं, जो संस्कृत के हैं और वे अपने मूल रूप में ही—विकृत रूप में नहीं—हिंदी में व्यवहृत होते आ रहे हैं। ऐसे शब्द 'तत्सम' कहलाते हैं। हिंदी का शब्द-भांडार दिनोंदिन विशाल होता जा रहा है। इसे राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त हो चुका है; इसलिए इसमें विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि विषयों के नये-नये शब्दों को गढ़ने की आवश्यकता आ पड़ी है। यही कारण है कि भाषा-विज्ञान के मर्मज्ञ प्रत्यक्ष रूप से संस्कृत के सैकड़ों शब्दों को हिंदी में प्रविष्ट कराने में सतत प्रयत्नशील हैं और इससे तत्सम शब्दों की संख्या दिन-दिन बढ़ती ही जाती है।

हिंदी में तीसरे प्रकार के कुछ ऐसे शब्द मिलते हैं जो आवश्यकतानुसार समय-समय पर गढ़ लिये गये हैं और उनका प्रचार इतना बढ़ गया है कि वे भाषा में प्रचलित हो गये हैं। ऐसे शब्द 'देशज' कहलाते हैं। कुछ ऐसे भी शब्द 'देशज' मान लिये गये हैं जिनके संबंध में अवतक निश्चित नहीं हो सका है कि वे कहाँ से टपक पड़े हैं। जब ऐसे शब्दों के उद्गम का पता लग जाता है तब वे 'देशज' के अंतर्गत नहीं आते। उदाहरण के लिए, 'पिल्ला' शब्द दक्षिण भारत की किसी भाषा से भटक कर हिंदी में प्रविष्ट हो गया है, मगर अवतक हम इसे 'देशज' ही मानते आ रहे हैं। जिस 'लीची' शब्द को हम अवतक देशज मानते आ रहे हैं वह चीनी भाषा का शब्द है।

प्रायः सभी भाषाओं में अनुकरण के द्वारा बहुतेरे शब्द बनते रहते हैं। कौआ 'कां-कां' करता है, इसी हेतु संस्कृत में उसका नाम 'काक' पड़ा और हिंदी में वह 'कौआ' हो गया। एक पक्षी 'पी-पी' रटता है; हमने उसका नाम पपीहा रख दिया। बकरी 'में-में' करती है; हम उसकी बोली को 'मेंमियाना' कहने लगे। इस प्रकार अनुकरण के आधार पर गढ़े गये सभी शब्द '**अनुकरणवाचक**' कहलाते हैं।

हिंदी में बहुत-से शब्द दूसरी भाषाओं से भी आ गये हैं और दिन-प्रति-दिन आते ही रहते हैं। हिंदी भाषा-भाषी लोगों को जब-जब दूसरी भाषाओं के बोलनेवालों से संपर्क हुआ, तब-तब पराई भाषाओं के कुछ शब्द हिंदी में स्थान पाते गये। मुस्लिम शासन के युग में अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओं के बहुतेरे शब्द हिंदी में घुस पड़े। पुर्त्तगीज आदि विदेशी व्यापारियों तथा पादरियों ने भी हिंदी को अनेक शब्द दिये। अंगरेजों के संपर्क से अंगरेजी भाषा के तो सैकड़ों शब्द धड़ल्ले के साथ व्यवहार में आने ही लगे हैं। मराठी, बँगला, गुजराती आदि भाषाओं के भी अनेकानेक शब्द हिंदी में व्यवहृत हो रहे हैं। संक्षेप में, संस्कृत-प्राकृत को छोड़कर दूसरी-दूसरी भाषाओं के जितने शब्द हिंदी में प्रचलित है, वे '**परकीय**' कहलाते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि हिंदी में जितने शब्द प्रचलित हैं, वे मुख्यतः पाँच वर्गों में विभक्त हैं :—

(१) तद्भव—मुँह, रात, खेत, आँख, मिट्टी, ससुराल, प्यास, नींद, माय, घर, हाथ, गहरा, हाथी, आग, कड़वा, तीता, खपड़ा, गोबर आदि।

(२) तत्सम—माता, पिता, मनुष्य, देवता, ग्रह, नक्षत्र, तारा, मनुष्य, देव, तंत्र-मंत्र, छिद्र, कपाट, मस्तक, राष्ट्र, राज्य, नारिकना, प्रशस्त आदि।

(३) देशज—खिड़की, रद्दा, लगभग, लच्छा, बाप, घेटा, डाभ, डोंगी, पेट, ऊँघना, ढेंकी, खोंपा, समाठ, समौआ, सोहनी, झींगा आदि।

(४) अनुकरणवाचक—खटखट, चटपट, चमचमाना, टनटन, झनझनाना, ढनमनाना, पटाका, सिटकिनी, मुट्ठमुथ्या आदि।

(५) परकीय—फारसी के शब्द—बंदोबस्त, दस्तावेज, खरीद, गुमाश्ता, आदमी, कमर, चाकू, शर्म, जहान, गुलाब, बुलबुल, शाह, अमीर, उस्ताद, शौक, खून, गर्म, सूद, होश, दूकान, हलका, पतला आदि।

अरबी के शब्द—गरीब, फकीर, कुदरत, आदत, इज्जत, हक, साहब, किस्सा, हुक्म, माफ, बाद, नकल, मालिक, इश्तिहार, मोकाबिला, हाकिम, नालिश, हाल, मालूम, खराब, खलीफा, हुक्का, किताब, अदालत, हाकिम, मोकदमा, औरत, अदब, हराम, कसर, अजनबी, इम्तहान आदि।

पुर्त्तगीज भाषा के शब्द—कमरा, नीलाम, गिर्जा, बाल्टी, बुताम, साबुन, मेज, फर्मा, अलमारी, पादरी, गुदाम आदि।

तुर्की के शब्द—तोप, तमगा, कोतल, उर्दू, कुली, कालीन, दारोगा, बहादुर, बाबु, बावर्ची, काबू, आगा आदि।

अंगरेजी के शब्द—रेल, सिगनल, मास्टर, लाइन, स्टेशन, डाक्टर, कंट्रोल, रेशन, कार्ड, कोटा, कलक्टर, मजिस्ट्रेट, कमीशन, परमिट, काउंसिल, पाउंड, थियेटर, अरदली, रसीद, स्कूल, स्कालरशिप, फुटबॉल, सेक्रेटरी, सर्टिफिकेट, डिस्ट्रिक्टबोर्ड, युनियनबोर्ड, म्युनिसिपैलिटी, टिकट, नोटिस, इंजिन स्टीमर, इंच, लालटेन, बक्स, पेंसिल, सिलेट, लान, वोट, चीटो, कोट, पैंट, कमीशन, बिल, कंपनी, नेशनल आदि।

मराठी के शब्द—चालू, लागू, प्रगति, आभार, वाड़ा आदि।

बंगला के शब्द—प्राणपण, गल्प, अनुशीलन, नितांत, वाध्य, संभ्रांत, भद्रलोक, वाटी, प्रगति, उपन्यास आदि।

२ तत्सम और तद्भव का व्यापक अर्थ

पहले कहा जा चुका है कि हिंदी में संस्कृत भाषा के जो शब्द ज्यों के त्यों आ गये हैं, वे तत्सम कहलाते हैं और जो प्राकृत या अपभ्रांश के द्वारा अपना रूप बदलते हुए हिंदी में व्यवहृत होने लगे हैं, वे तद्भव कहलाते हैं। तत्सम का अर्थ ही है 'उसके समान' या 'ज्यों का त्यों'। अतः अगर तत्सम और तद्भव का मूल और व्यापक अर्थ लिया जाय, तो विदेशी या परकीय भाषाओं के शब्द भी हिंदी में तत्सम और तद्भव, दोनों रूपों में व्यवहृत होते हैं। उदाहरण के लिए, जवाब, सवाल, कागज, जरूरत, कैंची, कोट, रेडियो, बल्ब, फुट, बूट आदि परकीय शब्द तत्सम रूप में हिंदी में चलते हैं। मगर, 'सड़क' अरबी के 'शरक' का तद्भव रूप है। इसी प्रकार 'मास्टर' का 'मिस्तरी', 'रद' का 'रद्दी', 'रबर' का 'रबड़', 'पैंटलून' का 'पतलून', 'प्लैट्रून' का 'पलटन' तथा 'कोचमैन' का 'कोचवान' तद्भव रूप हैं।

यहाँ पर यह ध्यान देना आवश्यक है कि सभी भाषाओं में बहुतेरे शब्द ऐसे हैं, जिनके कई अर्थ होते हैं। ऐसे शब्द जब हिंदी में तत्सम रूप में लिये जाते हैं, तब यह जरूरी नहीं होता कि उनके सभी अर्थ लिये जायँ। कभी तो उनके एक या दो अर्थ लिये जाते हैं और कभी सभी अर्थों में हम उनका प्रयोग करते हैं। कुछ ऐसे भी तत्सम रूप हैं, जिनके अर्थ, लिंग या वचन भी हिंदी में आने पर बदल गये हैं।

प्रायः यह भी देखा जाता है तद्भव शब्दों के लिए यह प्रतिबंध भी नहीं रहता कि वे अपने मूल शब्दों के अर्थ में ही प्रयुक्त हों। उदाहरण के लिए, 'स्थान' तत्सम है और 'थान' या 'बथान' तद्भव; मगर जहाँ 'स्थान' 'जगह' के अर्थ में आता है, वहाँ, 'थान' केवल 'देवस्थल' के अर्थ

में और 'वथान' ढोरों के निवास-स्थल के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इसी तरह 'कंकाल' तत्सम है तथा 'कंगाल' तद्भव। मगर जहाँ 'कंकाल' हड्डियों की 'ठठरी' के अर्थ में आता है, वहाँ 'कंगाल' का अर्थ होता है 'महादरिद्र'। 'अग्नि' और 'आत्मा' संस्कृत में पुंल्लिग हैं तो हिंदी में उन्हें स्त्रीलिंग माना जाने लगा है। 'तारा' और 'देवता' संस्कृत में स्त्रीलिंग है, मगर हिंदी में ये पुल्लिग में आते हैं।

एक वात और। जव किसी भी भाषा के तत्सम शब्द तद्भव रूप में हिंदी में आते हैं तव वे शब्द हिंदी भाषा के हो जाते हैं और हम हिंदी-व्याकरण के नियमानुसार उनके अनेक रूप वना लेते हैं। उदाहरण के लिए, हम 'वढ़ना' से 'वढ़ियाँ', 'घटना' से 'घाटा' और 'आलू' से 'कचालू' शब्द गढ़ लेते हैं। यही क्यों, हम अरवी के 'जिला' शब्द में हिंदी का 'अधीश' जोड़कर 'जिलाधीश'; अंग्रेजी के 'रेल' में 'घर' मिलाकर; 'रेल-घर'; हिंदी के 'राज' में अरवी का 'महल' जोड़कर 'राज-महल'; अंगरेजी के 'जेल' में फारसी के 'खाना' को मिलाकर 'जेलखाना' आदि वना लेते हैं। यहाँ तक हिंदी के 'पता' में अरवी उपसर्ग 'ला' जोड़कर 'ला-पता' तक वना लेते हैं।

वास्तविक वात यह है कि भाषा का सौंदर्य वढ़ाने के लिए नहीं, वल्कि आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही हिंदी में अरवी, फारसी, अंगरेजी आदि परकीय भाषाओं के शब्द लिये गये हैं या लिये जा रहे हैं। इसलिए, जव ऐसे शब्दों का वोलचाल के या सुवोध रूप में व्यवहार नहीं किया जायगा तव व्यर्थ ही उन्हें हिंदी में घुसेड़ने की आवश्यकता ही क्या है? अतः ऐसे शब्दों की उच्चारण आदि जटिलता को दूर करके ही उनका व्यवहार युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

[१] संस्कृत के कुछ ऐसे शब्द जिनके तत्सम और तद्भव, दोनों रूप हिंदी में आते हैं—

तत्सम	तद्भव	तत्सव	तद्भव
अज्ञान	अजान	गंभीर	गहरा

तत्सम	तद्भव	तत्सम	तद्भव
अनार्य	अनाड़ी	घृत	घी
आश्रय	आसरा	छत्र	छाता
उद्घाटन	उघारना	सौभाग्य	सुहाग
कपोत	कबूतर	धूम्र	धुँआ
कुंभकार	कुम्हार	सूत्र	सूत
कोकिल	कोयल	नृत्य	नाच
केवल	कोरा	ध्वनि	धुनि
ग्राम	गाँव	क्षेत्र	खेत
दुग्ध	दूध	दधि	दही
पृष्ठ	पीठ	ज्येष्ठ	जेठ

इनमें कुछ ऐसे शब्द हैं जिनके तद्भव रूप का अर्थ तत्सम रूप के अर्थ से कुछ भिन्न हो जाता है।

[२] संस्कृत के कुछ ऐसे शब्द, जिनके तत्सम प्रायः हिंदी में अब प्रयुक्त नहीं होते—

तत्सम	अपभ्रंश	तत्सम	अपभ्रंश
अहिफेन	अफीम	चंचु	चोंच
आमलक	आँवला	घट्ट	घट
आम्र	आम	गोविट्	गोबर
उष्ट्र	ऊँट	त्वरित	तुरंत
खट्वा	खटिया	उद्वर्तन	उबटन
चुल्लिका	चूल्हा	खर्पर	खपड़ा
चतुष्पादिका	चौकी	तिक्त	तीता
शलाका	सलाई	निरालय	निराला

[३] अरबी-फारसी के कुछ तत्सम तथा तद्भव रूप—

तत्सम	तद्भव	तत्सम	तद्भव
क़दरदाँ	कदरदान	ख़ूराक	खुराक

तत्सम	तद्भव	तत्सम	तद्भव
इश्तहार	इस्तहार	रफ़अ	रफा
तअ़रीफ	तारीफ	बअ़नामा	बैनामा
मुतवफ़ा	मोताफा	दफ़अ़ा	दफा
कुबूल	कबूल	तअ़लीम	तालीम
तअ़ज्जुब	ताज्जुब	मअ़मूली	मामूली
मुआफ़	माफ	ख्वाहमख्वाह	खामखाह
जामअ़मसजिद	जुम्मामसजिद	कमख्वाब	कीनखाब

[४] अंगरेजी के कुछ तत्सम और उनके तद्भव रूप—

तत्सम	तद्भव	तत्सम	तद्भव
एंजिन	इंजिन	स्लेट	सिलेट
समन्स	सम्मन	फ्लौनिन	फलालैन
लौंगक्लाथ	लंकलाट	टरपेंटाइन	तारपीन
डौक्टर	डाक्टर	थियेटर	थेटर
बौट्ल	बोतल	माइल	मील
लैनटर्न	लालटेन	रिसीट	रसीद
इंडोचीन	हिंदचीन	इंडोनेशिया	हिंदेशिया

अभ्यास

(१) हिंदी भाषा में प्रचलित शब्दों का स्पष्ट रूप में वर्गीकरण कीजिए।

(२) तत्सम और तद्भव से क्या समझते हैं ? समझाकर लिखिए।

(३) निम्नलिखित भाषाओं के हिंदी में प्रचलित पाँच शब्दों के तत्सम और तद्भव रूप दरसाए:—संस्कृत, अरबी, अंगरेजी ।

(४) संस्कृत, अंगरेजी, फारसी और अरबी भाषा के ऐसे दस-दस शब्दों के नाम बताइए जो हिंदी में व्यापक रूप से प्रचलित हो ।

(५) इनके मूल शब्द बताइए—
हाथी, घोड़ा, तोता, दाँत, सत्तू, नाच, चूल्हा, कुम्हार, और पीठ।

तीसरा परिच्छेद

१. शब्दों के प्रकार

कई वर्णों के मिलने से जब कोई अर्थ प्रगट होता है तभी शब्दों का सार्थक रूप सामने आता है। सार्थक शब्दों से ही भाषा का निर्माण होता है। ऐसे शब्दों के खंड 'शब्दांश' कहलाते हैं। 'घोड़ा' शब्द दो शब्दांशों के संयोग से गठित हुआ है—'घो' और 'ड़ा'। दोनों शब्दांश अलग-अलग निरर्थक हैं; जब दोनों मिल गये तब एक सार्थक शब्द बना। कुछ ऐसे भी शब्द मिलते हैं, जिनके खंड भी सार्थक शब्दों की तरह अर्थ रखते हैं और खंडों के मिला देने से जो अर्थ निकलता है, वह कुल खंडों के अर्थ का द्योतक होता है। जैसे; 'विद्यालय' में दो खंड हैं—'विद्या' और 'आलय' जिसका अर्थ है 'विद्या का घर' या स्कूल, जहाँ विद्या पढ़ी-पढ़ाई जाती है। इस प्रकार व्युत्पत्ति के विचार से सार्थक शब्द दो प्रकार के हुए—(१) वे, जिनके खंड सार्थक नहीं होते। ऐसे शब्द '**रूढ़**' कहलाते हैं। (२) वे, जिनके खंड भी सार्थक होते हैं। ऐसे शब्द '**यौगिक**' कहलाते हैं। दो या अधिक रूढ़ शब्दों के मेल से यौगिक शब्द बनते हैं।

कभी-कभी यौगिक संज्ञा-शब्द अर्थ के विचार से रूढ़ हो जाते हैं। ऐसे शब्द बनते तो हैं प्रायः यौगिक शब्दों की ही तरह, लेकिन वे अपने सामान्य अर्थ को छोड़कर किसी विशेष अर्थ के द्योतक होते हैं। संक्षेप में, जब यौगिक संज्ञा-शब्द अपने सामान्य अर्थ को छोड़कर विशेष अर्थ जताते हैं तब वे '**योगरूढ़**' संज्ञा कहलाते हैं। कभी-कभी रूढ़ संज्ञा-शब्द भी विशेष अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जैसे;

यौगिक शब्द विशेष अर्थ में—पंकज, लंबोदर, चक्रपाणि, त्रिफला, त्रिशूलधारी, जलज आदि।

रूढ़ शब्द विशेष अर्थ में—सिनेट, कांग्रेस आदि ।

शब्दांशों या शब्दों के मेल से नये शब्द बनाने की प्रक्रिया को 'व्युत्पत्ति' कहते हैं ।

शब्दार्थ के विचार से जितने सार्थक शब्द हो सकते हैं, उनके मुख्यतः तीन विभाग हैं । हम जितनी भी स्थूल या सूक्ष्म, दृश्य या अदृश्य, ज्ञात या अज्ञात वस्तुओं को भाषा के द्वारा व्यक्त करना चाहते हैं, उनके लिए अलग-अलग शब्दों का प्रयोग करते हैं और ऐसे सभी शब्द 'संज्ञा-शब्द' कहलाते हैं । जितने संज्ञा-शब्द हैं उनके कार्यों को सूचित करने के लिए हम एक दूसरे प्रकार के शब्द काम में लाते हैं और ऐसे शब्द 'क्रिया-शब्द' कहलाते हैं । इनके अतिरिक्त वाक्य में प्रयुक्त शब्दों का पारस्परिक संबंध बतलाने, उन्हें मिलाने या पृथक करने, क्रिया-शब्दों के काल, माप, परिमाण आदि सूचित करने आदि के लिए भी हम कुछ शब्दों का प्रयोग करते हैं और ऐसे शब्द 'अव्यय' कहलाते हैं । इस प्रकार कुल सार्थक शब्द शब्दार्थ के विचार से मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं—

(१) संज्ञा—वस्तुओं के नाम के लिए आनेवाले सार्थक शब्द संज्ञा कहलाते हैं । जैसे; घोड़ा, गाय, राम, कृपा, दया आदि ।

(२) क्रिया—वैसे शब्द, जो काम करने या होने का भाव प्रगट करते हैं, क्रिया कहलाते हैं । जैसे; जाना, खाना देखना आदि ।

(३) अव्यय—शब्दों का मेल या संबंध दिखाने, क्रिया की विशेषता बतलाने आदि के लिए जो शब्द प्रयोग में आते हैं, वे अव्यय कहलाते हैं । जैसे; ज्यों, त्यों अब, तब आदि ।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के शब्दों में से संज्ञा और क्रिया-शब्दों के रूप बदलते रहते हैं, यानी उनमें लिंग, वचन, कारकादि के कारण विकार उत्पन्न होता रहता है । इसलिए, वे शब्द 'विकारी' कहलाते हैं ।

लेकिन अव्यय-शब्दों के रूप ज्यों के त्यों रहते हैं, उनमें कभी विकार उत्पन्न नहीं होता । अतः वे 'अविकारी' कहलाते हैं ।

संज्ञा शब्द के दो और प्रभेद मान जाते हैं। कुछ ऐसे शब्द हैं, जो संज्ञा-शब्दों के बदले में प्रयोग में आते हैं और ऐसे शब्द 'सर्वनाम' कहलाते हैं। साथ ही, कुछ ऐसे भी शब्द हैं, जो संज्ञा-शब्दों की विशेषता बतलाते हैं और ऐसे शब्द विशेषण कहलाते हैं। संक्षेप में—

(१) संज्ञा-शब्दों के बदले में आनेवाले शब्द **'सर्वनाम'** कहलाते हैं। जैसे; मैं, वह, तुम आदि।

(२) संज्ञा-शब्दों की विशेषता बतलानेवाले या उन्हें मर्यादित करनेवाले शब्द **'विशेषण'** कहलाते हैं। जैसे; लाल, पीला, लंबा, चौड़ा, विशाल आदि।

२. शब्दों की बनावट

कहा जा चुका है कि दो या दो से अधिक रूढ़ शब्दों की मिलावट से यौगिक शब्द गठित होते हैं। प्रायः देखा जाता है कि हिंदी में ऐसे शब्द तीन प्रकार से संगठित होते हैं—

(१) शब्दों के पूर्व उपसर्ग जोड़कर, (२) शब्दों के परे प्रत्यय लगा कर और (३) सामासिक रीति के अनुसार। इसके अतिरिक्त एक ही शब्दों को दुहराने से तथा दो समान या विपरीत अर्थ प्रदर्शित करनेवाले शब्दों को मिलाने से भी नये शब्द गठित होते हैं।

(१) उपसर्ग

(क) कुछ शब्दांश या अव्यय धातु के साथ मिलकर विशेष अर्थ प्रगट करते हैं। ऐसे शब्दांश या अव्यय 'उपसर्ग' कहलाते हैं। उपसर्ग शब्दों के पहले जोड़ा जाता है और जुटकर मूल शब्दों के अर्थ में विशेषता उत्पन्न कर देता है। उपसर्गों के जुटने से कभी तो मूल शब्दों के अर्थ में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता, कभी शब्दों का अर्थ उलटा हो जाता है और कभी शब्दार्थ में विशेषता उत्पन्न हो जाती है। जैसे 'भ्रमण' शब्द के पहले 'परि' उपसर्ग जोड़ने से 'परिभ्रमण' शब्द बनता है जो मूल शब्द 'भ्रमण' के ही अर्थ में प्रत्युक्त होता है, परंतु 'गमन' शब्द के पहले 'आ' उपसर्ग लगाने से जहाँ 'गमन' का अर्थ 'जाना' होता है, वहाँ 'आगमन'

का अर्थ 'आना' हो जाता है। फिर 'पूर्ण' के पहले 'परि' उपसर्ग जोड़ने से 'परिपूर्ण' शब्द के अर्थ में विशेषता आ जाती है।

संस्कृत के निम्नलिखित उपसर्ग हिंदी में व्यवहृत होते हैं—

प्र—अतिशय, उत्कर्ष, यश, उत्पत्ति और व्यवहार के अर्थ को प्रदर्शित करता है। जैसे—प्रपंच, प्रबल, प्रताप, प्रमुख आदि।

परा—विपरीत, नाश आदि का प्रकाशक है। जैसे—पराजय, पराभूत, पराभव, पराङ्मुख आदि।

अप—विपरीत, हीनता आदि का द्योतक है। जैसे-अपकार, अप-प्रयोग, अपमान, अपयश आदि।

सम—सहित, उत्तमता आदि का द्योतक है। जैसे—संतुष्ट, संस्कृत, संस्कार, सम्मान आदि।

अनु—सादृश्य, क्रम, पश्चात् आदि का द्योतक है। जैसे—अनुताप, अनुनय, अनुशीलना अनुकूल, अनुरूप आदि।

अव—अनादर, हीनता आदि का प्रकाशक है। जैसे—अवनति, अवशेष, अवधारण आदि।

निर—निषेधार्थक है। जैसे—निर्भय, निर्लेप, निर्गंध, निर्मल, निराकरण, निर्निमेष, निरवलंब, निश्चय आदि।

अभि—अधिकता या इच्छा प्रदर्शित करता है। जैसे—अभिभावक, अभियान. अभिशाप, अभिप्राय, अभियोग आदि।

अधि—प्रधानता, निकटता आदि के अर्थ में। जैसे—अधिष्ठाता, अधिनायक, अधिराज आदि।

वि—हीनता, विभिन्नता, विशेषता, असमानता आदि अर्थों का द्योतक है। जैसे—विलाप, विकार, विनय, वियोग, विशेष, विभिन्न, विनाश, विषम, विषाद, विभाग आदि।

सु—उत्तमता और श्रेष्ठता के अर्थ में। जैसे—सुयश, सुयोग, सुकर्म, सुदर्शन, सुगम, सुभाषित आदि।

उत्—उत्कर्ष का प्रकाशक है। जैसे—उदय, उद्‌गार, उद्दाम, उद्धत, उत्कर्ष, उत्कंठा आदि।

अति—अतिशय, उत्कर्ष आदि का द्योतक है। जैसे— अतिशय, अतिचार, अत्यंत, अत्यानंद आदि।

नि—अधिकता और निषेध के अर्थ में। जैसे—नियोग, निवारण।

प्रति-प्रत्येक, बराबरी, विरोध, परिवर्तन आदि अर्थों का द्योतक है। जैसे—प्रतिदिन, प्रत्येक, प्रतिशोध, प्रतिहिंसा, प्रतिकूल, प्रतिलोम आदि।

परि—अतिशय, त्याग आदि का द्योतक है। जैसे—परिशीलन, परिदोष, परिदर्शन ,परिपक्व, परिचय आदि।

आ—सीमा, विरोध, ग्रहण, चढ़ाव, उतराव, विपरीत आदि अर्थ को प्रदर्शित करता है। जैसे—आजीवन, आगमन, आदान, आकर्षण, आजन्म, आक्रोश, आमरण, आमुख आदि।

उप—हीनता, निकटता और सहायता के अर्थ में। जैसे—उपमंत्री, उपकूल, उपकार, उपवन, उपसंपादक आदि।

दुर—क्लिष्टता, दुष्टता, हीनता आदि के अर्थ में। जैसे—दुरवस्था, दुर्दशा, दुर्लभ, दुर्जन, दुर्दमनीय, दुर्लंघ्य आदि।

[ख] उपर्युक्त उपसर्गों के अतिरिक्त नीचे लिखे अव्यय, विशेषण और अन्य शब्द भी उपसर्ग के रूप में शब्दों के साथ जुट कर सामासिक शब्दों की सृष्टि करते हैं:—

अ (अन)—निषेधार्थक है। जैसे—अनंत, अज्ञान, अनादि।

पुनः—दुहराने के अर्थ में। जैसे—पुनर्जन्म, पुनरुक्ति आदि।

अधस्—पतन के अर्थ में। जैसे—अधःपतन, अधोमुख, अधोगति।

सह, ह—संयोग, साथ आदि के अर्थ में। जैसे—सहवास, सहगामी, सहचर, सहयोग, सफल आदि।

सत्—सचाई का द्योतक है। जैसे—सद्भाव, सत्कर्म, सद्वृत्ति, सदाचार, सदिच्छा, सन्मार्ग, सद्विवेक आदि।

चिर—अधिकता के अर्थ में। जैसे—चिरकाल, चिरंजीव, चिरदिन, चिरंतन आदि।

दिक्—दिग्पाल, दग्भ्रम, दिगंत, दिग्शूल, दिग्दर्शन आदि।

धर्म—धर्मबुद्धि, धर्मभीरु, धर्म्मात्मा आदि।

अर्थ—अर्थकरी, अर्थशास्त्र, अर्थहीन आदि।

अंत:—अंतष्करण, अंतस्सलिला, अंतर्प्रदेश, अंतर्राष्ट्रीय, अंतर्द्वन्द्व।

आत्म—आत्मसम्मान, आत्मरक्षा, आत्मश्लाघा, आत्मसंयम, आत्म-विश्वास, आत्मरूप आदि।

मन:—मनोहर, मनोयोग, मनोनुकूल, मनोज, मनसिज आदि।

कर्म—कर्मनिष्ठ, कर्मशील, कर्मयोग, कर्मवीर, कर्मनाशा आदि।

बल, वीर—बलशाली, बलहीन, बलप्रयोग, वीर-वाणी आदि।

विश्व—विश्वप्रेम, विश्वव्यापी, विश्वनाथ आदि।

राज—राजकर, राजदंड, राजद्रोह, राजधानी आदि।

लोक—लोकमत, लोकसंग्रह, लोकप्रिय, लोकगीत आदि।

सर्व—सर्वसाधारण, सर्वसम्मत, सर्वनाम, सर्वश्रेष्ठ, सार्वभौम, सार्वजनिक, सर्व-धर्म-समन्वय आदि।

[नोट—उपर्युक्त शब्दों में कुछ तो सामासिक शब्द हैं और कुछ संधि के नियमों से गठित है।]

[ग] हिंदी के कुछ उपसर्ग

अ—निषेध अर्थ में। जैसे—अमोल, अनमोल, अपढ़, अनपढ़, अगाध, अजान, अनजान, अनगढ़ आदि।

अध—आधा के अर्थ में। जैसे—अधजला, अधपका आदि।

नि—निषेध अर्थ में। जैसे—निडर, निकम्मा, निपूता।

सु (स)—उत्तमता के अर्थ में। जैसे—सुडौल, सुघड़, सुजान, सुखद, सुपात्र, सुअवसर, सपूत आदि।

कु (क)—बुराई, हीनता आदि के अर्थ में। जैसे—कुखेत, कुपात्र, कुघड़ी, कुकाठ, कुमार्ग, कुअवसर, कपूत आदि।

मुँह--(उपसर्गवत्) मुंहझौंसा, मुंहजरा, मुंहमाँगा, मुंहलगा आदि।

[घ] उर्दू के कुछ उपसर्ग

खुश--खुशमिजाज, खुशदिल, खुशबू, खुशहाल आदि।

गैर--गैरमुमकिन, गैरहाजिर, गैरमुनासिब आदि।

ला--लाजवाब, लाहिसाब, लापरवाह, लामालूम आदि।

ब--बदस्तूर, बमूजिब, बजिन्स आदि।

बा--बाकलम, बावफा, बाइंसाफ, बाकायदा आदि।

बे--बेलगान, बेवफा, बेफायदा, बेईमान, बेइंसाफ आदि।

दर--दरअसल, दरहकीकत, दरपेशी, दरकार आदि।

बद--बदनसीब, बद्दुआ, बदमाश, बदनाम, बदनीयत आदि।

ना--नालायक, नासमझ, नाचीज आदि।

नेक--नेकनीयत, नेकचलन, नेकनाम आदि।

हर--हररोज, हरएक, हरसाल आदि।

सर--(उपसर्गवत्) सरताज, सरदार, सरपंच आदि।

[नोट--याद रहे कि संस्कृत के उपसर्ग संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ, हिंदी के उपसर्ग तद्भव या विशुद्ध हिंदी के शब्दों के साथ और उर्दू के उपसर्ग उर्दू के शब्दों के साथ जोड़े जाते हैं। हाँ, एकाध हिंदी के शब्दों के साथ उर्दू के उपसर्ग भी जुट गये हैं और ऐसे शब्दों का चलन चल गया है। जैसे--लापता।]

[ङ] एक ही शब्द में प्रयुक्त अनेक उपसर्ग

कृत धातु से कार—आकार, प्रकार, विकार, उपकार, साकार, प्रतिकार, से निराकार, संस्कार, कलाकार आदि।

भू धातु से भव—संभव, पराभव, उद्भव, अनुभव, प्रभाव, अभाव, विभाव, अनुभाव आदि।

हृ धातु से हार—आहार, विहार, प्रहार, संहार, व्यवहार आदि।

दिश् धातु से देश--आदेश, विदेश, उपदेश आदि।

चर धातु से चार—आचार, विचार, प्रचार, संचार, व्यभिचार, उपचार, अतिचार, अत्याचार, सदाचार आदि।

क्रम--अतिक्रम, उपक्रम, पराक्रम, विक्रम आदि।

मल—निर्मल, विमल, परिमल, अमल आदि।

(२) प्रत्ययांत यौगिक शब्द

शब्दों के अंत में प्रत्यय जोड़कर यौगिक शब्द बनाये जाते हैं। हिंदी भाषा मे प्रयुक्त कितने प्रत्यय तो हिंदी के है और कितने संस्कृत के। तत्सम शब्दों में संस्कृत के ही प्रत्यय संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार जुटते है। प्रत्यय दो प्रकार के होते है--कृत् और तद्धित।

क्रिया या धातु के अंत में जो प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं उन्हें कृत् प्रत्यय कहते हैं और उनके मेल से बने शब्द कृदंत कहलाते हैं।

उसी प्रकार संज्ञा तथा विशेषण शब्दों के अंत में जो प्रत्यय जुटते हैं वे तद्धित कहलाते हैं और उनके मेल से बने शब्द तद्धितांत कहलाते हैं।

[क] कृदंत

यों तो संस्कृत में सैकड़ों प्रत्यय व्यवहृत होते हैं, मगर यहाँ पर सब की चर्चा करना व्यर्थ है। केवल हिंदी शब्दों के साथ जुटनेवाले मुख्य-मुख्य प्रत्ययों का दिग्दर्शन कराया जाता है। कृत् प्रत्यय के संयोग से क्रियाएँ या धातुएँ संज्ञा और विशेषण के रूप में परिणत हो जाती हैं।

अक, अन, क्ति आदि प्रत्ययों के योग से बने संज्ञा-शब्द—

प्रत्यय	धातु	संज्ञा
अक	कृ	कारक
	नी	नायक
	गे	गायक
	नृत्	नर्तक
	दा	दायक

पृत्यय	धातु	संज्ञा
अन	नी	नयन
	गह	गहन
	साधि	साधन
	शी	शयन
	भू	भुवन
अन	गम्	गमन
	भुज्	भोजन
	पत्	पतन
	तप	तपन
क्ति	स्तु	स्तुति
	शक	शक्ति
	ख्या	ख्याति

त (क्त), तव्य, अनीय, इत् आदि प्रत्ययों के योग से बने विशेषण शब्द—

पृत्यय	धातु	विशेषण
क्त (त)	जि	जित्
	मद्	मत्त
	मृ	मृत्त
	क्रम	क्रांत
	ऋ	अर्पित
	क्लप्	कल्पित
नीय (अनीय)	पूज	पूजनीय
	रम्	रमणीय
	सेव्	सेवीय
	ग्रह	ग्रहणीय
	दृश्	दर्शनीय

प्रत्यय	धातु	संज्ञा
तव्य	कृ	कर्तव्य
	गम्	गंतव्य
	दृश्	द्रष्टव्य
	दा	दातव्य
	भू	भवितव्य
	वच्	वक्तव्य
इत् (क्त)	पत	पतित
	मूर्च्छा	मूर्च्छित
यत् (क्य)	दा	देय
	पा	पेय
	सह	सह्य
	रम	रम्य

हिंदी के कृत् प्रत्यय

हिंदी क्रिया-शब्दों के अंत में हिंदी के प्रत्ययों के जुटने से कर्तृवाचक, कर्मवाचक, करणवाचक और भाववाचक--ये चार प्रकार के संज्ञा-शब्द तथा कर्तृवाचक तथा क्रियाद्योतक--ये दो प्रकार के विशेषण बनते हैं।

कृदंतीय संज्ञा-शब्द

क्रिया (धातु) के चिह्न 'ना' को लोप कर उसमें (१) आ, री, का, **र**, इया आदि प्रत्ययों को जोड़ने से **कर्तृवाचक कृदंतीय संज्ञाएँ** बनती हैं। जैसे--भूंजा (कांदू), कटारी, उचक्का, झालर, धुनिया, भुंइया आदि।

(२) 'ना, नी' प्रत्ययों को जोड़ने से **कर्मवाचक** संज्ञाएँ बनती हैं। जैसे--बिछौना, ओढ़नी, खैनी, पीनी आदि।

(३) आ, ई, ऊ और **न**, ना, नी, आदि प्रत्ययों का जोड़ने से **करण-वाचक** संज्ञाएँ बनती है। जैसे-झूला, घेरा, जॉता, रेती, जोती, झाड़ू, बुहारी, कसौटी, ढक्कन, बेलन, झूलन, कतरनी; सुमरनी, चलनी, तानी, भरनी आदि।

[४] **आ, आई, आन, आप, आव, ई, त, ती, न्ती, न, नी, र, वट, हट आदि** प्रत्ययों को जोड़ने से **भाववाचक** संज्ञाएँ बनती है। जैसे--घाटा, छापा, घेरा, सोटा, लड़ाई, चढ़ाई, सिलाई, लगान, उठान, पिसान, लगाव, उतराव, चुनाव, बोली, हँसी, बचत, खपत, लागत, चढ़ती, घटती, बढ़ती, चलती, बढ़ंती, लगन, कटनी, ठोकर, दिखावट, रुकावट, मिलावट, तरावट, सजावट, चिल्लाहट, रुलाहट आदि।

[**नोट**—कभी-कभी धातु के चिह्न 'ना' का लोप कर देने से भी भाव-वाचक कृदंतीय संज्ञा बन जाती है। जैसे--मार, पीट, दौड़, डाँट, डपट, सोच, विचार, रट, लेन, देन, तौल, जोख, माप आदि।]

कृदंतीय विशेषण

(क) **कर्तृवाचक**--धातु के चिह्न 'ना' का लोपकर **आऊ, आक, आका, आड़ी, आकू, आलू, इयाँ, इयास, ऐरा, ऐता, ऐया, ओड़ा, क, कड़, वन, वाला, वैया, दार, सार, हारा** आदि प्रत्ययों को जोड़ने से बनता है। जैसे--टिकाऊ, खाऊ, बिकाऊ, दिखाऊ, जड़ाऊ, तैराक, लड़ाकू, उड़ाकू, खिलाड़ी, सुखाड़ी झगड़ालू, चालू, घटियाँ, बढ़ियाँ सड़ियल, अड़ियल, लुटेरा, फनैत, डकैत, बटैया, हँसोड़, भगोड़, वाचक, जापक, मारक, पालक, भुलक्कड़, लिखक्कड़, हंसक्कड़, पियक्कड़, सुहावन, लुभावन, देखनेवाला, सुननेवाला, खवैया, खेवैया, समझदार, मालदार, मिलनसार, चिकनसार, राखनहार, इत्यादि। ('हारा' का प्रयोग अक्सर पद्य में होता है)।

(ख) **क्रियाद्योतक**—क्रियाद्योतक विशेषण दो प्रकार के होते हैं--एक भूतकालिक, दूसरा वर्त्तमानकालिक। भूतकालिक क्रियाद्योतक **'ना'** का लोप कर **'आ'** प्रत्यय जोड़ने से बनता है; कभी-कभी अन्त में **'हुआ'** भी जोड़ा जाता है। जैसे—पढ़ा, लिखा, धोया, खाया, पढ़ा हुआ, नहाया हुआ इत्यादि।

प्रयोग—'पढ़े' ग्रंथ को पढ़ने में मन नहीं लगता। 'पढ़ा-लिखा' आदमी चतुर होता है। 'दूध का धोया' लड़का। 'हाथी का खाया' कैथ

हो गया। 'पढ़ी हुई' स्त्री गुणवती होती है। 'नहाया' आदमी स्वच्छता लाभ करता है।

वर्तमानकालिक क्रियाद्योतक-'ना' का लोपकर 'ता' प्रत्यय जोड़ने से बनता है। कभी-कभी अंत में 'हुआ' भी जोड़ते हैं; जैसे—मरता, चलता, उड़ता, बहता, खाता हुआ, जाता हुआ इत्यादि।

प्रयोग—मरता क्या न करता। चलता खाता। चलती गाड़ी उलट गयी। मैं उड़ती चिड़िये को पहचाननेवाला हूँ। बहता पानी निर्मला। खाता हुआ आदमी। चलता हुआ घोड़ा। पहले वाक्य में 'मरता' विशेषण है; पर विशेष्य के रूप में व्यवहृत हुआ है, इसका अर्थ है—मरनेवाला आदमी।

[नोट—कभी-कभी क्रियाद्योतक विशेषण क्रिया की विशेषता बतलाने के कारण क्रियाविशेषण अव्यव के रूप में भी व्यवहृत होता है। प्रायः ऐसे अव्यय द्वित्व होकर आते हैं। जैसे, मैं दौड़ते-दौड़ते थक गया। बैठे-बैठे जी ऊब गया इत्यादि।

[ख] तद्धितांत शब्द

संज्ञा या विशेषण के रूप में व्यवहृत शब्दों के अंत में प्रत्यय लगाकर संज्ञा या विशेषण के नये शब्द बनाये जाते हैं। यहाँ पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि संस्कृत के तत्सम शब्दों के अंत मे संस्कृत के ही प्रत्यय संस्कृत-व्याकरण के नियमानुसार जोड़े जाते हैं तथा हिंदी के शब्दों में हिंदी के और उर्दू के शब्दों में उर्दू के प्रत्यय जोड़े जाते हैं।

संस्कृत तद्धितांत शब्द

संस्कृत तत्सम संज्ञाओं के अंत में प्रत्यय लगाने से **भाववाचक, अपत्यवाचक (नामवाचक) और गुणवाचक (विशेषण)**—ये तीन प्रकार के शब्द बनते हैं। कभी-कभी प्रत्यय लगने पर भी मूल शब्द के अर्थ में ही प्रत्ययांत शब्द का भी प्रयोग होता है।

संज्ञाओं से बनी संज्ञाएँ और विशेषण

(क) भाववाचक—त —मित्र से मित्रता, प्रभु से प्रभुता, मनुष्य से मनुष्यता, गुरु से गुरुता आदि ।

त्व—प्रभुत्व, बन्धुत्व, पुरुषत्व, दूतत्व आदि ।

अ (अण)—सुहृदय से सौहार्द, मुनि से मौन ।

य—पण्डित से पाण्डित्य, दूत से दौत्य, चोर से चौर्य आदि ।

(ख) अपत्यवाचक—अपत्यवाचक संज्ञा शब्द किसी नाम या व्यक्तिवाचक में प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं । जैसे दशरथ से दाशरथि; वसुदेव से वासुदेव; सुमित्रा से सौमित्र; दिति से दैत्य; यदु से यादव; मनु से मानव; अदिति से आदित्य; पृथा से पार्थ; पांडु से पांडव; कुन्ती से कौन्तेय; कुरु से कौरव; शिव से शैव; शक्ति से शाक्त; विष्णु से वैष्णव; रामानंद से रामानंदी; दयानंद से दयानंदी इत्यादि ।

(ग) गुणवाचक—इक—तर्क से तार्किक, न्याय से नैयायिक, वेद से वैदिक, मानस से मानसिक, सप्ताह से साप्ताहिक, नगर से नागरिक; लोक से लौकिक, दिन से दैनिक, उपनिवेश से औपनिवेशिक इत्यादि ।

य (यत तालु-तालव्य प्राक्-प्राच्य, ग्राम-ग्राम्य, इत्यादि ।

मत, वत्—बुद्धि-बुद्धिमान (मती), श्री-श्रीमान् (मती), रूप-रूपवान (वती) इत्यादि ।

विन्—तेजस-तेजस्वी, मेधा-मेधावी, मानस-मानस्वी, यशस्-यशस्वी ।

मय (मयट्)—जलमय, स्वर्णमय, दयामय, धर्म्ममय ।

इन्—प्रणय-प्रणयी, ज्ञान-ज्ञानी, दुःख-दुखी ।

इत्—आनंद-आनंदित, दुःख-दुखित, फल-फलित इत्यादि ।

निष्ठ—कर्मनिष्ठ, धर्मनिष्ठ इत्यादि ।

मूल अर्थ में—सेना से सैन्य, चोर से चौर, त्रिलोक से त्रैलोक्य, मरुत से मारुत, भंडार से भांडार, कुतूहल से कौतूहल इत्यादि ।

उपर्युक्त शब्दो में प्रत्यय लगने पर भी अर्थ में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दीखता ।

विशेषण से बनी संज्ञाएँ

संस्कृत तत्सम विशेषण शब्दों के अंत में प्रत्यय लगाकर जो संस्कृत तत्सम संज्ञाऍ बनाई जाती है वे प्रायः भाववाचक संज्ञाएँ होती है। जैसे—

त, त्व—मूर्खता, गुरुता, लघुता, बुद्धिमत्ता, वीरता, भीरुता, मधुरता, दरिद्रता, (दारिद्र्य), उदारता, साहायता, महत्त्व, वीरत्व।

अण्—गुरु-गौरव, लघु-लाघव।

अव् प्रत्यय—गुरु से गौरव, लघु से लाघव इत्यादि।

हिंदी में तद्धित

जिस प्रकार संस्कृत तत्सम शब्दों में तद्धित प्रत्ययों को जोड़कर संज्ञाओं से संज्ञाएँ और विशेषण बनाते हैं उसी प्रकार तद्भव और हिन्दी के शब्दों से भी प्रत्ययों को जोड़कर संज्ञा, विशेषण आदि बनाते है। तद्धित प्रत्ययांत से बने शब्द इस प्रकार विभाजित किये जा सकते हैं :—भाववाचक, ऊन-वाचक, कर्तृवाचक, संबंधवाचक और विशेषण।

(क) भाववाचक—संज्ञा या विशेषण के अंत में आई, ई, पा, पन, वट, हट, त, स, नी आदि प्रत्ययों के जोड़ने से भाववाचक तद्धितीय संज्ञाऍ होती हैं। जैसे—लड़काई, ललाई, बुराई, लंबाई, चतुराई, बुढ़ापा, लड़कपन, छुटपन, बचपन, कड़ुआहट, अमावट, रंगत, संगत, मिठास, चाँदनी, इत्यादि।

(ख) ऊनवाचक—आ, वा, क, ड़ा, या, री, ली, ई इत्यादि प्रत्ययों को जोड़कर ऊनवाचक बनाते हैं; इस ढंग की संज्ञाओं से लघुता, ओछापन या छुटपन का बोध होता है। जैसे—पिलुआ, बचवा, ढोलक, टुकड़ा, मुखड़ा, लोटिया, खटिया, डिबिया, कोठरी, छतरी, बटुली, रस्सी, डोरी, कटोरी, इत्यादि।

(ग) कर्तृवाचक-आर, इया, इ, रा, वाल, हारा इत्यादि प्रत्ययों को जोड़कर बनाते है। जैसे—लुहार, सोनार, कुम्हार, अढ़तिया, मखनिया, तेली, योगी, भोगी, विलासी, कसेरा, सँपेरा, कोतवाल, गोवाल (ग्वाला), लकड़हारा, चूड़िहारा इत्यादि।

(घ) संबंधवाचक—आल, औती, जा आदि प्रयत्यों के योग से बनता है। जैसे—ससुराल, ननिहाल, कठौती, बपौती, भतीजा, भाँजा इत्यादि।

(ङ) विशेषण-आ, आइन, आहा, ई, ऊ, ऐरा, या, ऐत, ल, ला, ऐला, लु, लू, ड़ी, वाल, वाला, वंत, वाँ, वान, हर, हरा, हा आदि प्रत्ययों के योग से बनता है। जैसे—ठंढा, प्यास, भूखा, गोबराइन, कसाइन, उतराहा, पछांह, अरबी, फारसी, अंगरेजी, देशी, विदेशी, देहाती, बनारसी, घरू, बाजारू, पेटू, चचेरा, मौसेरा, घरैया, बनैया, कलकतिया, पटनिया, मुंगेरिया, लठैत, बिगड़ैल, खपरैल, बनैला, विषैला, घरेलू, दयालु, कृपालु, पहला, सुनहला, भँगेड़ी, गँजेड़ी, गयावाल, दिल्लीवाल, मोहनवाला, दयावंत, धनवंत, ग्यारहवाँ, तेरहवाँ, मतिमान, धीमान, छुतहर, सुनहरा, भुतहा आदि।

उर्दू के कुछ प्रत्यय

ऊपर लिखा जा चुका है कि उर्दू के जो शब्द हिंदी में व्यवहृत होते हैं उनमें उर्दू के ही प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यहाँ पर उर्दू प्रत्ययों से बने शब्दों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

भाववाचक—गी, ई, आई प्रत्ययों के योग से—जिंदगी, बंदगी, मर्दानगी, ताजगी, खुदगर्जी, उस्तादी, बेवफाई, बेहयाई।

कर्तृवाचक—गर, गीर, ची, दार, बीन आदि के योग से—कारीगर, तमाशगीर, यादगार, खजांची, मशालची, जमींदार, दफ़ादार, तमाशबीन।

संबंधवाचक—आना, ई दान आदि प्रत्ययों के योग से—जुर्माना, नजराना, हर्जाना, दस्ताना, आदमी, कलमदान, पिकदान इत्यादि।

विशेषण—आना, गीन, नाक, बान, मंद, वर, शाही, दार आदि प्रत्ययों के योग से—दोस्ताना, सालाना, गमगीन, खतरनाक, मिहरबान, अक्लमंद, दौलतमंद, ताकतवर, नादिरशाही, मजेदार, दगाबाज़ इत्यादि।

तद्धितीय क्रिया

कुछ ऐसे भी विशेष्य हैं, जिनमें प्रत्यय लगाने से क्रिया-शब्द बनते है। जैसे—लाज—लजाना, गर्म—गर्माना, लात—लतियाना, बात—बतियाना, रंग—रँगाना, जूता—जुतियाना इत्यादि ।

विशेष्य से विशेषण और विशेषण से विशेष्य

एक प्रत्यय को बदलकर दूसरा प्रत्यय जोड़ने से अथवा प्रत्ययों के जोड़ने से या निकाल देने से विशेषण से विशेष्य और विशेष्य से विशेषण बनाये जाते हैं।

कृदंतीय विशेष्य से विशेषण—भय से भीत, जय से जीत, खेल से खिलाड़ी इत्यादि ।

३. सामासिक शब्द

दो या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर जो एक नया शब्द गठित किया जाता है, उसे **सामासिक शब्द** कहते है और जिस प्रक्रिया से ऐसे शब्द गठित होते है उसे **समास** कहते हैं। सामासिक शब्दों के खंडों या पदों को अलग-अलग करने की प्रक्रिया को **विग्रह** कहा जाता है।

सामासिक शब्दों में कभी तो पूर्वपद की प्रधानता रहती है, कभी उत्तरपद की। और कभी सभी खंड प्रधान हो जाते है। कभी सारे पद अपने-अपने अर्थ के बदले कोई अन्य अर्थ प्रगट करते हैं।

समास द्वारा गठित शब्द मुख्यतः चार भागों में विभक्त हैं:—

(१) **अव्ययीभाव** – जिस सामासिक शब्द में पूर्वपद अव्यय हो और समस्त शब्द का प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में हो उसमें **अव्ययीभाव** समास रहता है। ऐसे सामासिक शब्दों में पूर्वपद की प्रधानता रहती है। जैसे; यथाशक्ति, प्रतिदिन ।

तद्भव तथा परकीय शब्द भी अव्ययीभाव समास वाले होते है। जैसे; भरपूर बेहतर, हरसाल, बेशक, फ़ीसदी आदि ।

जब किसी शब्द को दुहराकर उसे क्रियाविशेषण का रूप दिया जाता है तब उसमें भी अव्ययीभाव समास रहता है। जैसे; रातो-रात, धीरे-धीरे मन-ही-मन, गली-गली, दर-दर आदि।

(२) तत्पुरुष—जिस सामासिक शब्द के उत्तरपद का अर्थ प्रधान हो और पूर्वपद कर्त्ता तथा संबोधन को छोड़कर किसी अन्य कारक के रूप में आवे, उसमें तत्पुरुष समास रहता है। पूर्वपद की कारक-विभक्ति लुप्त रहती है। जैसे: गंगाजल (गंगा का जल), शोकाकुल (शोक से आकुल) आदि।

[नोट—पूर्व-खंड में कर्मकारक रहने से कर्म-तत्पुरुष, करण कारक रहने से, करण-तत्पुरुष, संप्रदान कारक रहने से सप्रदान तत्पुरुष: आपादान कारक रहने से आपादान-तत्पुरुष, संबंध कारक रहने से संबंध-तत्पुरुष और अधिकरण कारक रहने से अधिकरण-तत्पुरुष के सामासिक शब्द गठित होते हैं।]

उदाहरण—

कर्म-तत्पुरुष—शरणागत (शरण को आगत), चिड़ीमार (चिड़ियों को मारनेवाला), सुखप्राप्त (सुख को प्राप्त)।

करण-तत्पुरुष—शोकाकुल (शोक से आकुल), जन्मांध (जन्म से अंधा), जलसिक्त (जल से सिक्त)।

संप्रदान-तत्पुरुष—ब्राह्मणदेय (ब्राह्मण के लिए देय)।

आपादान-तत्पुरुष—जीवनमुक्त (जीवन से मुक्त), देशनिकाला (देश से निकाला), पापभ्रष्ट (पाप से भ्रष्ट), धर्मच्युत (धर्म से च्युत), आकाश-पतित (आकाश से पतित)।

संबंध-तत्पुरुष—गंगाजल (गंगा का जल), अमरस (आम का रस), तिलौड़ी (तिल की बड़ी), घोड़ागाड़ी (घोड़े की गाड़ी) आदि।

अधिकरण-तत्पुरुष—ध्यानमग्न (ध्यान में मग्न), कर्म-निरत (कर्म में निरत), रथारूढ़ (रथ में आरूढ़), सर्वोत्तम (सब में उत्तम), वीरश्रेष्ठ (वीरों में श्रेष्ठ), हर-फन-मौला (हर फन में मौला)।

कर्मधारय—जिस तत्पुरुष सामासिक शब्द के पदों में विशेषण और विशेष्य अथवा उपमेय और उपमान का समानाधिकरण हो उसमें कर्मधारय समास हो जाता है। कर्मधारय में दोनों पद प्रधान होते हैं। पूर्वपद प्रायः विशेषण होता है या विशेषण का काम करता है और उत्तर-पद या तो विशेषण होता है या पूर्वपद के विशेषण का विशेष्य होता है। जैसे; नील कमल (नील है जो कमल), चंद्रमुख (चंद्र के समान है जो मुख), फुलौड़ी (फुली हुई है बड़ी जो) आदि।

द्विगु—कर्मधारय सामासिक शब्दों मे जब पूर्वपद संख्यावाची होता है और उत्तरपद की प्रधानता रहती है तब उनमें द्विगु समास होता है। जैसे; त्रिकोण, चतुर्भुज, चौपाई, द्विपद, चौराहा आदि।

(३) द्वन्द्व—जिस सामासिक शब्द में सभी खंड प्रधान होते हैं और समास होने पर उनके बीच का योजक (और) शब्द लुप्त रहता है उसमें द्वंद्व समास होता है। जैसे; स्त्री-पुरुष (स्त्री और पुरुष), माता-पिता (माता और पिता), तन-मन-धन (तन, मन और धन), जलवायु (जल और वायु)।

(४) बहुव्रीहि—जिस सामासिक शब्द का कोई खंड प्रधान नहीं होता, बल्कि समस्त पद किसी विशिष्ट अर्थ को प्रदर्शित करता है उसमें बहुव्रीहि समास रहता है। जैसे;

चार हैं आनन जिसके—चतुरानन (ब्रह्मा)।
चार हैं भुजाएँ जिनकी—चतुर्भुज (विष्णु)।
चक्र है पाणि (हाथ) में जिनके—चक्रपाणि (विष्णु)।
चंद्र है भाल पर जिसके—चंद्रभाल (महादेव)।
वज्र है आयुध जिसका—वज्रायुध (इंद्र)।

[नोट—(१) कर्मधारय और द्विगु समासवाले शब्द जब विशिष्ट अर्थ प्रगट करते हैं तब उसमें भी बहुव्रीहि समास होता है। जैसे; 'त्रिनेत्र'—सामान्य अर्थ—तीन नेत्रवाला। विशिष्ट अर्थ—महादेव। स'च्चरित्र'—सामान्य अर्थ—सच्चा चरित्र। विशिष्ट अर्थ—सच्चा हो चरित्र जिसका।

(२) निषेधार्थक के योग में जो सामासिक शब्द गठित होते हैं उनमें नञ् समास रहता है, यद्यपि अर्थ की दृष्टि से उनमें भी बहुव्रीहि समास होता है। जैसे: अनंत, अनाथ, अनादि, अनभिज्ञ इत्यादि।]

४. पुनरुक्त शब्द

कभी-कभी एक शब्द को दुहराकर लिखने से भी सामासिक शब्द बन जाता है। ऐसे शब्द पुनरुक्त या द्विरुक्त शब्द कहलाते है। प्रायः सभी तरह के शब्दों के पुनरुक्त शब्द होते हैं।

पुनरुक्त शब्द चार भागों में विभक्त किये जा सकते है--(१) एक ही शब्द को दुहराना, (२) एक ही अर्थवाले शब्दों को मिलाना, (३) एक ही श्रेणी या विभाग के शब्दों को मिलाना और (४) विपरीत अर्थवाले शब्दों को मिलाना।

१--एक ही शब्द को दुहराना

बैठे-बैठे, रोज-ब-रोज, दिन-प्रति-दिन, राम-राम, छी-छी, देख-देखकर, मार-मारकर, हरा-हरा, लाल-लाल, धीरे-धीरे, वन-वन, घर-घर, भाँति-भाँति जब-जब, तब-तब, गाँव-गाँव, कोई-कोई इत्यादि।

२—प्राय: एकार्थक शब्दों का योग

आमोद-प्रमोद, मणि-मुक्ता, मान-मर्यादा, धन-धान्य, दीन-दुखी, तर्क-वितर्क, आकार-प्रकार, कथा-वार्ता, काम-काज, दया-माया, दौड़-धूप, बोल-चाल, मार-पीट, रीति-रिवाज, सेवा-शुश्रूषा, बंधु-बांधव, रूखी-सूखी, सखा-मित्र, जीव-जन्तु, ओत-प्रोत, मद-मत्सर इत्यादि।

३—एक ही विभाग के शब्दों का योग

आहार-विहार, भोग-विलास, फल-फूल, भूख-प्यास, अन्न-वस्त्र, खान-पान, खाना-कपड़ा, रंग-ढंग, हाथ-पाँव, हँसी-खुशी, दूध-दही, मोल-दर, खेल-कूद, वर-कन्या इत्यादि।

४—भिन्नार्थक शब्दों का योग

ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, बालक-वृद्ध, नया-पुराना, संयोग-वियोग, लेन-देन, आय-व्यय, जीवन-मरण, धर्म्माधर्म्म, रात-दिन, हिताहित,

गुण-अवगुण, हर्ष-विषाद, दुख-सुख, जमा-खर्च, साधु-असाधु, लाभालाभ, जय-पराजय, सन्धि-विग्रह इत्यादि ।

[नोट—(१) ऊपर दिखाये गये पुनरुक्त शब्दों के चार विभागों में से पहले विभाग के शब्दों में प्रायः अव्ययीभाव समास रहता है और बाकी तीन विभागों में आये शब्दों मे द्वन्द्व समास रहता है जिनका संयोजक शब्द 'और' गुप्त है ।

(२) सामासिक पदों को लिखते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि जिन शब्दों के दोनों खंडों में संधि हो जाय उन्हें तो मिलाकर लिखना ही चाहिए पर जिन शब्दों के दोनों खंडों में संधि न हो उन्हें भी अलग-अलग लिखना ठीक नहीं है क्योंकि जब दो पृथक् शब्दों के योग से एक सामासिम शब्द बन जाता है तो दोनों के पृथक्-पृथक् लिखने से दो पृथक् शब्दों का भ्रम हो सकता है । मिलाकर लिखने से यह भ्रम जाता रहेगा । हाँ, कोई-कोई लेखक दोनों खंडों के बीच विभाजन चिह्न (-) का प्रयोग करते हैं जैसा कि ऊपर के शब्दों में भी प्रायः किया गया है । पुनरुक्त शब्दों में भी यही नियम लागू होना चाहिए ।]

कुछ सामासिक शब्दों के उदाहरण

बहुत से ऐसे शब्द हैं जो प्रत्यय के समान शब्दों के अंत में जुटकर सामासिक शब्द बन जाते हैं ।

अंतर—अर्थांतर, द्वीपांतर, कालांतर, सीमांतर, लोकांतर, देहांतर, देशांतर, पाठांतर, विषयांतर, सामानांतर ।

अनुसार—आज्ञानुसार, कथनानुसार, इच्छानुसार, आदेशानुसार, रीत्यनुसार, (कोई-कोई प्रयोग ठीक न जानने के कारण 'रीत्यनुसार' को 'रीत्यानुसार' लिख देते हैं) ।

अनंतर—गमनानंतर, तदनंतर इत्यादि । 'अनंतर' शब्द को भी प्रत्यय के रूप में व्यवहार करने में अक्सर लोग भूल करते हैं । कोई-कोई उपयुक्त दोनों शब्दो को 'गमनांतर' और 'तदंतर' लिख देते हैं ।

अर्थी—भोजनार्थी, परीक्षार्थी, विद्यार्थी, कामार्थी, परमार्थी, स्वार्थी, दर्शनार्थी, विचारार्थी, धर्मार्थी इत्यादि।

अंत—दिनांत, कर्मांत, दिगंत, देहांत आदि।

ग्रहण—चन्द्र-ग्रहण, सूर्य-ग्रहण, धन-ग्रहण, पाणि-ग्रहण, वर-ग्रहण, भाव-ग्रहण इत्यादि।

निष्ठ—कर्मनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, कर्त्तव्यनिष्ठ, न्यायनिष्ठ आदि।

परायण—कर्त्तव्यपरायण, न्यायपरायण, धर्मपरायण आदि।

पटु—वाक्पटु, ज्ञानपटु, बुद्धिपटु, कार्यपटु आदि।

रक्षा—आत्मरक्षा, कीर्तिरक्षा, धनरक्षा, मानरक्षा, भावरक्षा आदि।

शील—उन्नतिशील, कर्त्तव्यशील, धर्मशील, परिवर्तनशील आदि।

साधन—कार्यसाधन, अर्थसाधन, योगसाधन आदि।

निधान—गुणनिधान, बलनिधान, कृपानिधान, आदि।

विशारद—राजनीतिविशारद, विद्या-बुद्धि-विशारद आदि।

ज्ञान—आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान, तत्वज्ञान, शास्त्रज्ञान आदि।

पति—नरपति, रमापति, प्राणपति, सेनापति आदि।

अभ्यास

(१) उपसर्ग और प्रत्यय से क्या समझते हैं, समझाकर लिखिए।

(२) पाँच ऐसे शब्द बनाइए जिनके प्रारंभ में उर्दू के उपसर्ग जोड़े गये हों।

(३) नीचे लिखे शब्दों में कोई उपसर्ग जोड़कर उनके अर्थ भी स्पष्ट कीजिए:—

पात्र, लोक, मोल, यश, मन, जन, कार्य, पतन, मार्ग, उत्तर।

(४) नीचे लिखे शब्दों को दूसरे शब्दों में उपसर्ग के समान जोड़ कर यौगिक शब्द बनाइये—श्री, जीवन, यथा, अंत, मुँह।

(५) निम्नलिखित विशेषणों से विशेष्य और विशेष्यों से विशेषण बनाइए:—

गौरव, स्वर्ग, नरक, छवि, विनय, न्याय, निर्दय, मूर्त्ति, नारी, प्यासा, दौलत, दान, कृपण, यत्न, विश्वास, वैभव, दुख, पंडित, पीला, और लालिमा।

(६) नीचे लिखे शब्दों के विशेषण शब्द बनायें—हँसना, पीना, खाना, रूप, हृदय, चंद्र, सूर्य, नीति, अग्नि, वायु और राष्ट्र।

(७) नीचे लिखे शब्दों से संज्ञा-शब्द बनायें—घेरना, बाँचना, विस्तृत, संकुचित, लाल, विमल, चतुर, धार्म्मिक और वैधानिक।

(८) निम्नलिखित विशेषणों के साथ उपयुक्त संज्ञाओं को मिलाइए—सायंकालीन, अभूतपूर्व, दुर्लंघ्य, लोमहर्षण, अपरिमित, वीभत्स, हृदय-विदारक, अन्तर्राष्ट्रीय और अनिर्वचनीय।

(९) नीचे लिखे सामासिक शब्दों में समास बताते हुए उनका विग्रह कीजिए— धर्मात्मा, प्रजापति, गौरीशंकर, विद्यावारिधि।

(१०) नीचे लिखे शब्दों को आगे या पीछे जोड़कर यथासंभव यौगिक शब्द बनायें—वत्सल, भाजन, मातृ, शाखा और कुशल।

(११) नीचे लिखे शब्दों के सामासिक शब्द गढ़िये—भोला और भाला, कमल के ऐसा है नयन जो, उदार है हृदय जो, लंबा है उदर जिसका, राष्ट्र के पति, पाँच गव्य।

चतुर्थ परिच्छेद

१. शब्दों के अर्थ

वर्णों या अक्षरों के मेल से शब्द बनता है। फिर उस शब्द का कोई अर्थ मान लिया जाता है और उसका प्रयोग होने लगता है। पुनः उस शब्द का उससे मिलते-जुलते कई अर्थों में भी प्रयोग होने लगता है। शरीर का वह अंग 'मुँह' कहलाता है जिससे हम खाते-पीते या बोलते हैं। लेकिन मुँह का हम और भी अनेक अर्थों में प्रयोग करते हैं। ज्वलामुखी पहाड़ के उस छेद को भी हम 'मुँह' या 'मुख' कहते हैं जिससे वह आग उगलता है। फोड़े के छेद को भी हम मुँह ही कहते हैं। यहाँ तक कि सारे चेहरे को भी हम कभी-कभी 'मुँह' कह डालते हैं। इसी प्रकार नाक, सिर, गर्दन, आदि का भी कई अर्थों में प्रयोग होता है।

कभी-कभी एक शब्द से जिस वस्तु का बोध होता है, उसी शब्द से उस वस्तु के रूप-रंग, स्वभाव-गुण आदि से समता रखनेवाली दूसरी वस्तु का भी बोध होता है। मिट्टी के सबसे अधिक कड़े रूप को हम 'पत्थर' कहते हैं; लेकिन 'हिटलर का कलेजा पत्थर का था'—इस वाक्य में 'पत्थर' का अर्थ हो जाता है 'पत्थर के समान कठोर'। 'गधा' कहने से एक चौपाये जंतु का बोध होता है; लेकिन 'तुम गधे हो'— इस वाक्य में 'गधा' का अर्थ है, गदहे की तरह सीधा-सादा और बेवकूफ!

कभी-कभी शब्द अपने पुराने अर्थ को छोड़कर नया अर्थ भी ग्रहण कर लेते हैं-- यानी अपने सामान्य अर्थ से दूर होकर किसी रूढ़ अर्थ में व्यवहृत होते हैं। 'सौभाग्यवती' का सामान्य अर्थ है, वह स्त्री जो भाग्यशालिनी हो; लेकिन इस शब्द का प्रयोग केवल सधवा स्त्री के अर्थ में ही किया जाता है। 'स्वर्गवास' का अर्थ है 'स्वर्ग में रहना,' लेकिन 'मृत्यु' के अर्थ में इसका प्रयोग होता है।

बहुतेरे शब्द ऐसे भी है, जो वहुत कुछ एक-से जान पड़ते है, मगर उनके अर्थ मे वहुत कुछ अंतर पड़ जाता है। जैसे, खुराक (दवा की मात्रा) और खूराक (भोजन); रंग (वर्ण) और रंगत (हालत); हाल (समाचार) और हालत (दशा) इत्यादि।

शब्दो मे तीन प्रकार की शक्तियाँ रहती है—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। इन्हीं तीनों शक्तियों के सहारे शब्दों या वाक्यों का ठीक-ठीक अर्थ हम जान पाते है।

अभिधा—जिस शक्ति के सहारे किसी शब्द का नियत या सीधा-सादा अर्थ जाना जाता है उसे **अभिधा** शक्ति कहते है। **अभिधा** शक्ति के द्वारा जिस अर्थ का बोध होता है उसे **'वाच्यार्थ'** कहते हैं। जैसे, गौ दूध देती है—यहाँ 'गौ' का सीधा अर्थ है 'गाय'।

लक्षणा—जिस अर्थ-शक्ति के सहारे शब्दो का सीधा-सादा अर्थ न लगाकर, किसी विशेष प्रयोजनवश, उनसे कोई निकट-संबंध रखनेवाला दूसरा अर्थ लिया जाता है, उसे **लक्षणा-शक्ति** कहते है। **लक्षणा-शक्ति** के द्वारा जो अर्थ प्रगट होता है, उसे **लक्ष्यार्थ** कहते हैं, जैसे; राम भाड़े का टट्टू है—इस वाक्य में 'भाड़े का टट्टू' का अर्थ है 'भाड़े के टट्टू के सदृश्य'। राम तो आदमी है, वह चौपाया जतु कैसे हो सकता है? यहाँ वाच्यार्थ से स्पष्ट अर्थ नहीं निकलने पर लक्षणा-शक्ति के सहारे अर्थ किया गया है। उसी प्रकार 'गंगावासी' का वाच्यार्थ होता है 'गंगा में वसने वाला' मगर लक्षणा-शक्ति से अर्थ लगाने पर इसका अर्थ होता है—'गंगा-तट-वासी'।

व्यंजना—जिस अर्थ-शक्ति के सहारे वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ को छोड़कर कोई दूसरा ही अर्थ प्रगट होता है उसे **व्यंजना-शक्ति** कहते है। **व्यंजना-शक्ति** के द्वारा जो अर्थ जाना जाता है, उसे व्यंगार्थ कहते हैं। जैसे; 'तलवार चलने लगी'—इस वाक्य के कहने का तात्पर्य है—'लड़ाई होने लगी'; क्योंकि तलवार तो आप-से-आप चलती नही। इसी प्रकार 'खून की नदियाँ वह चली' का अर्थ होता है—'असंख्य लोग मारे गये'।

'मुर्गा बोलने लगा' का अभिप्राय होता है-- 'भोर हो गया'। यहाँ पर व्यंजना-शक्ति की सहायता से ही तीनो वाक्यों का अर्थ किया गया है।

व्यंजना-शक्ति-संपन्न वाक्य भाषा के प्राण होते है। प्रतिभा-संपन्न लेखक ही व्यंजना-शक्ति-संपन्न वाक्य लिख सकते है।

२. वाच्यार्थ

शब्दों का वाच्यार्थ जानने के मुख्य तीन साधन हैं—(१) शब्दों की व्युत्पत्ति के द्वारा, (२) शब्दों के पर्यायवाची शब्द या प्रतिशब्दों के द्वारा और (३) शब्दों की परिभाषा या लक्षण के द्वारा।

१—**व्युत्पत्त्यर्थ**—किसी शब्द का मूल रूप क्या है और किन-किन अवस्थाओं से होकर वह वर्तमान रूप में आया है—इन्हीं प्रक्रियाओं को शब्दों की **व्युत्पत्ति** कहते हैं। यौगिक तथा उपसर्ग-प्रत्यययुत शब्दों की व्युत्पत्ति करने से या उन्हें खड-खंड कर देने से उनके अर्थ सहज ही समझ में आ जाते है और इस तरह के अर्थ को **व्युत्पत्त्यर्थ** कहते है। जैसे; विद्यालय = जो विद्या का आलय या घर है अर्थात् पाठशाला। चंद्रभाल = जिसके भाल या माथे पर चंद्र है अर्थात् महादेव। शैव = जो शिव का उपासक है। पाठक = जो पाठ करता या पढ़ता हैं।

मगर रूढ़ शब्दों का अर्थ व्युत्पत्ति के द्वारा स्पष्ट नहीं होता। उदाहरण के लिए, 'साँप' शब्द संस्कृत के 'सर्प' शब्द का अपभ्रंश हैं और 'सर्प' शब्द 'सृप' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'रेंगना'। इस तरह व्युत्पत्ति करने से 'साँप' शब्द का अर्थ होता है = 'रेंगनेवाला जंतु'। रेंगनेवाले जंतु तो अनेक होते है मगर हम सबको 'साँप' नहीं कहते, बल्कि एक नियत या रूढ़ अर्थ में ही इसका प्रयोग करते हैं।

(२) **पर्यायवाची शब्द**—एक शब्द के लिए उसी अर्थ में जो दूसरे शब्द आते हैं उन्हें **पर्यायवाची** शब्द या प्रतिशब्द कहते हैं। जैसे; 'कमल' शब्द के प्रतिशब्द है—वनज, सरोज, अरविंद, पंकज,

तामरस, अँबुज, पद्म, राजीव, कोकनद आदि। इसी प्रकार 'चंद्रमा' के लिए शशि, शशांक, निशिपति आदि अनेक प्रतिशब्द प्रयुक्त होते हैं।

प्रतिशब्द का प्रयोग करते समय यह बराबर ध्यान में रखना चाहिए कि किसी शब्द का प्रतिशब्द उस शब्द से अधिक सरल और व्यावहारिक हो। साथ ही, यह भी नहीं भूलना चाहिए कि विशेष्य का प्रतिशब्द विशेष्य और विशेषण का प्रतिशब्द विशेषण के रूप में ही रहे। जैसे; 'भानु' का अर्थ 'भास्कर' नहीं लिखकर 'सूर्य' तथा 'कंचन' का अर्थ 'हिरण्य' नहीं लिखकर 'सोना' लिखना ही युक्तिसंगत है। इसी प्रकार 'तृपित' का अर्थ 'प्यासा', 'क्षुधापीड़ित' का अर्थ 'भूखा' और 'मनोरथ' का अर्थ 'इच्छा' ही लिखना चाहिए—'प्यासा' 'भूख' और 'इच्छित' नहीं।

पारिभाषिक शब्द—कुछ ऐसे भी शब्द होते हैं जिनके पर्यायवाची शब्द या तो होते ही नहीं या होते भी हैं तो उनसे अर्थ की स्पष्टता प्रगट नहीं होती। ऐसे शब्द **पारिभाषिक-शब्द** कहलाते हैं। उनके अर्थ जानने के लिए न तो वाच्यार्थ ही काम में आता है और न व्युत्पत्त्यर्थ। अतः ऐसे शब्दों की स्पष्ट रूप से परिभाषा करनी पड़ती है या उनके लक्षण बताने पड़ते हैं, तभी उनके अर्थ समझ में आते हैं।

विज्ञान, साहित्य, कला, भूगोल, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, दर्शन-शास्त्र आदि विषयों में प्रायः पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होता है। ऐसे शब्द अधिकतर संस्कृत के तत्सम शब्द होते हैं। विदेशी भाषाओं के भी कुछ तत्सम पारिभाषिक शब्दों का हिंदी मे प्रयोग होता हुआ पाया जाता है।

कुछ पारिभाषिक शब्द—ग्रह, नक्षत्र, कक्षा, धुरी, उपकूल, अंतरीप, उपनिवेश, प्रायद्वीप, रस, भाव, अलंकार, सभ्यता, संस्कृति, कला, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय, नागरिक, राज्य, सरकार, समाजवाद, साम्यवाद, संघ-शासन, लोकतंत्र, गणतंत्र, प्रतिनिधि, विधान, विधेय, विधायिका, विधेयक, संविधान, उपयोगिता, जमीन, श्रम, पूंजी, पण्य, मूल्य, साम्राज्यवाद, अधिनायक, उद्योग आदि।

३. भिन्नार्थक शब्द

कोई-कोई शब्द दो-एक अन्य शब्दों से ध्वनि और उच्चारण में प्रायः समता रखते हैं, परन्तु उनके मूल में अंतर पड़ता है जिससे उनके अर्थ में भी अंतर पड़ जाता है। ऐसे शब्द भिन्नार्थक शब्द कहलाते है।

आगा = अगवाड़ा (हिंदी)। आग़ा = सर्दार (फारसी)।
आन = लाज, दूसरा (हिंदी)। आन = समय (अरबी)।
आम = फल विशेष (हिंदी)। आम = साधारण (अरबी)।
कंद = जड़, मूल (संस्कृत)। कंद = मिश्री (फारसी)।
कफ़ = फेन (फारसी)। कफ़ = कमीज का कफ़ (अरबी)।
कुंद = मंद, भोथरा (अरबी)। कुंद = फूल विशेष (संस्कृत)।
कुल = वंश (संस्कृत)। कुल = सब (अरबी)।
कै = कितना (हिंदी)। कै = वमन (अरबी)।
कोष = भंडार (संस्कृत)। कोश = दो मील (फारसी)।
कान = अंग विशेष (हिंदी)। कान = कृष्ण (अपभ्रंश)।
खैर = अच्छा (फारसी)। खैर = एक काठ (हिंदी)।
गौर = गोरा (संस्कृत)। ग़ौर = ध्यान (अरबी)।
चारा = घासादि (हिंदी)। चारा = उपाय (फारसी)।
जाल = जाल, माया (संस्कृत)। जाल = फरेब (अरबी)।
तूल = रूई (संस्कृत)। तूल = तुलना (हिंदी)।
झख = मछली (संस्कृत)। झख = खीझना (हिंदी)।
पट = कपड़ा, परदा, किंतु (संस्कृत)। पट = किवाड़, तुरत (हिंदी)।
पर = पराया, दूर, किंतु आदि (संस्कृत)।
पर = अधिकरण कारक का चिह्न (हिंदी)।
रास = क्रीड़ा (संस्कृत)। रास = बागडोर (हिंदी)।
रास = अंतरीप (फारसी)। रास = पशुओं की गिनती (देशज)।
शकल = टुकड़ा (संस्कृत)। शकल = चेहरा (फारसी)।
सर = तालाब ,, सर = सिर (फारसी)।

हाल = पहिये का हाल (हिंदी)। हाल = विवरण (अरबी)।
हाल = तरावट, नमी (ग्रामीण प्रयोग)।

हार = माला (संस्कृत)। हार = पराजय (संस्कृत)।
सन् = संवत् (,,)। सन = पौधा-विशेष (हिंदी)।
बान = आदत (हिंदी)। बाण = तीर (संस्कृत)।
आराम = विश्राम (फारसी)। आराम = बगीचा (संस्कृत)।
बाग = बगीचा (संस्कृत)। बाग = बागडोर (फारसी)।

४. एक शब्द के अनेक अर्थ

भिन्नार्थक शब्द का मूल भी भिन्न रहता है, पर कुछ ऐसे भी शब्द हैं जिनका मूल या उद्गम भिन्न न होने पर भी वे भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। जैसे —

अर्क = सूर्य, अकवन।
अंक = चिह्न, गोद, संख्या, नाटक का परिच्छेद।
अर्थ = धन, मतलब, कारण, निमित्त आदि।
अज = बकरा, ब्रह्मा।
अक्ष = कील, आँख।
अहि = सर्प, कष्ट, सूर्य।
अच्युत = कृष्ण, विष्णु, स्थिर, अविनाशी।
अनंत = विष्णु, सर्पों का राजा, आकाश, जिसका अंत न हो।
अरुण = लाल, सूर्य्य, सूर्य्य का सारथी।
कृष्ण = काला, कृष्ण भगवान।
कर = हाथ, सूँड़, किरण, मालगुजारी।
काम = कार्य, कामदेव। कुशल = कुशलक्षेम, चतुर।
कर्ण = नाम विशेष, कान। कनक = सोना, धतूरा।
कौरव = गीदड़, धृतराष्ट्रादि। कैरव = कमल, कुमुद आदि।
कबंध = राक्षस-विशेष, पेटी। क्षमा = माफ़ी, पृथ्वी।

खर = दुष्ट, गधा, राक्षस-विशेष ।

खग = राक्षस, पक्षी ।

खल = दुष्ट, दवाई का खल ।

गो = किरण, इन्द्रिय, स्वर्ण, गाय, स्वर्ग ।

गुरु = शिक्षक, ग्रह-विशेष, देवताओं के गुरु, श्रेष्ठ, भारी ।

गुण = रस्सी, स्वभाव, सत-तम और रज ।

गण = समूह, मनुष्य, भूत-प्रेतादि शिवगण, पिंगल के गण ।

गति = चाल, हालत, मोक्ष ।

घन = बादल, घना, जिसमें लम्बाई-चौड़ाई और मुटाई हो ।

घाम = धूप, पसीना ।

छंद = इच्छा, पद, छल ।

जीवन = प्राण, पानी, जीविका ।

जलज = कमल, मोती, सेमार आदि ।

जलधर = बादल, समुद्र ।

जीमूत = बादल, इंद्र, पर्वत ।

झक = क्रोध, लहर ।

ठाकुर = देवता, नाई, ब्राह्मण ।

तत्व = मूल, यथार्थ, ब्रह्म, पंचभूत ।

तनु = दुबला, शरीर ।

तात = प्यारा, पुत्र, पिता आदि ।

तमचर = राक्षस, उल्लू पक्षी ।

तारा = आँख की पुतली, नक्षत्र, बालि की स्त्री, बृहस्पति की स्त्री ।

ताल = पोखर, ताड़, बाजे का ताल, हरताल ।

द्विज = पक्षी, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ।

द्रोण = कौआ, द्रोणाचार्य ।

दंड = डंडा, सजा ।

धन = संपत्ति, जोड़ ।

धान्य = धान, अनाज ।

नग = पत्थर-विशेष, पहाड़ ।

नाग = हाथी, सर्प ।

निशाचर = राक्षस, प्रेत, उल्लू, चोर ।

नकुल = नेवला, नाम-विशेष ।

पक्ष = दल, पख, पंख, बल ।

पय = दूध, पानी ।

पोत = स्वभाव, नौका, बच्चा ।

पतंग = गुड्डी, चील, सूर्य्य ।

पद = स्थान, पैर ।

पत्र = पत्ता, चिट्ठी ।

पृष्ठ = सभा, फलादि । फल = परिणाम, फलादि

बाण = तीर, बाणासुर । वाणी = सरस्वती, बोली ।

भीष्म = कठिन, नाम-विशेष ।

महावीर = हनुमान, बड़ा भारी योद्धा ।

युधिष्ठिर = पर्वत, नाम-विशेष ।

रस = षट्रस, नवरस, स्वर्णादि का भस्म, स्वाद, सार, पारा, प्रेम ।

लवण = खारा, लवणासुर । विधि = ब्रह्मा, भाग्य, कानून, रीति ।

वर्ण = जाति, रंग, अक्षर । शिव = मंगल, भाग्यशाली, महादेव ।

शस्य = धान, अन्नादि ।

सैंधव = नमक, सिंधु का विशेषण, घोड़ा ।

सारंग = राग-विशेष, मोर, सर्प, हरिण, पानी, देश-विशेष, पपीता, हाथी, हंस, कमल, भूषण, फूल, रात दीपक, शोभा, शंख, स्त्री, कपूर आदि ।

सुधा = अमृत, पानी । हंस = प्राण, पक्षी-विशेष ।

हरि = ईश्वर, हाथी, सांप, अश्व, वायु, चंद्र, मेढक, तोता, यमराज, वानर, मोर, कोयल, हस, धनुष, आग, पहाड़ आदि ।

५. श्रुतिसम भिन्नार्थक शब्द

बहुत ऐसे भी शब्द हैं जिनके उच्चारण प्रायः एक-से रहते हैं पर उनके अर्थ मे भिन्नता रहती है । लिखने में भी नाम-मात्र का अंतर रहता है । कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

अंश = हिस्सा; अंस = स्कंध । अंगुल = अंगुली; अंगूर = फल-विशेष । असन = भोजन; आसन = बैठक । अणु = कण; अनु = एक उपसर्ग । अनिल = वायुः अनल = आग । अभिराम = सुंदर; अविराम = बिना विश्राम । इति = समाप्ति; ईति = शस्यविघ्न । कूल = किनारा; कुल = वंश, सभी । कृत = किया हुआ; क्रीत = खरीदा हुआ । केशर = कुंकुम; केसर = सिंह की गर्दन पर का बाल । चिर = दीर्घ;

चोर = वस्त्र। चर = नौकर; चार = चार (अंक)। चूत = आम का वृक्ष; च्युत = पतित। तरणि = सूर्य्य; तरणी = नाव; तरुणी = स्त्री। दुर = दुत्कार; दूर = आगे। द्विप = हाथी; द्वीप = टापू। दूत = संवाद-दाता; द्यूत = जूआ। नीड़ = खोता; नीर = पानी। पानी = जल; पाणि = हाथ। प्रसाद = अनुग्रह; प्रासाद = महल। प्रकृत = यथार्थ; प्राकृत = भाषा-विशेष। वसन = वस्त्र; व्यसन = वासना। बली = बल-शाली; बलि = बलिदान। बिना = अभाव; वीणा = बाजा-विशेष। शम = शांति; सम = बराबर। दमन = दबाना; दामन = छोर। बेलि = लता; बेली = फूल-विशेष। निसान = झंडा; निशान = चिह्न। शंकर = महादेव; संकर = जारज। दिन = रोज; दीन = गरीब। लक्ष = लाख; लक्ष्य = निशाना। शव = लाश; सब = सभी। शर = तीर; सिर = माथा; सर = तालाब। सूर = सूर्य्य; सुर = देवता; शूर = वीर। सुत = लड़का; सूत = सारथी। सुमन = फूल; सुअन = पुत्र। शुचि = पवित्र; सूची = तालिका; सुचि = सूई।

६. एकार्थक शब्दों में अर्थ-भेद

एक ही अर्थ का बोध करनेवाले दो या दो से अधिक शब्दों के अर्थ में कहीं-कहीं सूक्ष्म-भेद रहता है। इन सूक्ष्म भेदो को भलीभाँति समझ-बूझकर ही वैसे शब्दो का प्रयोग करना उचित है। अन्यथा कभी-कभी अर्थ का अनर्थ होने की संभावना हो जाती है। यहाँ पर कुछ ऐसे एकार्थक शब्दों के सूक्ष्म भेद का दिग्दर्शन करा दिया जाता है।

अलौकिक और अस्वाभाविक—

अलौकिक—जो लोक और समाज में पहले नही देखा गया हो।

अस्वाभाविक—जो ईश्वरीय नियमों के विरुद्ध हो।

[**नोट**—'अलौकिक' का 'अस्वाभाविक' होना संभव है पर, 'अस्वाभाविक' 'अलौकिक' नहीं हो सकता।]

अज्ञानी और अनभिज्ञ—

अज्ञानी—जो स्वाभाविक बुद्धि से हीन हो।

अनभिज्ञ—जिसे समझने का कभी मौका नही मिला हो।

अहंकार, अभिमान, गर्व, दर्प, गौरव और दंभ

अपने को उचित से अधिक समझना **अहंकार** है; अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा समझना **अभिमान** है; रूप, धन, विद्या आदि के मद में चूर रहना **गर्व** है; दूसरों को घृणा की दृष्टि से देखना ही **दर्प** है; यथार्थ महत्ता के लिए अभिमान करना **गौरव** है और झूठा पाखंड करना **दंभ** है।

अस्त्र और शस्त्र—

जिस हथियार से फेंककर प्रहार किया जाय वह **शस्त्र** है; जैसे बाण आदि और जिसे हाथ में रखकर प्रहार किया जाय वह **अस्त्र** है; जैसे तलवार आदि।

अज्ञ और मूर्ख—

जिसकी बुद्धि जड़ हो उसे **मूर्ख** और जिसे कुछ ज्ञान ही न हो उसे **अज्ञ** कहते हैं।

आधि और व्याधि—

मानसिक कष्ट को **आधि** और शारीरिक कष्ट को **व्याधि** कहते है।

दया और कृपा—

दूसरे के कष्ट को निवारण करने की स्वाभाविक भावना को **दया** और छोटे के प्रति की जानेवाली दया को **कृपा** कहते हैं।

भ्रम और प्रमाद—

जहाँ असावधानी से भूल हो जाय वहाँ **भ्रम** और जहाँ मूर्खतावश भूल हो जाय वहाँ **प्रमाद** होता है।

द्वेष, ईर्ष्या और स्पर्द्धा—

कारणवश घृणा करना **द्वेष**; स्वभावतः दूसरे की उन्नति देखकर जलना **ईर्ष्या** और दूसरों को बढ़ने न देना **स्पर्द्धा** है।

श्रम, आयास और परिश्रम—

शरीर के अंग की शक्ति लगाकर काम करना श्रम, मन की शक्ति लगाना आयास और श्रम की विशेषता परिश्रम है।

प्रेम, भक्ति, श्रद्धा, स्नेह और प्रणय—

प्रेम—हृदय के आकर्षण का भाव है।

भक्ति—देवताओं के प्रति अनुराग या प्रेम भक्ति कहलाता है।

श्रद्धा—बड़ों के प्रति अनुराग या प्रेम श्रद्धा है।

स्नेह—छोटों पर प्रेम दरसाना स्नेह है।

प्रणय—पति-पत्नी के प्रेम को प्रणय कहते हैं।

दुःख, शोक, क्षोभ, खेद और विषाद—

मानसिक पीड़ा को दुःख और चित्त की व्याकुलता को शोक कहते हैं। वियोग का दुःख शोक है। किसी काम में सफलता न मिलने पर मन में जो विकार उत्पन्न होता है उसे क्षोभ कहते हैं। निराश हो जाने पर खेद होता है। दुःख की हालत में कर्त्तव्याकर्त्तव्य की विस्मृति को विषाद कहते हैं।

सेवा और शुश्रूषा—

सेवा—देवताओं या बड़ों की टहल।

शुश्रूषा—रोगियों या दुःखितों की टहल।

स्त्री और पत्नी—

स्त्री—स्त्री-जाति-मात्र को स्त्री और अपनी विवाहिता स्त्री को पत्नी कहते हैं।

बालक और पुत्र—

लड़के की जाति को बालक और बेटे को पुत्र कहते है।

७. विपरीतार्थक शब्द

जब दो शब्द आपस में प्रतिकूल अर्थ प्रकट करें तब वे विपरीतार्थक शब्द कहलाते हैं। कभी-कभी दोनों शब्द एक साथ भी प्रयुक्त होते हैं;

जैसा कि पहले दरसाया जा चुका है, नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते है—

आकश	पाताल	अथ	इति
आदि	अंत	अतिवृष्टि	अनावृष्टि
आकर्षण	विकर्षण	आय	व्यय
उन्मीलन	निमीलन	आदान	प्रदान
लेन	देन	ऋण	उऋण
ऊँच	नीच	उदय	अस्त
जीवन	मरण	आलोक	अन्धकार
उत्कृष्ट	निकृष्ट	अनुराग	विराग
योगी	भोगी	शांति	अशांति
राग	विराग	वाद	प्रतिवाद
सच	झूठ	सरस	नीरस
स्तुति	निंदा	वृद्ध	बालक
पुरुष	स्त्री	राजा	रंक
दिन	रात	सुबह	साँझ
शीत	उष्ण	जाड़ा	गर्मी
अच्छा	खराब	भला	बुरा
शत्रु	मित्र	अमृत	विष
लघु	गुरु	स्त्रीलिंग	पुंलिंग
चर	अचर	संयोग	वियोग
मिलन	विछोह	साधु	असाधु
हित	अहित	राम	रावण
मूक	वाचाल	गंगा	कर्मनाशा

८. पदांश-परिवर्तन

शब्द को सरस बनाने के अभिप्राय से सामासिक शब्दों के उत्तरार्द्ध या पूर्वार्द्ध पद को बदल कर उसकी जगह उसी अर्थ में प्रयुक्त दूसरे प

को रख सकते हैं। छंद-रचना के लिए इस ढंग का परिवर्तन करने का अभ्यास बड़ा ही उपयोगी होता है। लेखन-कला में शब्दों के संगठन के लिए भी ऐसा करने की आवश्यकता होती है।

पूर्व-पद-परिवर्तित शब्द

नृसिंह, नरसिंह। कनककश्यप, हिरण्यकश्यप। भूपति, नरपति, महीपति। प्राणाधार, जीवनाधार। सुरबाला, देवबाला। कर्ण-गोचर श्रुति-गोचर। नृपाल, महिपाल, भूपाल। हेम-लता, कनकलता, स्वर्णलता। खेचर, निशिचर, रजनीचर इत्यादि।

उत्तर-पद-परिवर्तित शब्द

राजकन्या, राजपुत्री। नरनाथ, नरपाल। कमलिनी-नायक, कमलिनी-वल्लभ। निशिनाथ, निशिपति। रजनीकांत, रजनीपति। प्राणनाथ, प्राण-पति, प्राणेश, प्राणाधार, प्राणवल्लभ इत्यादि।

कर, हर, हीन, धि, धर, द, प्रद, दायक, ज्ञ, ज, जनक, मय, दार आदि बहुत से ऐसे शब्द या शब्दांश हैं जिन्हें कुछ शब्दों के अंत में जोड़कर नये शब्द बनाये जाते हैं। जैसे—

कर—हितकर, रुचिकर, फलकर, जलकर, मधुकर आदि।

हर—संतापहर, मनोहर, पापहर आदि।

हीन—बुद्धिहीन, ज्ञानहीन, कर्महीन, धनहीन आदि।

धि—जलधि, उदधि, वारिधि आदि।

धर—हलधर, चक्रधर, परशुधर, जलधर, महिधर आदि।

द—सुखद, दुखद, जलद, वरद (स्त्रीलिंग वरदा) आदि।

प्रद—संतोषप्रद, लाभप्रद, सुखप्रद आदि।

दायक—फलदायक, लाभदायक, सुखदायक आदि।

ज्ञ—सर्वज्ञ, विशेषज्ञ, इतिहासज्ञ, मर्मज्ञ आदि।

ज—जलज, सरोज, मनोज, पंकज आदि।

जनक—संतोष-जनक, लाभ-जनक, करुणा-जनक आदि।

मय—दयामय, करुणामय, सुखमय, आनंदमय आदि।

दार—भड़कदार, मजेदार, चमकदार आदि।

[नोट—(क) ऊपर जोड़े गये कर, हर आदि शब्द प्रत्ययवत् व्यवहृत हुए हैं।

(ख) 'जल' या इसके पर्यायवाची शब्दों के आगे 'ज' जोड़ने से कमल, 'द' या 'धर' जोड़ने से मेघ और 'धि' या 'निधि' जोड़ने से समुद्र के पर्यायवाची शब्दों का वोध होता है? जैसे—

जल—जलज, जलद, जलधर, जलधि, जलनिधि।

सलिल—सलिलज, सलिलद, सलिलधर, सलिलधि, सलिलनिधि।

अंबु— अंबुज, अंबुद, अंबुधर, अंबुधि, अंबुनिधि।

तोय—तोयज, तोयद, तयोधर, तोयधि, तोयनिधि।

पय—पयोज, पयोद, पयोधर, पयोधि, पयोनिधि।

वारि—वारिज, वारिद, वारिधर, वारिधि, वारिनिधि।

वन—वनज, वनद, वनधर, वनधि, वननिधि।

(ग) प्रायः 'तालाब' शब्द के पर्यायवाची शब्दों के आगे 'ज' जोड़ने से 'कमल' के प्रतिशब्द वनते है। जैसे—सरोवर, सरसिज।

(घ) ख्याल रहे कि ऊपर के प्रत्ययवत् शब्द केवल संस्कृत के तत्सम शब्दों के ही अंत में जोड़े जाते है; हिंदी या उर्दू आदि शब्दों के अंत में नहीं। जैसे—पानीज, तालाबज आदि नहीं होंगे।]

६. एक शब्द का भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयोग

वहुत से शब्द वाक्य में भिन्न-भिन्न रूप से व्यवहृत होते है। एक ही शब्द कहीं संज्ञा, कही विशेषण, कहीं सर्वनाम, कहीं अव्यय और कहीं क्रिया के समान व्यवहृत होता है।

संज्ञा विशेषण-रूप में व्यवहृत

(१) **व्यक्तिवाचक**—भीष्म, कृष्ण, भीम, राम, भागीरथ आदि व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ कभी-कभी विशेषण के रूप में भी व्यवहृत होती हैं;

जैसे—भीष्म-प्रतिज्ञा, कृष्णसर्प, भीमकाय, भगीरथ-प्रयत्न, राम-राज्य आदि।

(२) अन्य संज्ञाएँ—स्वर्ण, पाप, पुण्य, धर्म, गो, आदि सँज्ञाएँ भी विशेषण के रूप में व्यवहृत होती है; जैसे—स्वर्ण-युग, पाप-वासना, पुण्य-स्मृति, गो-स्वभाव।

विशेषण संज्ञा-(विशेष्य) रूप में

दुष्ट, पंडित, पापी, लाल, गोरा, काला आदि शब्द विशेष्य रूप में भी व्यवहृत होते हैं। यथा;

'दुष्टों' को दंड देना चाहिए। 'पंडित' जी पढ़ा रहे हैं। 'पापियों' को स्वर्ग नहीं मिलता। 'लाल' बेशकिमती पदार्थ है। अफ्रिका में 'गोरों' और 'कालों' में भेद-भाव उठ गया है।

नीचे कुछ ऐसे शब्द दिये जाते हैं जो भिन्न-भिन्न रूप में प्रयुक्त हुए हैं :—

अच्छा—संज्ञा—अच्छों की पूँछ सभी जगह है।
अव्यय—अच्छा, तुम जाओ।
विशेषण—मोहन अच्छा लड़का है।

एक — विशेषण—एक न एक दिन सभी मरेंगे।
सर्वनाम—एक का बना है सेहरा, एक कब्र में पड़ा है।
क्रिया-विशेषण—एक तुम्हारे जाने से ही क्या होगा।

केवल — विशेषण—मैं केवल मोहन को जानता हूँ।
क्रिया-विशेषण—वह केवल हँसता है।
समुच्चय-बोधक—मैं तो कब का गया रहता केवल तुम्हारे लिए ठहर गया।

और— विशेषण—और लड़के कहाँ गये ?
विशेष्य—मोहन औरों की अपेक्षा पढ़ने में ज्यादा तेज है।
अव्यय—मोहन और सोहन स्कूल जाते है।

कोई— सर्वनाम—कोई खाय या न खाय, मैं तो जरूर खाऊँगा।

विशेषण—इस मर्ज की कोई दवा नहीं है।

अव्यय—कोई दो साल हो गये, अबतक उसका कुछ पता नही है।

खाक—अव्यय—तुम मेरी सहायता क्या खाक करोगे?

संज्ञा—सब किया-कराया खाक में मिल गया है।

हाँ — संज्ञा—हाँ में हाँ मिलाने से काम नहीं चलेगा।

अव्यय—हाँ जी, अब चलो!

समुच्चयबोधक—तुम्हारा कहना तो ठीक है, हाँ, एक बात इसमें अवश्य खटकती है।

क्या— सर्वनाम—उसने कल क्या कहा था?

क्रिया-विशेषण—वह चलेगा क्या खाक, पैर में तो छाले पड़ गये हैं।

विशेषण—क्या-क्या चीजें लायी जायँ।

दूसरा-विशेषण—उसका दूसरा नम्बर है।

विशेष्य—दूसरों को क्या गरज पड़ी है?

क्रिया-विशेषण—वह क्या कोई दूसरा है?

१०. शब्दों का अपप्रयोग

शब्दों को वाक्यों में प्रयुक्त करते समय यह सर्वदा ध्यान में रखना चाहिए कि उनका अपप्रयोग न हो। वर्ण, मात्राएँ आदि लिखने में, वर्णों की संधि मिलाने में, समास के प्रयोग में तथा प्रत्यय आदि जोड़कर नये शब्दों के गढ़ने में प्रायः भूलें हो जाया करती हैं।

कभी-कभी लोग संस्कृत शब्दों के ठीक-ठीक रूप से अनभिज्ञ रहने के कारण उन्हें मनमाने रूप में प्रयोग कर बैठते है। कभी संस्कृत संज्ञाओं से मनमाने ढंग से विशेषण बना लेते है। बहुत-से लोग हिंदी शब्दो में भी संस्कृत के प्रत्यय जोड़कर या संस्कृत व्याकरण के दूसरे नियमों के अनुसार मनमाने ढंग से नये-नये भाववाचक संज्ञा-शब्द गढ़ लेते हैं। ऐसा करना अनुचित है। इससे भाषा का रूप तो बिगड़ता ही

है, साथ ही, लेखक की अनभिज्ञता भी प्रगट होती है। अतः शब्दों को वाक्यों में प्रयोग करते समय उनका ठीक-ठीक रूप समझ लेना आवश्यक है। नीचे कुछ ऐसे शब्द, जो प्रायः भूल से व्यवहृत होने लगे है, और उनके शुद्ध रूप दिये जाते है।

(१) मात्रा और वर्ण-संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
अगामी	आगामी	भरथ	भरत
आधीन	अधीन	दुर्णाम	दुर्नाम
गर्द्धव	गर्दभ	फाल्गुण	फाल्गुन
प्रंतु	परंतु	सिंघ	सिंह
अर्थात	अर्थात्	द्वारिका	द्वारका
नर्क	नरक	भविष्यत	भविष्यत्
परिणित	परिणत	उज्वल	उज्ज्वल
निरिह	निरीह	घनिष्ट	घनिष्ठ
पैत्रिक	पैतृक	यथेष्ठ	यथेष्ट
पृथ्वी	पृथिवी	संतुष्ठ	संतुष्ट
महत्व	महत्त्व	आशिर्वाद	आशीर्वाद
श्रवन	श्रवण	सृजन	सर्जन
श्राप	शाप	रुग्न	रुग्ण

(२) संधि-संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
अत्योक्ति	अत्युक्ति	अक्षोहिणी	अक्षौहिणी
उपरोक्त	उपर्युक्त	जगबंधु	जगद्बंधु
इतिपूर्व	इतःपूर्व	निरोग	नीरोग
हस्ताक्षेप	हस्तक्षेप	भाष्कर	भास्कर
सन्मुख	सम्मुख	मनहर	मनोहर

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
सन्मान	सम्मान	तदोपरांत	तदुपरांत
जगतेश	जगदीश	दुरावस्था	दुरवस्था
गंगनांत	गगनानंतर	मतंतर	मतांतर
सदोपदेश	सदुपदेश	द्वीपानंतर	द्वीपांतर
मनोकस्ट	मनःकष्ट	पश्वाधम	पश्यधम

(३) प्रत्यय संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
आवश्यकीय	आवश्यक	जागृत	जागरित
आदरित	आहृत	नमित	नत
अधीनस्थ	अधीन	इच्छित	ऐच्छिक, इष्ट
एकत्रित	एकत्र	ऐक्यता	एकता, ऐक्य
अकाट्य	अखंडनीय	धैर्यता	धैर्य
क्रोधित	क्रुद्ध	सौजन्यता	सौजन्य
उत्कर्षता	उत्कर्ष	षष्ठम	षष्ठ
दारिद्रता	दारिद्र्य, दरिद्री	सिंचित	सिक्त, सेचित
क्षोभित	क्षुब्ध	व्यवहारित	व्यवहृत
भाग्यमान	भाग्यवान्	पौर्वात्य	पौरस्त्य, प्राची
विद्यमान्	विद्यमान	सप्ताहिक	साप्ताहिक
सराहनीय	श्लाघनीय	लालिमा	लाली, ललाई
भागिरथि	भागीरथी	उँचाई	ऊँचाई
त्रिवार्षिक	त्रैवार्षिक	महानता	महत्ता
बुद्धिवान्	बुद्धिमान्	भिज्ञ	अभिज्ञ
आधिक्यता	आधिक्य	बहुलता	बाहुल्य

(४) समास-संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
कृतघ्नी	कृतघ्न	निरोगी	नीरोग

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
गुणीगण	गुणिगण	दिवारात्रि	दिवारात्र
निराशा	नैराश्य	निर्दोषी	निर्दोष
पक्षीशावक	पक्षिशावक	सक्षम	क्षम्य
महाराजा	महाराज	सतोगुण	सत्त्वगुण
कालीदास	कालिदास	भ्रातागण	भ्रातृगण
निरपराधी	निरपराध	मंत्रीमंडल	मंत्रिमंडल

(५) विशेष्य-विशेषण-संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध
लब्धप्रतिष्ठित	लब्धप्रतिष्ठ
लाचारवश	लाचारीवश
निश्चयप दार्थ	निश्चित पदार्थ
आश्चर्य दृश्य	आश्चर्यजनक दृश्य
सकुशलपूर्वक	सकुशल, कुशलपूर्वक
सविनयपूर्वक	सविनय, विनयपूर्वक
वास्तविक में	वास्तव में, वस्तुतः

(६) पुनरुक्ति-संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध
यौवनावस्था	यौवन, युवावस्था
अधीनस्थ	अधीन
समतुल्य	सम, तुल्य
अपने स्वाधीन	स्वाधीन
असंख्य प्राणिगण	असंख्य प्राणी
मान्यनीय	माननीय, मान्य
पूज्यनीय	पूज्य, पूजनीय
पूज्यास्पद	पूजास्पद, पूज्य

गोप्यनीय	गोप्य, गोपनीय
ग्राह्ययोग्य	ग्राह्य, ग्रहणयोग्य

[नोट—(१) कुछ ऐसे भी शब्द है जो दो तरह से लिखे जाते हैं और उनके दोनों रूप सही माने जाते है। जैसे; राष्ट्रीय-राष्ट्रिय, अंतर्राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रिय ; कमीशन-कमिशन ; ब्रिटिश-वृटिश ; चलान-चालान; घबराहट-घबड़ाहट आदि।

(२) द्वंद्व समास में अगर दोनों लिंगों के शब्द संयुक्त होते हों तो प्रायः पहले खंड में स्त्रीलिंग का शब्द रखना चाहिए। जैसे : स्त्री-पुरुष, माता-पिता, सीताराम, राधाकृष्ण आदि।

(३) लिखने में 'व' और 'ब' की बहुत अशुद्धियाँ होती हैं। जैसे; 'पूर्व' को 'पूर्ब', 'सर्व' को 'सर्ब' आदि लिखना अनुचित है।

(क) नीचे लिखे शब्दों को 'व' से लिखना चाहिए—वहुत, वहुधा, व्रह्म, व्राह्मण, वुद्ध, वोध, वृहस्पति, वैर, वाल (केश), वालक, वाहु, वंधन, विंव, वेला आदि।

(ख) नीचे लिखे शब्दों को 'व' से लिखना चाहिए—विधान, विद्या, वैध, वैभव, पूर्व, सर्व, वार, रावण, वंदे, विमल, विलक्षण, वहिरंग, वहिष्कार, सवाल, वाणिज्य, वाण, विंदु, विनोद, सुवास, विश्लेषण, वाष्प, विहार आदि। लेकिन प्रांत का नाम लिखने के समय 'बिहार' ही लिखा जायगा।

(ग) कुछ ऐसे शब्द हैं जिनमें 'व' और 'ब' दोनों आते है। ऐसे शब्दों को नीचे लिखे ढंग से लिखना चाहिए—जवाव, नवाब, अवलंव, बावफा, वेवफा आदि।

(४) अनुनासिक वर्णों का संयोग उसी वर्ग के निरनुनासिक से होता है। जैसे; कङ्काल, गङ्गा, अञ्चल, गाण्डीव, घण्टा, दन्त, चम्पा आदि। मगर हिंदी भाषा में प्रायः सवके लिए अनुस्वार ही देने की परंपरा वढ़ती जा रही है। भाषा को सरल वनाने की दृष्टि से ऐसा करना उचित भी है। जैसे; कंकाल, गंगा, अंचल, गांडीव, घंटा, दंत चंपा, आदि।]

अभ्यास

(१) नीचे लिखे शब्दों के प्रतिशब्द बताइए—
अश्व, गज, उदधि, तुरग, उरग, उर, परिताप और करुणा।

(२) नीचे लिखे शब्दों में से प्रत्येक के पाँच-पाँच प्रतिशब्द बताइए—
चंद्र, चंद्रिका, फूल, वसंत, राजा, सूर्य और मृत्यु।

(३) नीचे लिखे शब्दों के पारिभाषिक अर्थ बताइए—
अलंकार, ग्रह, तत्त्व, भाषा, व्याकरण, संविधान और विधान।

(४) नीचे लिखे शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ बताइए :—
अंकुश, पान, पद, गो, गिरा, भूत, कनक, सुवर्ण और तीर।

(५) वाक्य-योजना द्वारा नीचे के शब्दों में प्रभेद बताइए—
सुत और सूत। लक्ष्य और लक्ष। प्रसाद और प्रासाद। सुर, सूर और शूर। खुराक और खूराक।

(६) नीचे लिखे शब्दों में अर्थ-भेद स्पष्ट कीजिए—
लज्जा, संकोच। बंधु, सुहृद, मित्र और सखा। सामान, सौदा और चीज। प्रार्थना, निवेदन। राज्य, सरकार।

(७) निम्नलिखित शब्दों के प्रतिलोम शब्द बताइए—
मूक, धर्म, नया, स्थावर, जय, योग, ब्रह्मचारी, गरकी और धनी।

(८) निम्नलिखित शब्दों को विशेषण रूप का वाक्य में प्रयोग कीजिए—
भीष्म, कृष्ण, भगीरथ, स्वर्ण, गो और केवल।

(९) नीचे लिखे शब्दों का शुद्ध रूप बताइए—
एकत्रित, घन्टा, षष्ठम, ग्रहस्थ और आश्चर्य दृश्य।

पाँचवाँ परिच्छेद

१. पद-संगठन

पहले कहा जा चुका है कि वर्णों या अक्षरों के मेल से शब्द और शब्दों के मेल से जब पूरा-पूरा अर्थ प्रगट होता है तब वाक्य बनते हैं। मगर शब्दों को यों ही इधर-उधर रख देने से उनका पूरा-पूरा अर्थ नहीं निकलता। उन्हें व्याकरण के नियमों के अनुसार क्रमबद्ध करने से ही उनसे स्पष्ट अर्थ प्रगट होता है। शब्दों को संगठित या क्रमबद्ध करने के लिए आवश्यकतानुसार उनकी आकृतियों में कुछ परिवर्तन करना पड़ता है और कुछ शब्दांश या प्रत्यय भी उनके साथ जोड़े जाते हैं। जैसे; लड़का, खाना, रोटी—इतने शब्द विशृंखल रूप से रख देने से मनोभाव स्पष्ट नही होता; इसलिए ये शब्द इसी रूप में वाक्य नही कहला सकते। लेकिन जब इन्हीं शब्दों को क्रमबद्ध कर, उनकी आकृतियों को यथारीति बदल कर तथा इनमें शब्दांशो को जोड़कर इस प्रकार—'लड़के ने रोटी खाई'—कर देते है तब एक वाक्य का रूप बन जाता है। इसी विधि को **पद-संगठन** कहते है।

जबतक शब्द अलग-अलग रहते हैं तबतक तो वे शब्द ही कहलाते है पर जब वे वाक्य में गठित हो जाते हैं तब **पद** कहलाने लगते है। कही तो शब्दों की आकृति में विकार होने से पद होते है और कहीं आकृति में विकार नही भी होता है। संक्षेप में, **वाक्य में व्यवहृत शब्द 'पद'** कहलाते है।

वाक्य में पाँच प्रकार के **पद** आते हैं—**संज्ञा-पद, सर्वनाम-पद, विशेषण-पद, क्रिया-पद, अव्यय-पद**। इनमें अव्यय-पद के रूप में कभी विकार नहीं होता, उसका रूप ज्यों का त्यों रहता है। हाँ, जब

अव्यय-पद विशेषणादि पदों के रूप में आते है तब उनमें परिवर्तन देखा जाता है।

शब्दों की आकृतियों में परिवर्तन लाने के लिए जो प्रत्यय या शब्दांश जोड़े जाते हैं वे **विभक्ति** कहलाते है। ऐसे प्रत्यय प्रायः चार प्रकार के होते हैं—लिंग-प्रत्यय, वचन-प्रत्यय, कारक-प्रत्यय, क्रिया-प्रत्यय।

२. संज्ञा-पद

वाक्य में संज्ञा शब्दों का प्रयोग करते समय हमें सबसे पहले उनके अर्थों पर विचार करना चाहिए। जहाँ एक शब्द के कई अर्थ होते हैं वहाँ उसके मुख्य अर्थ का ध्यान रखना चाहिए। जहाँ एक से अधिक शब्दों के अर्थ मिलते-जुलते हों वहाँ उनके सूक्ष्म भेदों पर ध्यान रखना चाहिए। संक्षेप में, संज्ञा-पदों का चुनाव करते समय हमे सदा सतर्क रहना चाहिए और उनके प्रयोग में संगति का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए।

कभी-कभी **व्यक्तिवाचक** संज्ञा-शब्दों का प्रयोग **जातिवाचक** संज्ञा-शब्दों के रूप में हो जाया करता हैं। 'गोपाल' शब्द 'कृष्ण' के अर्थ में **व्यक्तिवाचक** हैं, मगर 'गौओं को पालनेवाले' के अर्थ में **जातिवाचक**। उसी प्रकार जयचन्द, विभीषण, क्विसलिंग—ये शब्द व्यक्तियों के नाम के लिए आये हैं; मगर जब ये शब्द 'देशद्रोही' के अर्थ में आते है तब **जातिवाचक** हो जाते है।

कभी-कभी **जातिवाचक** संज्ञा शब्द भी जब एक ही वस्तु का बोध कराते हैं तब वे **व्यक्तिवाचक** कहलाते हैं। यही क्यों, जब कोई भी पद या पद-समूह रूढ़ अर्थ में आता हैं तब वह व्यक्तिवाचक हो जाता हैं। जैसे; पुरी (जगन्नाथजी के लिए), भारतेंदु (हरिश्चंद्र कवि के लिए), देवघर (वैद्यनाथधाम के लिए), विद्यासागर (ईश्वरचंद्र के लिए), बापू (महात्मा गाँधी के लिए), नेहरू (पं० जवाहरलाल नेहरू के लिए), सिनेट (अमेरिका की विधान सभा के लिए), कांग्रेस (अखिल भारतीय राष्ट्रीय

महासभा के लिए), 'यह पटना है' (एक अखबार का स्थाई शीर्षक), 'जायकेदार चटनी' (एक अखबार का स्थाई शीर्षक) आदि।

वाक्य में संज्ञा-शब्दों या यों कहिये कि कुछ अंशों में सभी विकारी शब्दों की आकृतियाँ बदलने के लिए लिंग, वचन और कारक के प्रत्ययो का प्रयोग जानना आवश्यक है; क्योंकि वाक्य में कोई भी विकारी शब्द किसी न किसी लिंग, वचन और कारक के रूप मे ही प्रयुक्त होता है और इन्ही कारणों से शब्दों मे विकार भी उत्पन्न होता है। हाँ, इनके अतिरिक्त क्रिया-पद में धातु-प्रयोग के द्वारा **ता, या, आ, जा, था** आदि क्रिया-प्रत्ययों या विभक्तियों के जोड़ने से भी विकार उत्पन्न होता है।

३. लिंग-प्रयोग

हिंदी भाषा में केवल दो लिंग होते है—**स्त्रीलिंग और पुंल्लिंग**। जिन शब्दों से स्त्रीजाति का बोध होता है वे **स्त्रीलिंग** में और जिनसे पुरुष-जाति का बोध होता है वे **पुंल्लिंग** में आते हैं।

अंगरेजी आदि भाषाओं में लिंग का विचार केवल संज्ञा और सर्वनाम शब्दों के ही संबंध में होता है; लिंग के कारण विशेषण, क्रिया आदि के शब्दों के रूप नही बदलते। मगर हिंदी में बहुतेरे विशेषणों और क्रिया-विशेषणों तथा सभी क्रियाओं के रूप लिंग के अनुसार बदलते रहते हैं। इसीलिए हिंदी में लिंग की समस्या बहुत पेंचीदी है। जितने भी संज्ञा-शब्द है उन सबका लिंग-ज्ञान रखना पड़ता है।

व्याकरण में मुख्यतः शब्दों का ही विचार होता है। शब्दों द्वारा सूचित होनेवाले अर्थों को उतना महत्त्व नही दिया जाता, जितना शब्दो को दिया जाता है। अतः व्याकरण में लिंग-निर्णय दो प्रकार से होता है—एक तो शब्दों के रूप से और दूसरे, उनके अर्थ से। जैसे; राजा-रानी, घोड़ा-घोड़ी आदि कुछ प्राणिवाचक संज्ञाओं का लिंग-निर्णय तो हम उनके अर्थ के आधार पर कर लेते हैं, मगर कुछ प्राणिवाचक और प्रायः सभी अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग-निर्णय करते समय हमें उनके रूप का

ही सहारा लेना पड़ता है। अतः लिंग-निर्णय के संबंध में निम्नलिखित साधारण नियमों का हमें सर्वदा ध्यान रखना चाहिए—

(१) जिन प्राणियों में स्त्री और पुरुष का भेद बिलकुल निश्चित रहता है उन्हें सूचित करनेवाले शब्दों का लिंग उनके अर्थ के आधार पर निश्चित किया जाता है और ऐसे शब्दों का लिंग जानने में कोई कठिनाई भी नहीं होती। जैसे—लड़का–लड़की; घोड़ा–घोड़ी; गाय–बैल आदि।

(२) लेकिन जिन प्राणियों में स्त्री–पुरुष का भेद प्रत्यक्ष रूप से प्रगट नहीं होता उनके सूचक शब्दों का लिंग उनके रूप के आधार पर निश्चित होता है। जैसे—

(क) प्राणिवाचक पुंलिंग शब्द—

तीतर, चीलर, काग, गृद्ध, बाज, मेंढ़क, सारस, गरुड़, लाल, तोता, कपोत, कोकिल, प्राणी, जीव, पक्षी, सियार, खरहा आदि।

(ख) प्राणिवाचक स्त्रीलिंग शब्द—

चील्ह, बटेर, कोयल, मैना, श्यामा, मुनिया, चिड़या, तूती, उड़ीस, जोंक, कचबंचिया, गौरैया, बुलबुल, लोमड़ी, जान आदि।

[नोट—शिशु, मित्र, दंपति, कुतरू, परिवार, पठरू, बछरू आदि शब्द उभयलिंगी हैं, मगर पुंल्लिग के रूप में व्यवहृत होते है।]

(३) संस्कृत के जो तत्सम या तद्भव शब्द हिंदी में प्रयुक्त होते हैं वे प्रायः उसी लिंग में आते हैं, जिस लिंग में संस्कृत में आते है; मगर कुछ ऐसे भी शब्द हैं जिनका लिंग हिंदी में बदल जाता है।

(क) संस्कृत के ऐसे पुंल्लिग तत्सम शब्द जो हिंदी में स्त्रीलिंग माने जाते हैं—

आत्मा, अग्नि, महिमा, संतान, विधि, विनय, जय, विजय, देह, शपथ, ऋतु, मृत्यु, सामर्थ्य आदि।

(ख) संस्कृत के ऐसे स्त्रीलिंग शब्द जो हिन्दी में पुंल्लिग माने जाते हैं—

देवता, तारा, व्यक्ति।

(ग) 'तंतु' और 'विंदु' शब्द संस्कृत में पुंल्लिग मे आते है मगर उनके तद्भव रूप 'ताँत' और 'बूँद' हिंदी मे स्त्रीलिंग माने जाते है।

(४) संस्कृत के जो शब्द नपुंसक या क्लीव लिंग में आते हैं, वे प्रायः हिंदी में पुंल्लिग के माने जाते है। मगर 'वस्तु', 'पुस्तक', 'आयु', 'आय', 'तरंग', 'औषध', 'उपाधि' आदि थोड़े से क्लीव-लिंगी शब्द हिंदी में स्त्रीलिंग में आते हैं।

[**नोट**—'देवता' शब्द जब देवत्व के अर्थ में और 'व्यक्ति' शब्द व्यक्त करने के अर्थ मे आते है तब वे हिंदी में भी स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार 'विधि' शब्द जब 'ब्रह्मा' के अर्थ में आता है तब वह भी संस्कृत की तरह हिंदी में भी पुंल्लिग में ही व्यवहृत होता हैं।]

'आत्मा' शब्द के संबंध में एक विद्वान् का कथन है कि जहाँ इसका प्रयोग ईश्वर-अंश के अर्थ में हो वहाँ इसे पुंल्लिग और जहाँ जीव-अंश के अर्थ मे हो वहाँ स्त्रीलिंग माना जाय।

पुंल्लिग प्रयोग—आत्मा न जरता है, न मरता है।

स्त्रीलिंग प्रयोग—मेरी आत्मा इस बात की गवाही नहीं देती।

(५) विदेशी भाषाओं के जो शब्द जिस लिंग के माने गये है, हिंदी में आने पर भी वे प्रायः उसी लिंग के माने जाते है। कुछ परकीय शब्दों का लिंग-निर्णय हम उनके अर्थ या रूप की समानता के आधार पर भी कर लेते है। **कांग्रेस, पार्लामेंट, कान्फ्रेंस, मीटिंग** आदि शब्द अपनी भाषा में स्त्रीलिंग के शब्द माने जाते है और हिंदी में भी इन्हें स्त्रीलिंग मे ही लिखा जाता है। इसके विपरीत **अपील, रिपोर्ट, नोटिस, मोटर** आदि अंगरेजी के शब्द है तो नपुंसक लिंग के, मगर हिंदी में इन्हें इसलिए स्त्रीलिंग मान लिया गया है, चूँकि इनके अर्थ में आनेवाले शब्द **प्रार्थना, सूचना, विज्ञप्ति, गाड़ी** आदि शब्द हिंदी में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते है।

(६) साथ ही, दूसरी भाषाओं के जो शब्द हिंदी में जिस लिंग में प्रयुक्त होते हैं, उन शब्दो के पर्यायवाची संस्कृत तत्सम और तद्भव शब्दों

को भी उसी लिंग में प्रयोग मे लाने की हमारी प्रवृत्ति रहती है। जैसे; **'हवा'** शब्द अपनी भाषा में स्त्रीलिंग है। हिंदी मे भी वह स्त्रीलिंग के रूप में ही आई है, मगर इसके पर्यायवाची शब्द **वायु, पवन, समीर** संस्कृत मे पुंल्लिंग है तो भी हिंदी में धड़ल्ले से इनका प्रयोग स्त्रीलिंग में होने लगा है।

वायु बहती है, घटा उठती है, जलती है अगिन—(हरिऔध)

पवन लागी बहन— (देवीप्रसाद 'पूर्ण')

(७) रूप के आधार पर अप्राणिवाचक तद्भव शब्दों का लिंग-निर्णय करने मे मुख्यतः इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि अधिकांश अकारांत और आकारांत शब्द पुंल्लिंग तथा ईकारांत शब्द स्त्रीलिंग में आते है। जैसे—

(क) अकारांत और आकारांत पुंल्लिग शब्द

दाँत, कान, बाल, केश, मुँह, कीचड़, पहिया, मैदा, आँटा, पैसा, गल्ला, कटोरा तथा भागना, जाना, खाना आदि क्रियार्थक संज्ञाएँ।

(ख) अकारांत और आकारांत स्त्रीलिंग शब्द

आँच, बाँह, आँख, नाक, साँस, लहर, सड़क, घास, ईंट, भौंह, कीच, मूँछ आदि।

(ग) ईकारांत स्त्रीलिंग शब्द

रोटी, सीटी, गाली, भोटी सवारी, मिट्टी, गोली, चिट्ठी, साड़ी, धोती आदि।

(घ) ईकारांत पुंल्लिग शब्द

घी, दही, मोती, पानी आदि।

(८) हिंदी में प्रयुक्त विदेशी भाषाओं के शब्दों का लिंग-निर्णय करने मे भी यथासंभव उपर्युक्त नियम का ही निर्वाह किया जाता है। जैसे—

पुंल्लिग—कमरा, कोट, तमाशा, गड़गड़ा, पायजामा, सोडा आदि।

स्त्रीलिंग—कमिटी, अमीरी, चिमनी, सज्जी आदि।

मगर संस्कृत के अधिकांश आकारांत शब्द स्त्रीलिंग में आते हैं तथा अरबी-फारसी के आकारांत शब्दों में कुछ तो पुंल्लिग और कुछ स्त्रलिंग में भी आते हैं। जैसे—

स्त्रीलिंग तत्सम शब्द—दया, कृपा, लता, सभा, भाषा, आशा, माया आदि।

आरबी-फारसी के स्त्रीलिंग शब्द—हवा, सजा, कज़ा, दवा, खता, बला, दुआ, रज़ा, दफा, वफा, तमन्ना, दुनियाँ आदि।

अरबी-फारसी के पुंल्लिग शब्द—मजा, तकाजा, मोजा, रोजा, रौजा आदि।

(९) प्रायः सभी पहाड़ों, ग्रहों, दिनों, महीनों, नगों, धातुओं और देशों के नाम पुंल्लिग में तथा तिथियो, नक्षत्रों और नदियों के नाम स्त्रीलिंग मे प्रयुक्त होते है लेकिन ग्रहों में पृथिवी' और धातुओं में 'चाँदी' और 'पीतल' स्त्रीलिंग है तथा नक्षत्रों में 'पु य', 'पुनर्वसु', 'हस्त', 'मूल', 'पूर्वाषाढ़' और 'उत्तराषाढ़' पुंल्लिग हैं। नदियो में केवल 'सोन' और 'ब्रह्मपुत्र' पुंल्लिग माने जाते हैं।

(१०) अन्न-फल-वाची शब्दो मे **जौ, मटर, चना, उड़द, गेहूँ, गन्ना, धनिया, तिल नींबू, आम, जामुन** आदि शब्द पुंल्लिग है तथा **मूँग, मसूर, अरहर, लीची, नारंगी, दाख, गाजर, मूली** आदि स्त्रीलिंग हैं।

(११) प्रत्ययांत शब्दों में जिनके अंत में **ता, वट, आहट, इया, आई, नी, ना और न,** प्रत्यय हों वे प्रायः स्त्रीलिंग में आते हैं और जिन शब्दों के अंत में **त्व, पा, पन, य** और **आव** हों वे प्रायः पुंल्लिग होते हैं। जैसे—

स्त्रीलिंग शब्द—मित्रता, स्वार्थपरता, तरावट, चिकनाहट, लंबाई, चौड़ाई, चलनी, तानी, भरनी, चलन आदि।

पुंल्लिंग शब्द—पुरुषत्व, मनुष्यत्व बुढ़ापा, लड़कपन, बचपन, राज्य, चढ़ाव, उतराव, चुनाव आदि ।

(१२) इसी प्रकार अरबी-फारसी के जिन शब्दों के अंत में **ब, आब,** और **श** रहते हैं वे प्रायः पुंल्लिंग में आते हैं और जिनके अंत में **त, फ, अ, ई** और **ल** रहते हैं वे स्त्रीलिंग में आते है । जैसे—

पुंल्लिंग शब्द—गुलाब, जुलाब, हिसाब, खिजाब, कबाब, जवाब, नसीब, मजहब, ताश, गोश, गश, जोश, मतलब आदि ।

अपवाद—किताब, तलब, शब, दाब, तर्कीब, सुरखाब, ख्वाब, मिहराब, शराब आदि स्त्रीलिंग हैं ।

स्त्रीलिंग शब्द—जात, दौलत, नौबत, कफ, रसीद, तर्कीब, तमीज़, इलाज, फसल, तफसील आदि ।

अपवाद—'ताबीज़' शब्द पुंल्लिंग है ।

(१३) जिन हिंदी शब्दों के अंत में **त, आस** और **इश** रहें वे भी प्रायः स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं । जैसे—

स्त्रीलिंग शब्द—रात, बात, घात, गत, प्यास, आस, ओस, मिठास, कोशिश, पुरशिश, नालिश आदि ।

अपवाद—भात, दाँत, गोत, मूत, सूत, भूत, प्रेत, शर्बत, बंदोबस्त, दस्त, दस्तखत, निकास, विकास, इजलास आदि ।

(१४) यौगिक या सामासिक शब्दों का लिंग उन शब्दों के अंतिम खंड के अनुसार होता है । जैसे—

पुंल्लिंग शब्द माता-पिता, कृपा-सिंधु, गंगासागर, विद्यालय, स्त्रीलिंग, पुंल्लिंग, रसोई-घर, लड़ाई-झगड़ा आदि ।

स्त्रीलिंग शब्द—जयश्री, वसंतश्री, हेमलता, पाठशाला, प्रयोगशाला ।

(१५) प्राणिवाचक आकारांत पुंल्लिंग शब्दों की तरह कुछ आकारांत अप्राणिवाचक शब्द भी ईकारांत हो जाने से स्त्रीलिंग के शब्द हो जाते हैं । मगर यह रूप-परिवतन अर्थ के आधार पर नहीं, बल्कि रूप के आधार पर शब्दों की गुरुता-लघुता दिखाने के लिए होता है । जैसे—

डोरा-डोरी; रस्सा-रस्सी; कोठा-कोठी; अँगूठा-अँगूठी; चिट्ठा-चिट्ठी; भट्ठा-भट्ठी; पट्टा-पट्टी; ओढ़ना-ओढ़नी आदि।

इन शब्दों के कुछ जोड़े ऐसे भी हैं जो लघुता-गुरुता प्रकट नहीं करते। यही क्यों, किसी-किसी जोड़े के स्त्रीलिंग और पुंल्लिंग रूपों के अर्थ में किसी तरह की संगति भी नही है। जैसे—अँगूठा-अँगूठी—इस जोड़े में 'अँगूठी' को 'अँगूठे' से कोई संबंध नही है।

स्त्री-प्रत्यय

पुंल्लिंग शब्द से स्त्रीलिंग बनाने के लिए जो प्रत्यय काम में लाये जाते हैं उन्हें **स्त्री-प्रत्यय** कहते हैं। **ई, इया, इन, नी, अनी, आनी, आइन** और **आ** ऐसे प्रत्यय हैं।

ई—(१) प्राणिवाचक आकारांत पुंल्लिंग शब्दों के अंत्य स्वर के बदले 'ई' लगाने से। जैसे; घोड़ा-घोड़ी; लड़का-लड़की, बकरा-बकरी; गधा-गधी।

(२) संबंध-सूचक शब्दों में—चाचा-चाची; मामा-मामी; नाना-नानी; दादा-दादी; काका-काकी आदि।

(३) कुछ अकरांत तत्सम शब्दों में—नर-नारी; देव-देवी; पुत्र-पुत्री; नद-नदी इत्यादि।

इया—निरादर या स्नेह के कारण 'ईया' प्रयत्य लगाकर पुंल्लिंग से स्त्रीलिंग शब्द बनाये जाते हैं। कभी-कभी अप्राणिवाचक अकारांत या आकारांत शब्दों में लघुता दिखाने के लिए भी 'इया' प्रत्यय लगाते हैं। जैसे—कुत्ता-कुतिया; बूढ़ा-बुढ़िया; बेटा-बिटिया; लोटा-लुटिया; खाट-खटिया; डिब्बा-डिबिया आदि।

इन—(१) ब्राह्मण को छोड़कर अन्य वर्ण-सूचक या व्यापारवाची पुंल्लिंग शब्दों में 'इन' प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिंग के शब्द बनाये जाते है। जैसे; कुम्हार-कुम्हारिन; चमार-चमारिन; तेली-तेलिन; ग्वाला-ग्वालिन इत्यादि।

(२) मनुष्येतर प्राणिवाचक शब्दों में—साँप-साँपिन; बाघ-बाघिन; सियार-सियारिन इत्यादि।

नी—हाथी—हथिनी; ऊँट—ऊँटनी; सर्प—सर्पणी, मोर—मोरनी ।

आनी—कुछ उपनामवाची; थोड़े से अन्य पुंल्लिंग तथा देवतावाची शब्दों में 'आनी' जोड़कर उनके स्त्रीलिंग शब्द बनाये जाते है। जैसे; खत्री—खत्रानी; देवर—देवरानी; जेठ—जेठानी; मेहतर—मेहतरानी; चौधरी—चौधरानी; भव—भवानी; इंद्र—इंद्राणी इत्यादि ।

आइन—उपनामवाची पुंल्लिंग शब्दों में—ओझा—ओझाइन; पाठक—पठकाइन; मिसर—मिसराइन; लाला—ललाइन आदि ।

आ—संस्कृत तथा अरबी-फारसी के कुछ पुंल्लिंग शब्दों में 'आ' प्रत्यय लगाकर उनके स्त्रीलिंग शब्द बनाये जाते हैं। जैसे; पाठक—पाठिका; कोकिल—कोकिला; शूद्र-शूद्रा; छात्र-छात्रा; बालक-बालिका; प्रियतम-प्रियतमा; नायक—नायिका; साहब—साहिबा; वालिद—वालिदा आदि ।

[**नोटः**—कुछ ऐसे स्त्रीलिंग शब्द भी है, जिनमें प्रत्यय लगाकर उनके पुल्लिंगरूप बनाये जाते है। जैसे; भैंस—भैंसा; वहन—बहनोई; ननद—ननदोई, जीजी—जीजा आदि ।]

४. वचन

'मोहन ने एक पेड़ा खाया; रमेश ने दस पेड़े खाये।' 'मोहन ने एक कापी खरीदी; रमेश ने दस कापियाँ खरीदीं।' 'मेरे पास एक रुपया है; उनके पास दस रुपए है।' 'प्रदर्शनियों में सामान सब कितने मँहगे मिलते हैं?' 'जितने मुँह, उतनी बातें।' 'एक मुँह, एक बात।' इन वाक्यों को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है, कि इनमें वहुत से शब्द ऐसे हैं, जिनके रूप में संख्या के कारण अंतर पड़ गया है। 'पेड़ा' एक है तो क्रिया- 'खाया' है। एक से दस होने पर 'पेड़ा' का 'पेड़े' और 'खाया' का 'खाये' हो गया है। इसी प्रकार संख्या ने ऐसा फेर लगा दिया है कि केवल संज्ञा और क्रियापदों का ही नहीं; बल्कि सर्वनाम, विशेषण और क्रिया-विशेषण शब्दों का भी रूपांतर हो गया। इससे सिद्ध होता है कि संख्या के कारण भी संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और क्रिया-विशेषण के शब्दों के रूप बदलते रहते हैं।

इसी संख्या-बोधक तत्त्व को व्याकरण में 'वचन' कहा जाता है— अर्थात् संज्ञा, क्रिया, सर्वनाम, विशेषण या क्रिया-विशेषण के जिस रूप से संख्या का बोध होता है, उसे व नन कहते है।

वचन का संबंध वस्तु की संख्या से रहता है, न कि उसकी मात्रा या परिमाण से। जैसे—'एक मन चावल से काम नहीं चलेगा'—इस वाक्य में 'एक मन चावल' संख्या का नही बल्कि परिमाण का बोध करता है, इसलिए एकवचन में आया हैं। हिंदी व्याकरण में दो वचन होते हैं— (१)एकवच न (-) बहुवचन। जहाँ एक वस्तु का बोध होता है, वहाँ 'एकवचन' का प्रयोग होता है और जहाँ एक से अधिक वस्तुओं का बोध होता है वहाँ 'बहुवचन' का। लेकिन, हिंदी में प्राण, दर्शन, हस्ताक्षर, आंसू, होश आदि कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो हर हालत में बहुवचन ही में आते है। जैसे—उनके प्राण-पखेरु उड़ गये। मैंने बापू के दर्शन किये। मोहन ने हस्ताक्षर कर दिये। उसकी आँखों से आँसू छलक पड़े। राम के होश उड़ गये।

वचन आदि के कारण संज्ञादि के शब्दों का जो रूप-परिवर्तन होता है, उसे 'विकार' कहते हैं और जिन शब्दों मे ऐसा परिवर्तन होता है, वे विकारी-शब्द कहलाते हैं। लेकिन 'आदि', 'सब', 'अनेक' आदि कुछ ऐसे भी बहुवचन-बोधक शब्द हैं जिनके रूपों में कभी विकार उत्पन्न नहीं होता। जैसे—'सभा भवन में अनेक ('अनेकों' नहीं) श्रोता थे; सब ने ('सबों ने' नहीं) मेरी बात मान ली; रमेश, मोहन, राम आदि ('आदियों' नहीं) छात्रों ने परीक्षा नही दी।' इसी प्रकार 'सामग्री' शब्द भी है तो बहुवचन-बोधक, मगर इसका प्रयोग सदा एकवचन में होता है। जैसे--'भांडार में पर्याप्त सामग्री ('सामग्रियाँ' नही) है।' जोड़, जोड़ा, जून आदि कुछ ऐसे शब्द भी मिलते है जो दो वस्तुओं का बोध कराते हैं, मगर इनका प्रयोग एकवचन में होता हैं। जैसे--'मैंने एक जोड़ा जूता मोल लिया या दो जोड़े जूते मोल लिये। अँगरेजी भाषा में 'फुट' एकवचन का रूप है और 'फीट' बहुवचन का। हिन्दी में भी कुछ लोग

लिखते हैं—एक 'फुट' चौड़ा, पाँच 'फीट' लंबा। लेकिन इस संबंध में ध्यान रखना चाहिए कि हिंदी में दूसरी भाषाओं के शब्द तो लिये जा सकते हैं, मगर उनका प्रयोग हिंदी के व्याकरण के ही अनुसार होना चाहिए और हिंदी व्याकरण में कोई ऐसा नियम नहीं है जिससे 'फुट' का बहुवचन 'फीट' बनता हो। अतः हमें कहना चाहिए—पाँच फुट लंबा। इस तरह 'कागज' का बहुवचन रूप 'कागजात' भी नही होना चाहिए।

वचन के प्रयोग में भी लोग कई तरह की भूले करते है। वाक्य-प्रकरण में इनके प्रयोगों के संबंध में पुनः कुछ बताया जायगा। यहाँ पर हम दो तरह के कुछ वाक्य या वाक्यांश दे रहे है। पहली तरह के वाक्यों या वाक्यांशों में वचन के प्रयोग में भूल की गई है और दूसरी तरह के वाक्यों या वाक्यांशों में वचन का सही प्रयोग किया गया है :—

अशुद्ध प्रयोग	शुद्ध प्रयोग
दोनों की दशा एक-सी है।	दोनों की दशाएँ एक-सी है।
दोनों की दशाएँ एक हैं।	दोनों की दशा एक है।
मै नावो पर सवार था	मैं नाव पर सवार था।
वे लोग कुत्ते की मौत मरे।	वे लोग कुत्तों की मौत मरे।
क्रमशः निम्नलिखित बात हुई।	क्रमशः निम्नलिखित बातें हुईं।
सभी वर्ग के लोग उपस्थित थे।	सभी वर्गों के लोग उपस्थित थे।
हममें से हर एक यह काम कर सकते हैं।	हममें से हर एक यह काम कर सकता है।
सब लोग अपनी राय दें।	सब लोग अपनी-अपनी राय दें।
उसे सौ रुपये जुर्माने हुए।	उसे सौ रुपया जुर्माना हुआ।
झुंडों के झुंड। घोड़ों पर घोड़े।	झुंड के झुंड। घोड़े पर घोड़े।
मेरे पैर नहीं उठते थे।	मेरा पैर नहीं उठता था।
उन्होंने हाथ जोड़ा।	उन्होंने हाथ जोड़े।
कै बजे ? चार बजा।	कै बजा ? चार बजे।
श्री शुकदेव मुनि बोला।	श्री शुकदेव मुनि बोले।

५. विभक्तियाँ

"राम अपनी क्षुधा-तृप्ति बागीचा वृक्ष फल तोड़कर हाथ मैदान् खाता है"—ये दस शब्द एक साथ आये है और अंत में एक समापिका क्रिया भी है; फिर भी शब्दो के इस समूह को हम इसलिए वाक्य नहीं कहेंगे, चूँकि इन शब्दों से किसी अभिप्राय का स्पष्टीकरण नही होता। यह सही है कि संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण शब्द क्रिया की उत्पत्ति में सहायक होते हैं। साथ ही, यह भी सही है कि ये शब्द किसी न किसी कारक के रूप में ही प्रयुक्त होकर क्रिया की उत्पत्ति में सहायक होते है और यही कारण है कि व्याकरण में **कारक, संज्ञा या सर्वनाम के उस रूप को कहा जाता है जिससे वाक्य में उसका संबंध क्रिया के साथ प्रकाशित होता है।**

ऊपर दिये गये शब्द-समूह में 'खाता है' क्रिया को उत्पत्ति में सहायता देनेवाले संज्ञादि शब्दों का अभाव नहीं है; फिर भी, ये शब्दे एक वाक्य की रचना करने मे इसलिए असमर्थ है कि न तो इनका एक दूसरे से संबंध है और न ये क्रिया के साथ संबंध स्थापित करने मे समर्थ हैं। और, वाक्य में अर्थ लाने के लिए शब्दों के पारस्परिक मेल या संगति का होना परमावश्यक है। अतः उपर्युक्त शब्दों में पारस्परिक संबंध स्थापित करने के लिए हम इन्हें इस रूप में लिखते हैं—

'राम अपनी क्षुधा-तृप्ति के लिए बागीचे के वृक्ष से फल तोड़कर हाथ से मैदान मे खाता है।'

अब ये शब्द एक यथार्थ वाक्य बन जाते है; क्योंकि शब्दों में पारस्परिक संबंध स्थापित करने के लिए हमने इनके साथ आवश्यकतानुसार के लिए, के, से, में आदि शब्दांश जोड़ दिये। ये ही शब्दांश 'विभक्तियाँ' कहलाते है और यहाँ कारक-विभक्तियों के रूप मे इनका प्रयोग हुआ है। संक्षेप में—

वाक्य में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया के शब्दों का पारस्परिक संबंध बतलाने तथा अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए जो शब्दांश उन शब्दों के साथ जोड़े जाते हैं वे '**विभक्ति**' कहलाते हैं।

मुख्य विभक्तियाँ ये हैं--**ने, को, से, का, में, पर**।

'ने' विभक्ति

वाक्य में जो शब्द काम करनेवाले के अर्थ में प्रयुक्त होता है उसे '**कर्त्ता**' कहते हैं। राम सोता है—इस वाक्य में सोने का कार्य संपादित करनेवाला 'राम' है; इसलिए 'राम' कर्त्ता कारक है।

वाक्य में कर्त्ता दो प्रकार से प्रयुक्त होता है--एक प्रधान रूप से और दूसरे अप्रधान रूप से। जहाँ क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्त्ता के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार होते है वहाँ कर्त्ता '**प्रधान**' या '**उक्त**' कहलाता है; पर जहाँ क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार नहीं होकर कर्म के अनुसार होते है वहाँ कर्त्ता '**अप्रधान**' या '**अनुक्त**' कहलाता है।

जैसे--'राम सोता है'--इस वाक्य में कर्त्ता 'राम' है और क्रिया 'सोता है' के लिंग, वचन आदि कर्त्ता के लिंग, वचन आदि के अनुसार है। अतः 'राम' '**प्रधान**' या '**उक्त**' कर्त्ता है। मगर 'राम' ने रोटी खायी'--इस वाक्य में क्रिया के लिंग, वचन आदि कर्त्ता 'राम ने' के अनुसार नहीं आकर कर्म 'रोटी' के लिंग, वचन आदि के अनुसार आये हैं। अतः यहाँ 'राम ने' '**अप्रधान**' या '**अनुक्त**' कर्त्ता है।

प्रधान या उक्त कर्त्ता के साथ कोई विभक्ति नहीं जुटती, मगर अनुक्त कर्त्ता के साथ '**ने**' विभक्ति आती है, अर्थात्--

(१) सकर्मक क्रियाओं के सामान्यभूत, आसन्नभूत, पूर्णभूत और संदिग्ध भूतकालों में कर्त्ता के साथ '**ने**' विभक्ति आती है। जैसे—मैंने पुस्तक पढ़ी; उसने खेल देखा है; मोहन ने आम खाया था; रमा ने फल खाया होगा।

[अपवाद—(क) बकना, बोलना, भूलना, लाना (ले आना)—इन क्रियाओं के सकर्मक होने पर भी इनके कर्त्ता के साथ 'ने' विभक्ति किसी हालत में नहीं आती। हाँ, यदि सजातीय कर्म के साथ 'बोलना' क्रिया उक्त चारों भूतकालों में प्रयुक्त हो तो कर्त्ता के साथ 'ने' का प्रयोग प्रायः देखा जाता है। जैसे; उसने कई बोलियाँ बोली।

(ख) समझना, जनना, सोचना, पुकारना—इन सकर्मक क्रियाओं के उक्त चारों भूतकालों में कर्त्ता के साथ कहीं 'ने' विभक्ति आती है और कहीं नहीं भी आती है। जैसे—गाय बछड़ा जनी; गाय ने बछड़ा जना। मैं समझा; मैंने यह बात समझी। वह पुकारा: उसने मोहन को पुकारा। मोहन सोचा; मोहन ने यह बात सोची होगी। "मैं समझी थी अपने मन मे हम केवल हैं दो ही"—(पथिक)।

(मगर अधिकांश लेखक उक्त चारों क्रियाओं के चारों भूतकालों में कर्त्ता के साथ 'ने' विभक्ति का प्रयोग करने लगे है।)

(ग) सजातीय कर्म लेने के कारण कभी-कभी अकर्मक क्रिया भी सकर्मक का रूप ले लेती है। ऐसी अवस्था मे यदि क्रिया उपर्युक्त चारों भूतकालो में आवे तो उसके कर्त्ता के साथ कही तो 'ने' विभक्ति जुटती है और कही नहीं भी जुटती। जैसे—सेना कई लड़ाइयाँ लड़ी: उसने मेरे साथ टेढ़ी चाल चली।]

(२) जब संयुक्त क्रिया के दोनों खंड सकर्मक हों तो उपर्युक्त चारों भूतकालों में कर्त्ता की 'ने' विभक्ति आती है। जैसे—मैंने भर पेट खा लिया।

[अपवाद—(क) जिस संयुक्त क्रिया के अंतिम खंड मे 'करना' रहे तो उसके कर्त्ता के साथ 'ने' कभी नही जुटता। जैसे—मैं देखा किया।]

(३) जब संयुक्त क्रिया का कोई खंड अकर्मक रहे तो उसके कर्त्ता के साथ 'ने' विभक्ति प्रायः नही आती।

[अपवाद—(क) मगर यदि संयुक्त अकर्मक क्रिया का अंतिम खंड 'डालना' रहे तो उपर्युक्त चारों भूतकालों मे कर्त्ता 'ने' विभक्ति के

साथ अवश्य आती है, लेकिन यदि अंतिम खंड 'देना' हो तो विकल्प से आती है। जैसे--मैंने बैठे-बैठे रात भर जाग डाला। मैं बैठे-बैठे रात भर जाग दिया।

(ख) हँस देना, रो देना, मुस्करा देना--इन तीनों क्रियाओं के सामान्य, आसन्न, पूर्ण और संदिग्ध भूतकालों में कर्त्ता के साथ 'ने' विभक्ति आनी तो नहीं चाहिए, मगर अधिकाश लेखक इस नियम की उपेक्षा कर प्रायः 'ने' का प्रयोग करने लगे है।]

(४) थूकना, खाँसना--इन दो अकर्मक क्रियाओं के सामान्य, आसन्न, पूर्ण और संदिग्ध भूतकालों में कर्त्ता के साथ 'ने' विभक्ति का प्रयोग प्रायः देखा जाता है। जैसे--राम ने थूका; मोहन ने खाँसा।

'को' विभक्ति

कर्त्ता की नाईं कर्मकारक भी दो प्रकार से वाक्य में प्रयुक्त होता है—एक **प्रधान** या **उक्त** रूप से और दूसरे **अप्रधान** या **अनुक्त** रूप से। जहाँ वाक्य में क्रिया के लिंग, वचन, पुरुष, कर्म के लिंग, वचन, पुरुष के अनुसार हों वहाँ कर्म **प्रधान** या **उक्त** कहलाता है, मगर जहाँ कर्म के लिंग, वचन, पुरुष के अनुसार नहीं होकर कर्त्ता के लिंग, वचन, पुरुष के अनुसार हों वहाँ कर्म **अप्रधान** या **अनुक्त** कहलाता है।

जैसे—'स्त्री से कपड़ा सीया जाता है'—इस वाक्य में 'सीया जाता है' (क्रिया) के लिंग, वचन और पुरुष 'कपड़ा' (कर्म) के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार आये हैं, इसलिए 'कपड़ा' **प्रधान** या **उक्त** कर्म है। मगर 'स्त्री कपड़ा सीती है'—इस वाक्य में 'सीती है' (क्रिया) के लिंग वचन, पुरुष 'कपड़ा' (कर्म) के अनुसार नहीं आकर, 'स्त्री' (कर्त्ता) के अनुसार आये हैं। अतः यहाँ 'कपड़ा' **अप्रधान** या **अनुक्त** कर्म है।

जहाँ सकर्मक क्रिया दो कर्म लेती है, अर्थात् द्विकर्मक क्रिया के दोनों कर्मों मे एक **मुख्य कर्म** और दूसरा **गौणकर्म** कहलाता है। प्रायः देखा जाता है कि ऐसे कर्मों में एक वस्तुबोधक और दूसरा प्राणिबोधक होता है। वस्तुबोधक को **मुख्य कर्म** और प्राणिबोधक को **गौणकर्म** कहते हैं।

जैसे—'उसने मोहन को इतिहास पढ़ाया'—इस वाक्य में 'मोहन को' गौणकर्म और 'इतिहास' मुख्य कर्म है।

सजातीय कर्म—यदि किसी अकर्मक क्रिया के साथ उसी धातु से निकला हुआ या मिलता-जुलता कर्म आवे तो वह **सजातीय** कर्म कहलाता है। जैसे—वह दौड़ दौड़ता है; वह खेल खेलता है इत्यादि।

(१) जिस प्रकार **प्रधान** या **उक्त कर्त्ता** के साथ कोई विभक्ति नहीं जुटती उसी प्रकार **प्रधान** या **उक्त कर्म** के साथ भी कोई विभक्ति नहीं आती। मगर **अप्रधान** या **अनुक्त कर्म** के साथ 'को' विभक्ति आती है। जैसे—वह 'चंद्रदेव को' देखता है; कच्चे 'फलों को' मत तोड़ो आदि।

(२) जहाँ वाक्य मे मुख्य और **गौण** दोनों कर्म आते हैं वहाँ **गौण** कर्म प्रायः संप्रदान कारक को प्रतिध्वनित करता है और उसके साथ 'को' विभक्ति आती। जैसे—भागवत ने 'राम को' एक फूल दिया।

[नोट—(१)जहाँ कर्म सर्वनाम के रूप में आता है वहाँ 'को' के स्थान में 'ए' हो जाता है। जैसे—कमलाकांत ने 'मुझे' बुलाया था।

(२) 'होना' क्रिया के साथ संबंध-सूचक अर्थ में कर्म के साथ 'को' के अर्थ में 'के' का प्रयोग होता है। जैसे—उसके चार बेटे थे; मेरे एक बेटी है इत्यादि।

(३) कहना, पूछना, जाँचना आदि कुछ क्रियाओं के साथ आने वाले 'कर्म' मे 'को' के स्थान मे 'से' विभक्ति का भी प्रयोग देखा जाता है। जैसे—आपने 'मुझसे' कुछ नहीं पूछा, दरिद्र 'धनी से' जाँचता है, बुढ़िया ने 'राजा से' क्या कहा ?]

'से' विभक्ति

(१) 'से' विभक्ति प्रायः करण तथा अपादान कारकों के साथ आती है। जैसे—

करण कारक—'हाथ से' खाते है। मुझे केवल 'आपसे' सरोकार है। 'ईख से' 'शक्कर', 'शक्कर से' चीनी और 'चीनी से' अनेक मिठाइयाँ बनती है। 'विक्टोरिया जहाज से' वह लंदन गया।

अपादान कारक--'पेड़ से' पत्ते गिरे। 'विद्या से' हीन व्यक्ति पशुवत् है। वह 'पटने से' प्रस्थान कर चुका। 'पाप से' दूर भागना चाहिए। आप 'कहाँ से' टपक पड़े? 'आसमान से ओले बरसने लगे। गंगा 'हिमालय से' निकली है। वे 'मुझसे' पृथक् रहते है इत्यादि।

(२) कर्मवाच्य और भाववाच्य क्रियाओं के अनुक्त कर्त्ता के साथ—'मोहन से' पुस्तक पढ़ी जाती है। 'राम से' सोया नहीं जाता इत्यादि।

(३) क्रिया करने की रीति या प्रकार बताने में—'अंतःकरण से' पूजा करो। 'धीरे से' 'पढ़ो' 'खुशी से रहो'।

(४) पूछना, दूहना, जाँचना, कहना, पकाना आदि क्रियाओं के गौण कर्म के साथ—मै 'आपसे' पूछता हूँ। वह 'चावल से' भात पकाता है। ग्वाला 'गाय से' दूध दूहता है। दरिद्र 'धनी से' जाँचता है।

(५) स्थान और समय की दूरी बताने में--पटना 'गया से' साठ मील की दूरी पर अवस्थित है। 'आज से' तीन वर्ष पहले भारत परतंत्र था।

'का' विभक्ति

'का' एक ऐसी विभक्ति है जिसका रूप बदलता है। **'का'** का स्त्रीलिंग रूप **'की'** और बहुवचन रूप **'के'** हो जाता है। सर्वनाम में 'का-की-के' के स्थान में 'रा-री-रे' तथा 'ना-नी-ने' भी आते है।

(१) **'का'** विभक्ति मुख्यतः संबंध कारक का चिह्न है। जैसे—'राम की' गाय, 'पीने का' पानी। 'मेरी' 'आँखों के' तारे। 'अपना' काम देखो। इत्यादि।

(१) संपूर्णता, समय, परिमाण, दर-मोल, प्रकार, योग्यता, कारण, आधार, भाव, लक्षण, शीघ्रता आदि की अवस्थाओं में भी यह विभक्ति आती है। जैसे-**'सारा का' सारा बरबाद हो गया। 'सबके' सब चले गये। 'दो घंटे की' छुट्टी चाहिए। 'चार दिन की' चाँदनी, फिर अँधेरी रात। 'आठ आने का' घी। 'दूध का' दूध, 'पानी' का पानी।**

'दूध का' धोया। 'आफत का' मारा। 'शरीर का' नाजुक, 'मुँह का' हलका। 'तेरी' अपार महिमा। 'बात की बात' में वह आ गया।

(३) समान, अधीन, समीप, ओर, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, बायां-दाहिना, साथ, प्रति, अनुसार, योग्य आदि शब्दों तथा अन्य अव्ययों के योग में भी यह विभक्ति प्रयुक्त होती है। जैसे—

मोहन के समान; कर्म के अधीन; मेरे समीप; गंगा की ओर; पटने के आगे; तुम्हारे पीछे; कलकत्ता के समीप; मेरे प्रति; जमीन के ऊपर और आकाश के नीचे; तुम्हारे योग्य; इस नियम के अनुसार आदि।

'में', 'पर' विभक्तियाँ

'में' और 'पर' नीचे लिखी अवस्थाओं मे आते है—

(१) अधिकरण कारक के साथ—मै 'चौकी पर' बैठा हूँ। राम 'फुलवारी' में टहलता है। 'ईश्वर में' ध्यान लगाओ। 'मुझ में' वह आत्मवल कहाँ? 'तिल में' तेल है। सबके 'हृदय में' ईश्वर है।

(२) निर्धारण, भीतर, भेद, मूल्य आदि के अर्थ में—'जीवों मे' मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। यह काम कितने 'दिनों में' होगा? 'द्वीप और प्रायद्वीप में' क्या भेद है? 'कितने में' यह पुस्तक खरीदी?

अन्य ज्ञातव्य बातें

विभक्तियों का प्रयोग करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है—

(१) विभक्तियों के रूप स्वतंत्र होते है या स्वतंत्र रूप से ये शब्दो का संबंध बतलाती है, मगर अपना पृथक् अर्थ नही रखती। साथ ही, सर्वनामों के साथ इनका दूसरा रूप हो जाता है-जैसे मेरा, हमारा, उसे, उन्हें आदि।

(२) विभक्तियों को प्रत्यय ही नही, वल्कि चरम प्रत्यय कहना चाहिए; क्योंकि किसी शब्द में विभक्ति लग जाने के बाद फिर उसमें दूसरा प्रत्यय नहीं लगता। जैसे—प्रधानमंत्री की तक यही सम्मति है; हमारीवाली पुस्तक; दूसरे प्रांत के वालो की भी यही राय है—ये सब

प्रयोग शुद्ध नहीं है। इनके बदले होना चाहिए—प्रधानमंत्री तक की यही सम्मति है; हमारी पुस्तक; दूसरे प्रांतवालों की भी यही राय है।

(३) लेकिन विभक्ति के बाद कोई स्वतंत्र विभक्ति लग सकती है। जैसे; टेबुल पर से पुस्तक उठा लाओ; इनमें से कोई एक पुस्तक ले सकते हो।

(४) हम देख चुके है कि प्रायः सभी विभक्तियाँ कारकों के चिह्न के रूप में प्रयुक्त होती है। यही क्यों, कुछ विभक्तियाँ तो एक ही नहीं, वल्कि दो-दो कारकों के चिह्न है। 'को' कर्म और संप्रदान दोनों का चिह्न है। 'से' भी करण और अपादान दोनों का चिह्न है। मगर कारकों में संबोधन के चिह्न—हे, हो, अरे, अजी आदि की गणना विभक्तियों में नहीं, वल्कि अव्ययों में होती हैं। अतः कारकों का निरूपण केवल विभक्तियों के आधार पर नहीं, बल्कि मुख्यतः अर्थ के आधार पर किया जाता है।

(५) संप्रदान कारक के साथ 'को' के बदले 'के लिए', 'के निमित्त', 'के हेतु' आदि शब्दांश भी प्रयुक्त होते है। साथ ही, करण कारक के साथ 'से' के स्थान पर 'के द्वारा', 'के सहारे' आदि शब्दांश भी आते हैं।

(६) विभक्तियाँ सदा अपनी संज्ञाओं या सर्वनामों के साथ रहती हैं, उनसे दूर नहीं। जैसे—दूकान मोहन की में; पुस्तक तुम्हारी में आदि प्रयोग अशुद्ध हैं। होना चाहिए—मोहन की दूकान में, तुम्हारी पुस्तक में।

(७) विभक्ति की जहाँ आवश्यकता हो, वहीं इनका प्रयोग करना चाहिए। साथ ही, हमें सदा इसका ध्यान रखना चाहिए कि कहाँ किस विभक्ति का प्रयोग ठीक बैठता है।

विभक्तियाँ शब्दों के साथ या पृथक्

विभक्तियाँ शब्दों के साथ मिलाकर लिखी जायँ या पृथक्—इस संबंध में वैयाकरणों में मतभेद है। एक मत है कि कारक की विभक्तियाँ जिन कारकों के लिए प्रयुक्त होती हैं उन्हें उनके साथ मिला कर लिखना चाहिए। दूसरा मत है कि विभक्तियों को शब्दों से अलग लिखना ही युक्तिसंगत है।

पहले मत की पुष्टि संस्कृत व्याकरण के आधार पर की जाती है। संस्कृत में विभक्तियों का न तो स्वतंत्र अस्तित्व है और न वे स्वतंत्र रूप

से प्रयुक्त होती है। मगर दूसरे मत के पृष्ठपोषकों का कथन है कि हिंदी की विभक्तियाँ संस्कृत विभक्तियों से बिलकुल भिन्न है। प्राकृत में व्यवहृत विभक्तियों का अपभ्रंश होते-होते हिंदी की विभक्तियाँ बनी है। इनका स्वतंत्र अस्तित्व है, इसलिए इन्हे शब्दों के साथ मिलाकर नहीं लिखना चाहिए। यही मत अधिक प्रचलित है।

६. सर्वनाम-पद

(१) वाक्य में कोई भी सर्वनाम किसी भी संज्ञा या नाम के लिए आ सकता है। तभी तो इसका नाम **सर्वनाम** है। किसी सर्वनाम के लिंग और वचन उसी संज्ञा के अनुकूल होते हैं जिसके बदले में वह आता है। जैसे—मोहन पाठशाला नहीं गया, **वह** दिनभर खेलता रहा। भोला, रमेश और नारायण प्रतिदिन स्कूल जाते हैं, इसलिए **वे** पढ़नेवाले लड़के कहलाते है। सभा में बहुत-सी महिलाएँ आई थीं और **उनके** लिए बैठने का अच्छा प्रबंध था।

(२) वाक्य मे एक ही व्यक्ति या वस्तु को जतानेवाले सभी सर्वनाम एक या एक ही प्रकार के होते है। **'मैं'** जिस तरह का सर्वनाम है, **'हम'** उसी तरह का सर्वनाम नही है। **'वह'** जिस प्रकार का सर्वनाम है, **'वे'** उस प्रकार का सर्वनाम नहीं है। **'मैं'** और **'वह'** एकवचन मे है और **'हम'** और **'वे'** बहुवचन में हैं। मगर कुछ अवसरों पर **'हम'** और **'वे'** एक ही व्यक्ति के लिए भी आते है। अपना बड़प्पन दिखाने या दूसरों के प्रति आदर-भाव दिखाने के लिए ऐसा प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी पत्रकार, लेखक, संस्थाओं के प्रतिनिधि आदि के लिए भी **'मैं'** की जगह **'हम'** का प्रयोग होता है। जैसे—

(क) मैं पाठशाला गया था, मगर गुरुजी वहाँ नही थे, इसलिए हम घर लौट आये। (ख) आप नियत समय पर सभा में नहीं पहुँच सके, फिर भी दर्शक घंटों तक उनकी प्रतीक्षा में रहे। (ग) यह व्यवसाय ऐसा है कि उसे सब लोग नहीं कर सकते—यहाँ पहले वाक्य में **'हम'** की जगह **'मैं'** होना चाहिए और **'आये'** की जगह **'आया'**। दूसरे में,

'उनकी' के बदले **'आपकी'** होना चाहिए। और तीसरे में **'उसे'** की जगह **'इसे'** होना चाहिए।

(३) सर्वनामों में वचन का प्रयोग करते समय भी लोग कभी-कभी भूल कर बैठते हैं। कुछ लोग **'यह'** और **'वह'** का प्रयोग बहुवचन में भी कर देते है। जैसे—यह जाने लगे, वह कहने लगे आदि। मगर हमें बहुवचन क्रियाओं के साथ **'यह'** की जगह **'ये'** और **'वह'** की जगह **'वे'** का ही प्रयोग करना चाहिए।

(४) कभी-कभी लोग वाक्य में जो सर्वनाम रखना चाहिए, उसे नहीं रखकर किसी और तरह का सर्वनाम रख देते है। जैसे—हमें यह बात समझ में आ गई—इस वाक्य में **'हमें'** की जगह **'हमारी'** होना चाहिए और वाक्य का रूप होना चाहिए—यह बात हमारी समझ में आ गई। इसी तरह 'उसे ध्यान में आया' की जगह 'उसके ध्यान में आया' होना चाहिए।

(५) **'यह-वह', 'इसका-उसका', 'इनके-उनके'** के प्रयोग में भी प्रायः लोग भूल कर बैठते हैं। नियमानुसार निकटवर्त्ती चीजों की चर्चा करते समय और वर्तमानकाल की क्रियाओं के साथ **'यह', 'इसका'** और **'इनके'** का तथा दूर की चीजों की चर्चा करते समय और भूतकाल की क्रियाओं के साथ **'वह', 'उसका'** और **'उनके'** का प्रयोग होना चाहिए। साथ ही **'यह'** के साथ **'इसका', 'इनके'** और **'वह'** के साथ **'उसका', 'उनके'** का प्रयोग युक्तिसंगत हैं। जैसे—'यह' घटना ऐसी हैं कि 'इसका' असर बहुत लोगों पर पड़ेगा। 'वह' घटना ऐसी रहस्यपूर्ण थी कि 'उसका' पता नहीं लग सकता था। 'इन' ज्यादतियों की जाँच नहीं होती, बल्कि 'इनके' संबंध में केवल कागजी प्रस्ताव पास कर दिया जाता है।

(६) **'मैं', 'मेरा' 'अपना'** या **'हम', 'हमारा'** और **'अपना'** के प्रयोग में भी प्रायः कई तरह की भूलें होती हैं। जैसे—मै मेरी बात कह चुका; हम हमारी सम्मति प्रगट कर चुके—इन वाक्यों में 'मेरी' और 'हमारी' के बदले 'अपनी' लिखना शुद्ध हैं।

(७) 'तुम', 'तुम्हारा' और 'अपना' तथा वह', 'उसका' और 'अपना' के प्रयोग में भी इसी तरह की भूलें होती है। जैसे--तुम तुम्हारी बात कह चुके; वह उसकी बात बतला रहा है--इन वाक्यों में भी 'तुम्हारी' और 'उसकी' के बदले में 'अपनी' होना चाहिए।

यदि दूसरे वाक्य में उसका' से 'वह' का कोई संबंध नहीं हो, यानी दोनों दो पृथक्-पृथक् संज्ञाओं के बदले आये हो तो 'उसकी' का प्रयोग शुद्ध है, लेकिन अर्थ की स्पष्टता के लिए इसके बाद कोष्ठ में उस संज्ञा का उल्लेख कर देना उचित है जिसके लिए यह सर्वनाम आया है। जैसे वह उसकी (राम की) बात बतला रहा है।

लेकिन 'अपना' एक ऐसा व्यापक सर्वनाम है कि ठीक-ठीक यह बतलाना कठिन है कि कहाँ 'मेरा-हमारा', 'तेरा-तुम्हारा', और कहाँ 'अपना' का प्रयोग होना चाहिए। जैसे—

मेरा लोटा मेरे पास है। मै अपना लोटा दूसरे को नहीं देता। मैं चाहता भी नहीं कि मेरा लोटा कोई दूसरा ले। मेरा लोटा मेरे घर पर है। मेरा लोटा अपने घर में रख आओ। मैं अपनी पुस्तक अपने साथ लाया हूँ। मेरी पुस्तकें मेरे साथ जायँगी। मेरा मित्र मेरे साथ आया है। मेरा मित्र मेरे भाई के साथ आया है। मेरा मित्र अपने भाई के साथ आया है—इन वाक्यों मे कहीं-कही तो उपर्युक्त नियम का निर्वाह हुआ है, मगर अधिक स्थलों पर नहीं।

(८) सर्वनामों का प्रयोग करते समय इस नियम को सदा ध्यान में रखना चाहिए कि पहले वाक्यांश के आये हुए कर्त्ता के साथ ही दूसरे वाक्यांश में आये हुए सर्वनाम का संबंध रहता है। इस नियम की उपेक्षा करने से वाक्य का अर्थ ही उलट जाता है। जैसे—

यदि हम कहें—'उन्होंने फल भेजे तो जरूर मगर वे मुझे मिले नही।' तो इसका अर्थ हो जायगा—उन्होंने फल भेजे तो जरूरत मगर वे (फल भेजने वाले) मुझे मिले नहीं। मगर 'वे' का प्रयोग 'फल' के लिए हुआ है

इसलिए वाक्य अशुद्ध है। हमें कहना चाहिए—'उन्होंने फल भेजे तो जरूर मगर मैं उन्हें पा नहीं सका'।

कुछ और वाक्य देखिए—'रमेश ने कहा कि वह कलकत्ता चला गया था'; 'मोहन ने समझा कि उसे छिप रहना चाहिए'; 'मोहन ने सोचा कि उसे छिपाकर रखना चाहिए'—यहाँ पहले वाक्य में अगर 'वह' 'रमेश' के लिए आया है तो वाक्य भ्रमात्मक है, 'वह' के वदले 'मैं' होना चाहिए। दूसरे वाक्य में अगर 'उसे' 'मोहन' के लिए आया है तो वाक्य अशुद्ध है। 'उसे' की जगह 'मुझे' होना चाहिए। इसी प्रकार तीसरे वाक्य में भी अगर 'उसे' 'मोहन' के लिए आया है तो 'उसे' की जगह 'मुझे' होना चाहिए।

(९) सर्वनामों के प्रयोग का एक नियम यह भी है कि वाक्य में पहले संज्ञा रहती है तब उससे संबंधित सर्वनाम आता है। कुछ लोग पहले सर्वनाम रखकर तब संज्ञा लाते हैं। कुछ लोग संज्ञा के बाद उससे संबंधित सर्वनाम रखने में भी भूल कर बैठते हैं। जैसे—

'उसके बुलाने पर मैं मोहन के घर गया'—इस वाक्य के बदले 'मोहन के बुलाने पर मैं उसके घर गया' होना चाहिए। 'यही एक ऐसा विषय है जिसे सब समझ सकते हैं'—इस वाक्य में 'विषय' कर्त्ता है और इसी संज्ञा के लिए 'जिसे' आया है। अतः 'जिसे' की जगह 'जो' होना चाहिए।

(१०) जब सर्वनाम के कुछ रूप संज्ञा के पहले आते हैं तब वे विशेषण हो जाते हैं और सर्वनामिक विशेषण कहलाते है।

७. विशेषण पद

'उसने सुंदर सुअवसर खो दिया'; 'कैसी सुंदर शोभा है'; 'वहाँ का न्यायाधीश उचित न्याय करता है'—इन वाक्यों मे 'सुअवसर' और 'शोभा' की विशेषता बतलाने के लिए 'सुंदर' और 'न्याय' की विशेषता बतलाने के लिए 'उचित' शब्द का प्रयोग हुआ है। लेकिन

'सुअवसर' का अर्थ है, 'सुंदर अवसर'; इसलिए इसके साथ एक और 'सुंदर' जोड़ना निरर्थक है। इसी प्रकार 'शोभा' सदा सुंदर ही नहीं बहुत सुंदर होती है; इसलिए इस शब्द के साथ भी 'सुंदर' जोड़ना निरर्थक ही है। इसी प्रकार 'न्याय' किसी अवस्था में अनुचित नहीं होता। उचित निर्णय को ही 'न्याय' कहते हैं; इसलिए इस शब्द के साथ 'उचित' जोड़ना असंगत है।

इसी प्रकार 'शीतल आग', 'गर्म वर्फ', 'जेठ की ठंढी दुपहरी', 'माघ की चिलचिलाती धूप', 'शरद-रात्रि की चिलचिलाती चाँदनी',—इन वाक्यांशों में 'आग' के साथ 'शीतल', 'वर्फ' के साथ 'गर्म', 'जेठ की दुपहरी' के साथ 'ठंढी', 'माघ की धूप' और 'शरद-रात्रि की चाँदनी' के साथ 'चिलचिलाती' विशेषणो का प्रयोग सर्वथा असंगत है। होना चाहिए—गर्म आग, ठंढी वर्फ, जेठ की दग्ध दुपहरी, माघ की नरम धूप, शरद-रात्रि की शीतल चाँदनी।

संक्षेप में, संज्ञाओं के साथ विशेषणो को रखते समय नीचे लिखी बातों पर सर्वदा ध्यान रखना चाहिए—

(१) सदा आवश्यकता पड़ने पर ही विशेषणों का प्रयोग करना चाहिए। (२) ऐसे ही विशेषणों का प्रयोग करना चाहिए, जो अपनी संज्ञाओं की वास्तविक विशेषताएँ बता सकें। (३) विशेषणों का प्रयोग करते समय उनके अर्थों पर विचार करने के साथ-साथ उनके स्थान का भी ध्यान रखना चाहिए। स्थान-भ्रष्ट विशेषण वाक्य में अर्थ-भ्रम उत्पन्न कर देते है। (४) उचित स्थान पर उचित विशेषण रखना चाहिए।

कभी-कभी भाषा को सुंदर, आकर्षक और जोरदार बनाने के लिए भी विशेषणों का प्रयोग होता है। ऐसे अवसर पर भी विशेषणो का चुनाव करते समय ऊपर की बातो का ध्यान रखना चाहिए। उदाहरण—

(१) मेरी पावन पुस्तक परम प्रशंसनीय और सुंदर है। (२) मुझे भीषण भूख लगी है। (३) मुझे भारी प्यास मालूम पड़ती है।

ऊपर के वाक्यों में, पहले में 'परम' शब्द अनावश्यक है तथा 'प्रशंसनीय' और 'सुंदर'—इनमें भी कोई एक ही शब्द रखना उचित है। दूसरे में 'भीषण' और तीसरे में 'भारी' की जगह 'बहुत' शब्द रखना चाहिए।

कुछ विशेषणों का वास्तविक अर्थ नहीं समझने के कारण कभी-कभी उनके प्रयोग में चूक हो जाया करती है। 'बड़ा', 'बहुत', 'अधिक' आदि कुछ ऐसे साधारण विशेषण हैं कि इनका प्रयोग करते समय हम इनके सूक्ष्म अर्थ-भेद पर ध्यान नहीं देते। जैसे—'मुझे बड़ी भूख लगी है', 'मोहन ने बड़ा धन पैदा किया', 'राम बड़ी सावधानी से काम करता है'-इन वाक्यों में 'बड़ी-बड़ा' की जगह 'बहुत' रखना युक्तिसंगत होगा।

बहुत, बड़ा, अधिक—साधारणतः 'बहुत' क्रिया-विशेषण शब्द माना जाता है और जब यह किसी संज्ञा की संख्या, मात्रा या परिमाण प्रगट करने के लिए वाक्य में आता है तब विशेषण बन जाता है। मगर 'बड़ा' शब्द केवल विशेषण है और संज्ञाओं के आकार-प्रकार या गुण की महत्ता सूचक करने के लिए प्रयुक्त होता है। 'अधिक' शब्द 'बहुत' और 'बड़ा' दोनों अर्थों में सिर्फ ऐसे अवसर पर प्रयोग में आता है ज़ब कि दो संज्ञाओं में से एक को बढ़ा-चढ़ा कर कहने की आवश्यकता होती है। जैसे—'बड़े' आदमी की 'बड़ी' बात होती है, 'अधिक' योगी मठ उजाड़। 'अधिक' परिश्रम मत किया करो—यहाँ 'अधिक' का अर्थ हुआ पहले किये गये 'परिश्रम' की अपेक्षा वेशी परिश्रम।

बड़ा-छोटा, बहुत-कम—कभी-कभी 'बड़ा' के साथ 'छोटा' और 'बहुत' के साथ 'कम' का प्रयोग भी देखा जाता है। 'बहुत' क्रिया-विशेषण भी है, इसलिए उसके क्रिया-विशेषण रूप में 'कम' का मेल बैठ सकता है; मगर 'बड़ा' के साथ 'छोटा' का मेल तो किसी हालत में नही हो सकता। जैसे; "यह बड़ी छोटी घटना है'—यहाँ बड़ी की जगह 'बहुत' होना चाहिए। मगर 'बहुत कम लोगों हो यह बात मालूम है'—यहाँ 'कम' के साथ 'बहुत' का क्रिया-विशेषण के रूप में उचित प्रयोग है।

कभी-कभी लोग विशेषणों के बदले संज्ञा-पदों को ही विशेषण-रूप में वाक्य में ले आते हैं। जैसे—'रामू का रोग नाश हो गया'; 'मेरा सर्वनाश हो गया'; 'मैं निश्चित रूप से नहीं बतला सकता'। —इन वाक्यों में 'नाश' की जगह 'नष्ट', 'सर्वनाश' की जगह 'सर्वस्व नष्ट', और 'निश्चय' की जगह 'निश्चित' होना चाहिए।

८. क्रिया-पद

हिंदी भाषा में अधिकांश क्रियाएँ भाववाचक संज्ञाओं से बनी हैं। उनमें कुछ तो ज्यों की त्यों ले ली गई है और कुछ के रूप बदल गये हैं। जैसे—'कर्तन' से 'कतरना' या 'कुतरना'; 'पठन' से 'पढ़ना'; 'शयन' से 'सोना'; 'वर्षण' से 'बरसना'; 'गमन' से 'जाना' आदि।

भाववाचक शब्दों से बनी क्रियाएँ कभी-कभी भाववाचक संज्ञाओं के रूप में भी प्रयुक्त होती हैं। जैसे—अभी तुम्हारा 'जाना' उचित नहीं है। 'नाचना' और 'गाना' सबको नहीं आता इत्यादि।

कभी-कभी संज्ञा या विशेषण शब्दों के साथ 'ना' जोड़कर हम क्रिया-शब्द गढ़ लेते हैं। जैसे—'स्वीकार' से 'स्वीकारना'; 'गुजर' से 'गुजरना'; 'बात' से 'बतियाना'; 'सीख' से 'सीखना'; 'साठ' से 'सठियाना'; 'धिक्कार' से 'धिक्कारना'; 'अपना' से 'अपनाना' आदि।

मारना पीटना, जलना-झुलसना, ठोंकना-जड़ना, त्यागना-छोड़ना, हटाना-दूर करना, तानना-खींचना, टूटना-फूटना, तोड़ना-फोड़ना, दौड़ना-भागना आदि—ऐसी अनेक क्रियाएँ हैं जो ऊपर से देखने पर तो बहुत कुछ एक-सा अर्थ प्रगट करनेवाली जान पड़ती है, लेकिन प्रयोग में इनके अर्थों में बहुत कुछ अंतर पड़ जाता है। अतः संज्ञादि शब्दों की तरह क्रियाओं के प्रयोग में भी इनके अर्थों के सूक्ष्म-भेद पर विचार करने की आवश्यकता पड़ती है। जैसे—

हम थप्पड़ 'मारते हैं', मगर छड़ी से 'पीटते हैं'। लकड़ी आग में 'जलती है', मगर शरीर आग की लपट से 'झुलसता है'। हम दीवाल में

काँटी 'ठोंकते हैं'; मगर अँगूठी में नगीना 'जड़ते हैं'। पुलिस चोर को 'छोड़ती हैं', 'त्यागती' नहीं। मेरा भय 'हटता' नहीं 'दूर होता' है। हम तंबू 'तानते हैं' मगर कनात 'खींचते है'। हाथ 'टूटता हैं', लकड़ी 'टूटती है', मगर आँखें 'फूटती हैं'। शीशे का-पदार्थ 'फूटता हैं', आम 'तोड़ा जाता है', मगर ढेले 'फोड़े जाते हैं'। हम खेल में 'दौड़ते हैं', मगर भय से 'भागते हैं'; कभी-कभी पढ़ने से भी 'भागते है' इत्यादि।

क्रियाओं के प्रयोग में उनके अर्थों के साथ-साथ यह भी सदा ध्यान में रखना चाहिए कि कहाँ किस प्रकार और किस काल की क्रिया का प्रयोग युक्तिसंगत होगा। वाक्यों में आदि से अंत तक क्रियाओं के प्रयोग में उनके प्रकार (अकर्मक-सकर्मक) तथा काल में समन्वय रहना चाहिए। उदाहरण—

(१) 'कमला सीना-पिरोना, कसीदा, संगीत और पाक-शास्त्र पढ़ती है'—इस वाक्य में 'पढ़ती हैं' क्रिया के साथ 'संगीत' और 'पाक-शास्त्र' की संगति तो बैठती है मगर 'सीना-पिरोना' और 'कसीदा' के साथ नहीं बैठती। अतः वाक्य का शुद्ध रूप यह होगा—कमला सीना-पीरोना और कसीदा काढ़ना सीखती हैं तथा संगीत और पाक-शास्त्र पढ़ती है।

(२) 'दर्जी हमारे कपड़े तथा सोनार गहने गढ़ते हैं'—यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि 'कपड़े' 'गढ़े' नहीं 'सीये' जाते है। अर्थात्—दर्जी हमारे कपड़े 'सीता है' तथा सोनार गहने 'गढ़ता है'।

(३) 'वह शरीर सिकुड़कर लेट रहा'—यहाँ 'शरीर' कर्म है, इसलिए 'सिकुड़कर' की जगह इसका सकर्मक रूप 'सिकुड़ाकर' होना चाहिए।

(४) 'अगर आप रुपये भेज देते तो मैं सब काम ठीक कर लूँगा'—यहाँ पहली क्रिया 'भेज देते' के अनुरूप ही दूसरी क्रिया होनी चाहिए—"अगर आग रुपय भेज दें (देते) तो मैं सब कास ठीक कर लूँ (लेता)।

प्रायः देखा जाता है कि अनेक ऐसी क्रियाएँ है जिनके अंत्याक्षरों को लिखने में लोग व्याकरण के नियमों की अवहेलना कर देते हैं।

कभी-कभी तो ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही लेखक एक ही लेख मे कही 'चाहिए' लिखते हैं तो कहीं 'चाहिये'। कहीं 'किए' लिखते हैं तो कहीं 'किये'। जैसे--

शुद्ध प्रयोग	अशुद्ध प्रयोग	शुद्ध प्रयोग	अशुद्ध प्रयोग
चाहिए	चाहिये	हुए	हुवे, हुये
लिये	लिए	हुआ	हुवा, हुया
गये	गए	दी	दियी
खाये	खाए	खाओ	खायो
किये	किए	जाओगे	जावोगे
लाये	लाए	जायँगे	जावेंगे

[नोट—याद रखना चाहिए कि जहाँ 'वास्ते' के अर्थ में 'लिए' का प्रयोग हो, वहाँ इसके अंत में 'ए' रहना चाहिए और जहाँ 'लेना' के सामान्यभूतकालिक रूप मे प्रयोग किया जाय वहाँ अंत में 'ये' रहना चाहिए।]

कभी-कभी वाक्य में रोचकता लाने के लिए समापिक क्रिया लुप्त हो जाती है। जैसे, एक छोटा बँगला। बँगले के सामने एक छोटी मगर सुन्दर फुलवारी। फुलवारी के बीच एक साफ-सुथरा चबूतरा।

कभी-कभी आवेश, उदासीनता या क्रोध की अवस्था मे कहे गये वाक्यों की क्रियाएँ भी लुप्त हो जाती है। जैसे, इससे आपको मतलब ? चेहरे पर यह उदासी क्यों ? जब किया ही नहीं तब डर किस बात का ?

९. अव्यय प्रयोग

(१) **नहीं, मत और न**—ये तीनों निषेधार्थक अव्यय हैं, मगर वाक्य में प्रयोग करते समय इनके अर्थ के सूक्ष्म भेद पर ध्यान देना आवश्यक है। **'नहीं'** का प्रयोग किसी एक वस्तु के निषेध में या निषेध की निश्चयता मे होता है। **'मत'** का प्रयोग विधि-क्रिया के निषेधार्थ में होता है और **'न'** का प्रयोग यों तो निषेधार्थ में होता ही है; साथ ही,

दुबारे प्रयोग में यह समुच्चयबोधक अव्यय के रूप का भी बोध कराता है। कभी-कभी 'न' का प्रयोग संभाव्य भविष्यत् क्रिया के साथ भी निषेधार्थ में होता है और कभी यह प्रश्न के लिए भी आता है। जैसे—(१) मैं 'नहीं' जानता। (२) नीचों की संगति में 'मत' रहो। (३) 'न' मरता है, न मरने वाले के साथ जाता है। ऐसा 'न' हो कि कैदी भाग जाय। (४) आप आज ही आये है 'न' ?

(२) **पीछे, बाद, उपरांत**—ऐसे अव्ययों के प्रयोग में लोग प्रायः भूल कर बैटते है। जैसे; यदि हम कहें कि 'वह दो दिन के पीछे आया'— तो वाक्य अशुद्ध समझा जायगा। होना चाहिए—'वह दो दिन के बाद आया'। यहाँ 'पीछे' के वदले 'बाद', 'पश्चात्' या 'उपरांत' होना चाहिए। मगर 'मैंने राम को श्याम के पीछे लगा दिया'—इस वाक्य में 'पीछे' का प्रयोग शुद्ध है।

(३) कभी-कभी अव्यय शब्दों का प्रयोग संज्ञाओं या सर्वनामों की विभक्तियों के आगे भी होता है। ऐसे शब्दों के पहले प्रायः संबंधकारक के बहुवचनांत या स्त्रीलिंग रूप आते हैं। इससे प्रगट होता है कि कुछ ऐसे भी अव्यय है जिनमें लिंग, वचन भी आते है। जैसे; टोकरे के 'भीतर' साँप है ; राम श्याम के 'बाद' आया ; मै राम के 'निकट' खड़ा था ; आप मेरे 'विरुद्ध' क्यो पड़ गये है; वह राम की 'अपेक्षा' अधिक प्रतिभा-संपन्न हैं ; मै आप की 'ओर' से निराश हो गया।

(४) ऐसे अव्ययों में **'अनुसार'** और **'ओर'** के प्रयोग में प्रायः भूल हुआ करती है। 'अनुसार' शब्द पुंल्लिंग है, और 'ओर' या 'तरफ' स्त्रीलिंग में आता है। अतः अगर स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द के साथ 'अनुसार' लगता है तब पूरा यौगिक शब्द अंतिम शब्दानुसार पुंल्लिंग हो जाता है, मगर लोग ऐसे शब्दों का प्रयोग स्त्रीलिंग में भी कर बैठते है, जो सर्वथा असंगत है। जैसे; आप के 'आज्ञानुसार' या आपकी आज्ञा के 'अनुसार'; तुम्हारे 'इच्छानुसार' या तुम्हारी इच्छा के 'अनुसार'।

इसी प्रकार यदि 'ओर' या 'तरफ़' शब्द के पहले कोई संख्या-वाचक शब्द आवे या 'ओर' तथा विभक्ति के बीच कोई दूसरा शब्द रहे तो इसे पुंल्लिंग रूप मे लिखना ही युक्तिसंगत है। जैसे: टापू के 'चारों ओर' पानी रहता है: मैं उनके 'दाहिने ओर' बैठा था।

(५) समुच्चय-बोधक अव्यय शब्दों मे से कुछ तो वाक्यों या शब्दों को जोड़ने के लिए आते है, कुछ उन्हे पृथक करने के लिए आते हैं और कुछ नित्यसंबंधी के रूप मे वाक्यों मे परस्पर संबंध स्थापित करने के लिए आते है। नित्यसंबंधी शब्द ये है—यदि-तो यद्यपि-तथापि या तद्यपि या तोभी या फिर भी ; जब-तब ; ज्यों-त्यों ; जहाँ तहाँ ; न-न ; क्योंकि-इसलिए आदि। उदाहरण—यदि वह जाय तो काम बने। जब कहो, तब आ जाऊँ। ज्यो-ज्यों दवा की, त्यो-त्यों मर्ज बढ़ता गया। न राधा को नौ मन तेल होगा, न वह नाचेगी आदि।

मगर आजकल 'जब' के साथ 'तो' लिखने की परिपाटी खूब चल पड़ी है। 'जहाँ' के साथ अब 'वहाँ' का प्रयोग अधिक शिष्ट समझा जाता है। कभी-कभी दूसरे नित्यसंबंधी शब्द की जगह पर 'कि' का भी प्रयोग देखा जाता है। जैसे ; जब वहाँ पहुँच जाओगे 'तो' सब ठीक हो जायगा। जहाँ वह हारा 'कि' कौड़ी का तीन हो जायगा इत्यादि।

(६) कभी-कभी दो शब्दों को मिलाकर या एक ही शब्दों को दुहरा कर क्रिया-विशेषण शब्द बना लिये जाते हैं। जैसे; प्रतिदिन, दिन-भर, घड़ी-घड़ी, हाथों-हाथ, नाम-मात्र, इधर-उधर, जहाँ-तहाँ, कहीं-कहीं आदि।

अभ्यास

१—पद किसे कहते हैं? वाक्य में कितने प्रकार के पद आते हैं? सोदाहरण समझाकर लिखिए।

२—नीचे लिखे शब्दों को जातिवाचक संज्ञा के रूप में वाक्यों में दिखलाइए—विभीषण, क्विसलिंग, जयचंद, कालिदास और गोपाल।

३—नीचे लिखे शब्दों को व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में वाक्यों में दिखलाइए—पुरी, बापू, भारतेंदु, राजा जी और 'यह पटना है' (एक अखबार का स्थाई शीर्षक)।

४—नीचे लीखे शब्दों का लिंग बताइए—ग्राटा, इरादा, स्वार्थ, जीवन, महत्ता, शान, माप, तौल, दौड़ और दुर्दशा।

५—नीचे लिखे वाक्यों में वचन-संबंधी भूलों को सुधारिए—(१) दोनों की दशा एक-सी है। (२) दोनों की दशाएँ एक हैं। (३) मैं नावों पर सवार था। (४) वे लोग कुत्ते की मौत मरे। (५) क्रमशः निम्नलिखित बात हुई। (६) सभी श्रेणी में लड़के उपस्थित थे। (७) सब लोग अपनी राय दें। (८) मेरे पैर नहीं उठते। (९) उन्होंने हाथ जोड़ा।

६—नीचे लिखे वाक्यों में विभक्ति-संबंधी भूलों को ठीक कीजिए—(१) हमको अनेक कामों को करना है। (२) राधा ने लता को वर्णमाला को सिखाई। (३) मुझको उनको समझाना है। (४) वह सड़क में जा रहा है। (५) नौकर नल में पानी भरने को गया।

७— नीचे लिखे वाक्यों में सर्वनाम-संबंधी भूलों को सुधारिए—(१) वे नियत समय पर सभा में नहीं पहुँच सके, फिर भी सैकड़ों दर्शक घंटों तक आप की प्रतीक्षा करते रहे। (२) यह विषय इतना कठिन है कि उसे विद्यार्थी आसानी से नहीं समझ पाते। (३) यही नियम हमें समझ में ठीक जँचता है। (४) मैं मेरी पुस्तक पढ़ता हूँ। (५) बापू ने उनके चरित्रबल से संसार को चकित किया।

८—नीचे लिखे वाक्यों में विशेषण-संबंधी दोषों को दूर करें—(१) सब कुछ आप के चरणों में समर्पण है। (२) मेरा सर्वनाश हो गया। (३) अभियुक्त सर्वथा निर्दोषी है। (४) यह बड़ी छोटी घटना है। (५) आजकल मैं बड़ा कम परिश्रम करता हूँ।

९—नीचे लिखी क्रियायों को विभिन्न वाक्यों में प्रयुक्त कीजिए—जलना, झुलसना, फूटना, टूटना, दौड़ना, भागना, त्यागना, छोड़ना, मारना, और ठोकना।

———

रचना कला

[द्वितीय खंड]

प्रथम परिच्छेद

१. वाक्य

वाक्य—ऐसेपद-समूह के योग को, जिसमें पूरा-पूरा भाव प्रकाशित हो वाक्य कहते हैं। वाक्य भाषा का एक मुख्य अंग है। प्रत्येक वाक्य के अंत में समापिका क्रिया का होना आवश्यक है। जैसे—मोहन बाग में टहल रहा है। परंतु कभी-कभी समापिका क्रिया के न रहने पर भी वाक्य हो सकता है; जैसे—किसी ने पूछा, 'आप कहाँ जा रहे हैं'? उत्तर मिला—'कलकत्ता'। इस जगह 'कलकत्ता' कहने से ही कहनेवाले का स्पष्ट अभिप्राय समझ में आ जाता है; इसलिए 'कलकत्ता' समापिका क्रिया के न रहते हुए भी वाक्य है।

किसी भाव को स्पष्ट रूप से प्रकाशित करने के लिए प्रत्येक वाक्य में, उसमें व्यवहृत पद-समूह में परस्पर संबंध होना भी जरूरी है अन्यथा वाक्य का अर्थ समझ में नहीं आता है और वह वाक्य उटपटाँग-सा हो जाता है। वाक्य के अंतर्गत पदों के संबंध को आकांक्षा, योग्यता और क्रम कहते हैं। इसलिए वाक्य की एक परिभाषा यह भी हो सकती है कि आकांक्षा, योग्यता और क्रमयुत पद-समूह को वाक्य कहते हैं।

आकांक्षा—पूरा मतलब समझने के लिए एक पद को सुनकर सुननेवालों के हृदय में दूसरे पद को सुनने की जो स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न होती है उसी इच्छा को आकांक्षा कहते हैं। जैसे—अगर किसी

ने कह दिया, 'आकाश में' तो इसके बाद और कुछ सुनने की स्वाभाविक इच्छा होती है अर्थात् 'तारे टिमटिमा रहे हैं'।

योग्यता—जब वाक्य में पदों का अन्वय करने के समय अर्थ-संबंधी बाधा अथवा अयोग्यता सिद्ध न हो तो उसे **योग्यता** कहते हैं। जैसे—'माली जल से पौधे सींचता है'। यहाँ जल में पौधों को सींचने की योग्यता विद्यमान है, पर अगर कोई यह कहे कि 'माली आग से पौधे सींचता है' तो यहाँ योग्यता के अनुसार पद का विन्यास नहीं हुआ; क्योंकि आग में पौधों को सींचने की योग्यता अथवा क्षमता कहाँ?

क्रम—योग्यता और आकांक्षायुत पदों को नियमानुकूल स्थापन करने की विधि को अथवा यों कहिए कि पद-स्थापन-प्रणाली-विधि को **क्रम** कहते है। जैसे—'तारे' लिखने के बाद ही 'टिमटिमाते हैं' लिखना चाहिए; नहीं तो क्रम भंग हो जायगा और वाक्य का असली भाव ही नष्ट हो जायगा। 'मालिक का कर्त्तव्य है नौकर की सेवा करना' इस पद-समूह का भाव क्रम ठीक न रहने से अच्छी तरह समझ में नहीं आता है, इसलिए इसे वाक्य नहीं कहेंगे। जब क्रम ठीक करने पर इसका रूप—'मालिक की सेवा करना नौकर का कर्त्तव्य है'—हो जायगा तब यह वाक्य हो जायगा।

२. वाक्यांश और वाक्य-खंड

वाक्यांश—एक बड़े वाक्य में कई अंश होते हैं; उनमें एक-एक अंश का नाम **वाक्यांश** है। जैसे—'दुःख भोग चुकने पर', 'इतना सुनते हो' इत्यादि।

वाक्य-खंड—पदों के समूह को, जिससे पूरा नहीं, केवल आंशिक भाव प्रकट हो, **वाक्य-खंड** कहते है। वाक्य-खंड से पूरा-पूरा मतलब समझ में नहीं आता। एक वाक्य-खंड बराबर दूसरे वाक्य-खंड की अपेक्षा रखता है। जैसे—उसने ज्यों ही मेरी बात सुनी। जब वह मध्यमा परीक्षा में सम्मिलित हुआ आदि।

वाक्य-खंड के दो भेद हो सकते हैं—एक **प्रधान-खंड**, दूसरा **आश्रित या अप्रधान-खंड**। जैसे—'जब उसने बी० ए० की परीक्षा पास की'—इतना कहने से पूरा अर्थ नहीं प्रकट होता है। पूरा अर्थ प्रदर्शित करने के लिए इस खंड में 'तो उसके जी में जी आया' या इसी प्रकार का एक खंड-वाक्य और जोड़ना पड़ेगा। इसमें पहले खंड का भाव दूसरे खंड की अपेक्षा रखता है। अतएव, पहला खंड अप्रधान या आश्रित खंड और दूसरा प्रधान-खंड कहलावेगा।

गर्भित-वाक्य—कभी-कभी किसी वाक्य के अंतर्गत छोटे-छोटे वाक्य व्यवहार में आते हैं; जो **गर्भित-वाक्य** कहलाते हैं। जैसे—उसकी दुःख भरी कहानी—ओह ! कितनी करुणा-जनक थी—सुनते-सुनते मेरी आँखों में आँसू आ गये। इस वाक्य में 'ओह ! कैसी करुणा-जनक-थी' वाक्य गर्भित वाक्य है।

३. वाक्यांग

प्रायः प्रत्येक वाक्य के दो अंग होते हैं—उद्देश्य और **विधेय**। वाक्य में जिसके विषय में कुछ कहा जाता है उसे उद्देश्य और उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाता हैं उसे **विधेय** कहते है। जैसे—मोहन पढ़ता हैं। इस वाक्य में 'मोहन' के विषय में कुछ कहा गया हैं इसलिए 'मोहन' उद्देश्य है और उद्देश्य 'मोहन' के विषय मे यह कहा गया है कि वह 'पढ़ता हैं' इसलिए 'पढ़ता है' विधेय है। प्रायः उद्देश्य और विधेय भिन्न-भिन्न तरह के पदों के मिलने से बढ़ जाया करते है। किसी वाक्य में उद्देश्य और विधेय के अलावे अन्य जितने पद होते हैं उनमे से, कुछ तो उद्देश्य के सहकारी होते है और कुछ विधेय के। सहकारी पद-सहित मुख्य उद्देश्य उद्देश्य के अन्तर्गत और सहकारी पद-सहित मुख्य विधेय विधेय के अन्तर्गत समझे जाते हैं।

उद्देश्य के भेद—वाक्य मे उद्देश्य नीचे लिखे रूप में आते है; इसलिए साधारणतः उद्देश्य के निम्नलिखित शब्द-भेद मानते है—

१—संज्ञा उद्देश्य—'मोहन' पढ़ता है।

२—सर्वनाम—'वह' देखता है।

३—विशेषण—(जब संज्ञा या विशेष्य के रूप में व्यवहृत होता है)—'गरीब' भूख मरते है।

४—क्रियार्थक संज्ञा—'टहलना' लाभप्रद है।

५—वाक्यांश—(विशेष्य रूप में) { 'दैव के भरोसे बैठना' कायरों का काम है।

उद्देश्य का विस्तार—उद्देश्य के स्थान, रूप और गुण के स्वाभावादि को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के लिए वाक्य में जो पद जोड़े जाते है वे ही उद्देश्य के परिवर्द्धित पद कहलाते हैं। उद्देश्य कई तरह से परिवर्द्धित किये जाते हैं। यहाँ थोड़े से उदाहरण दिये जाते है—

(१) विशेषण से—'चंचल' बालक दौड़ता है। यहाँ 'बालक' चंचल है और 'चंचल' विशेषण के द्वारा परिवर्द्धित किया गया है। उसी प्रकार सुगंधित पुष्प खिल रहे है; निर्मल चंद्र हँस रहे है आदि। कभी-कभी एक ही उद्देश्य कई विशेषणों द्वारा बढ़ाया जाता है। जैसे—शीतल, मंद, सुगंधित वायु बह रही है।

(२) संबंध कारक से—'मछुए' का बालक दौड़ता है। यहाँ 'मछुए का' संबंध-पद से उद्देश्य का विस्तार हुआ है। इसी प्रकार 'राम का' लड़का स्कूल में पढ़ता है।

(३) विशेषण के रूप में व्यवहृत विशेष्य से। जैसे—'सम्राट्' अशोक की राजधानी पाटलिपुत्र थी। यहाँ 'सम्राट्' विशेष्य है पर विशेषण के रूप में व्यवहृत हुआ है।

(४) वाक्यांश के द्वारा—'परिवार के सहित' मोहन पटने से रवाना हो गये। यहाँ 'परिवार के सहित' वाक्यांश के द्वारा उद्देश्य का विस्तार किया गया है।

(५) क्रियाद्योतक से—'चलती हुई' ट्रेन उलट गई। 'धोया' कपड़ा पहना करो। यहाँ 'चलती हुई' और 'धोया' क्रियाद्योतक पद के

द्वारा उद्देश्य बढ़ाया गया है ।

इसी प्रकार और भी कई प्रकार से उद्देश्य का विस्तार हो सकता है। फिर उद्देश्य के विस्तार के लिए व्यवहृत पद को भी उपर्युक्त ढंग से विशेषण आदि पदों के द्वारा बढ़ाया जाता है। जैसे—पटने के रहने वाले सुप्रसिद्ध रईस पं० वासुदेव नारायण का चंचल और तीव्रबुद्धि-संपन्न बालक अपने वर्ग में प्रथम रहता है।

विधेय के भेद—मुख्यतः विधेय के दो भेद हो सकते हैं—एक **सरल विधेय**, दूसरा **जटिल विधेय**। जहाँ एक ही क्रियापद पूरा अर्थ प्रकाशित करे वहाँ **सरल विधेय** होता है। जैसे—राम पुस्तक पढ़ता है। यहाँ "पढ़ता है" एक ही क्रियापद से वाक्य का मतलब प्रगट हो जाता है; इसलिए 'पढ़ता है' सरल विधेय है।

परंतु जब विधेय अपूर्ण अर्थ-प्रकाशक क्रिया हो और उसके साथ पूर्ण अर्थ प्रकाश करनेवाला कोई पद हो तो उस विधेय को **जटिल विधेय** कहते हैं। जैसे—दशरथ अयोध्या के 'राजा थे'। यहाँ केवल 'थे' क्रिया से वाक्य का पूरा मतलब प्रकाशित नही होता है और इसी हेतु मतलब पूरा करने के लिए 'थे' के पहले 'राजा' सहकारी पद जोड़ा गया है, अतएव उपर्युक्त वाक्य मे केवल 'थे' नहीं बल्कि 'राजा थे' विधेय है। इस प्रकार का विधेय जटिल विधेय हुआ। जटिल विधेय की क्रिया के पहले पूर्ण अर्थ-प्रकाशक सहकारी पद कई रूपों में व्यवहार में आते हैं। कभी यह संज्ञा, कभी विशेषण, कभी क्रिया-विशेषण और कभी संबंध कारक के रूप में आते है।

उदाहरण—

संज्ञा के रूप में—लार्ड रीडिंग भारत में वायसराय थे।

विशेषण के रूप में—ग्रियर्सन साहब भारतीय भाषाओं के प्रकांड 'विद्वान्' थे।

क्रिया-विशेषण के रूप में—मोहन 'यहाँ' है।

संबंधकारक के रूप में—आज से यह घर 'मेरा' हुआ।

जब वाक्य में विधेय सकर्मक क्रिया के रूप में आता है तो उसका कर्म विधेयवाचक कहलाता है और विधेय का ही अंश माना जाता है। जैसे—मोहन 'पुस्तक' पढ़ता है। इसमें 'पुस्तक' सहित 'पढ़ता है' विधेय हैं।

कर्म कई रूपों में—उद्देश्य की नाईं कर्म भी विशेष्य (संज्ञा), सर्वनाम और विशेष्य के समान व्यवहृत वाक्यांश, विशेषण तथा क्रियार्थक संज्ञा कई रूपों में आते हैं।

उदाहरण—

सज्ञा—(विशेष्य)—हरि 'नाटक' देखता है।

सर्वनाम—राम 'उसे' मारता है।

विशेषण—मोहन 'विद्वानों' को पूजता है।

क्रियार्थक संज्ञा—वह 'खाना' खाता है।

वाक्यांश—गणेश 'बहाना करना' बहुत सीख गया है।

कर्म का विस्तार—जिस प्रकार उद्देश्य का विस्तार किया जाता है उसी प्रकार विशेषण पद, संबंध पद, विशेषण के समान व्यवहृत विशेष्य पद, वाक्यांश और क्रियाद्योतक पद से कर्म बढ़ाया जा सकता है।

उदाहरण—

विशेषण से—वह 'शिक्षाप्रद' पुस्तक पढ़ता है।

संबंध पद से—सोहन 'पटने का' लड्डू खाता है।

विशेष्य से—सम्राट् चंद्रगुप्त 'मंत्री' चाणक्य को बहुत मानते थे।

वाक्यांश से—उसने दूर ही से 'ध्यान में मग्न' मोहन को देख लिया।

क्रियाद्योतक से—प्रोफेसर राममूर्ति 'चलती हुई' मोटर रोक लेते थे।

विधेय का विस्तार—जिन पदों से विधेय की विशेषता प्रगट हो वे पद विधेय के विस्तार कहलाते है। साधारणतः क्रिया-विशेषण, क्रिया-विशेषण के समान भाववाले पद, वाक्यांश, पूर्वकालिक या असमापिका क्रिया, क्रियाद्योतक और कुछ कारक-पदों के द्वारा विधेय का विस्तार किया जाता है।

उदाहरण—

क्रिया-विशेषण द्वारा—वह 'धीरे-धीरे' पढ़ रहा है। यहाँ 'धीरे-धीरे' क्रिया-विशेषण 'पढ़ रहा है' के विधेय की विशेषता प्रगट करने के कारण विधेय का विस्तार है।

पद-वाक्यांश द्वारा— वह 'भोजन करने के बाद ही' सो गया।

पूर्वकालिक क्रिया द्वारा—वह 'खाकर' सो गया।

क्रियाद्योतक द्वारा—रेलगाड़ी 'धक-धक करती' चली जा रही है।

कुछ कारक-पदों द्वारा—

(१) करण द्वारा—राम ने रावण को 'बाण से' मारा।

(२) संप्रदान द्वारा—उसने सब कुछ 'मेरे लिए' ही किया।

(३) अपादान द्वारा—वह 'छप्पर से' कूद पड़ा।

(३) अधिकरण द्वारा—उसने गुप्त रूप से 'किले पर' धावा मारा।

अभ्यास

१—वाक्य, वाक्यांश और वाक्य-खंड किसे कहते हैं? सोदाहरण समझाइए।

२—नीचे लिखे वाक्यों में उद्देश्य, विधेय और कर्म के रूप में आये पदों का यथासंभव विस्तार कीजिए—

(१) शंकर आत्मकथा पढ़ता है। (२) गाय घास चरती है।
(३) अकबर ने पचास वर्ष तक राज्य किया। (४) चन्द्रगुप्त चाणक्य को मानते थे। (५) राममूर्ति मोटर रोक लेते थे।

३—नीचे लिखे खंडवाक्यों को पूर्ण वाक्यों का रूप दीजिए—

(१) जब गांधी जी दक्षिण अफ्रिका में थे—

(२) उसने ज्यों ही मेरी बात सुनी—

(३) जो तुम्हारे दाव-पेंच हैं—

(४) अगर आप चाहते हैं कि—

(५) जो केवल दैव पर भरोसा करता है—

———

द्वितीय परिच्छेद

१. स्वरूप के अनुसार वाक्य-भेद

स्वरूप के अनुसार वाक्य के तीन भेद माने गये हैं। सरल, जटिल या मिश्र और संयुक्त या यौगिक वाक्य।

(१) सरल वाक्य—साधारणतः सरल वाक्य वह वाक्य है जिसमें एक कर्त्ता या उद्देश्य और एक समापिका क्रिया या विधेय रहते हैं। जैसे—घोड़ा दौड़ रहा है; इसमें 'घोड़ा' उद्देश्य या कर्त्ता है और 'दौड़ रहा है' विधेय या समापिका क्रिया है। इसलिए उक्त वाक्य सरल वाक्य है।

(२) जटिल या मिश्र वाक्य—जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय मुख्य हों अथवा एक सरल वाक्य हो और उसके आश्रित कोई दूसरा अधीन या अंगवाक्य हो उसे जटिल या मिश्र वाक्य कहते है। जैसे—मैं देखता हूँ कि उसके रहने का कोई ठौर-ठिकाना नहीं है। इस वाक्य में 'मै देखता हूँ' एक सरल वाक्य के आश्रित 'उसके रहने का कोई ठौर-ठिकाना नही है' अधीन वाक्य है।

मिश्र वाक्य में जो अंश प्रधान रहता है उसे प्रधान और जो अंश अप्रधान रहता है उसे आनुषंगिक अंग कहते हैं। जैसे—मै जानता हूँ कि उसका लिखना अच्छा होता है। इस वाक्य मे 'मै 'जानता हूँ' प्रधान अंग है और 'उसका लिखना अच्छा होता है' आनुषंगिक अंग।

आनुषंगिक अंग—मिश्र वाक्य में प्रयुक्त आनुषंगिक अंग के तीन भेद है—एक विशेष्य वाक्य, दूसरा विशेषण वाक्य और तीसरा क्रिया-विशेषण वाक्य।

(क) विशेषण आनुषंगिक वाक्य—जो आनुषंगिक वाक्य प्रधान वाक्य के किसी संज्ञा या विशेष्य के बदले में व्यवहृत हो उसे विशेष्य वाक्य कहते है। जैसे—उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि मैं निर्दोष हूँ। इस मिश्र वाक्य में 'मै निर्दोष हूँ' मुख्य वाक्य के किसी संज्ञा के रूप में व्यवहृत हुआ है; क्योंकि अगर सारवाक्य को सरल वाक्य में बदल दिया जाय तो इसका रूप यो हो जायगा—उन्होंने 'अपनी निर्दोषता' सिद्ध कर दिखायी। यहाँ आनुषंगिक वाक्य 'मै निर्दोष हूँ' का परिवर्तित रूप 'अपनी निर्दोषता' संज्ञा है, इसलिए 'मैं निर्दोष हूँ' विशेष्य वाक्य है।

विशेष्य रूप में व्यवहृत आनुषंगिक वाक्य कभी कर्त्ता या उद्देश्य, कभी कर्म और कभी समानाधिकरण संज्ञा के बदले में आते हैं।

उदाहरण—

कर्त्ता रूप में विशेष्य वाक्य—मुझे मालूम है कि 'वह आज कौन-कौन काम करेगा'। अर्थात् मुझे उसका 'आज का काम' मालूम है।

कर्म रूप में—उन्होने यह सिद्ध कर दिखाया कि 'मै निर्दोष हूँ'। अर्थात् उन्होने 'अपनी निर्दोषता' सिद्ध कर दिखायी।

समानाधिकरण संज्ञा के रूप में—'वैज्ञानिकों का यह कथन है कि 'पृथिवी गोल' है सभी मानने लग गये है। अर्थात् वैज्ञानिकों का 'पृथिवी के गोल होने का' कथन सभी मानने लग गये हैं।

विशेष्य वाक्य संयोजक 'कि' के द्वारा अपने प्रधान वाक्य के साथ अपेक्षित या मिले रहते है पर कहीं-कहीं 'कि' शब्द लुप्त भी रहता है। जैसे, यह सभी कहते है, (कि) काँसे के ऊपर बिजली गिरती है।

(ख) विशेषण वाक्य—जो आनुषंगिक वाक्य प्रधान वाक्य के किसी विशेषण के रूप मे व्यवहृत हो उसे **विशेषण वाक्य** कहते हैं। जैसे, 'जो मनुष्य संतोष धारण करता है' वह सदा सुखी रहता है। अर्थात् 'संतोषी मनुष्य' सदा सुखी रहता है। यहाँ पर आनुषंगिक अंग विशेषण के रूप में आया है।

विशेषण वाक्य कभी कर्त्ता और कभी कर्म के रूप में आते हैं। ऊपर का विशेषण वाक्य कर्त्ता के रूप में व्यवहृत हुआ है। कर्म के रूप में व्यवहृत विशेषण वाक्य—वह अपने कुत्ते को, 'जो बड़ा स्वामिभक्त है' जी-जान से मानता है। अर्थात् वह अपने 'स्वामिभक्त कुत्ते को' जी-जान से मानता है इत्यादि।

विशेषण रूप में व्यवहृत आनुषंगिक वाक्य अपने प्रधान वाक्य से संबंधवाचक सर्वनाम (जो-सो) के द्वारा संयुक्त होते है। कहीं-कहीं ये लुप्त भी रहते है। आजकल 'सो' के बदले 'वह' लिखने की परिपाटी चल निकली है जैसा कि ऊपर के वाक्य में प्रदर्शित किया गया है।

(ग) क्रिया-विशेषण वाक्य—जो आनुषंगिक वाक्य प्रधान वाक्य की क्रिया की विशेषता बतलाने के अभिप्राय से प्रयुक्त हुआ हो उसे क्रिया-विशेषण वाक्य कहते हैं। जैसे; जब विपत्ति पड़े तब 'धीरज धरना चाहिए' अर्थात् 'विपत्ति पड़ने पर' धीरज धरना चाहिए।

क्रिया-विशेषण अपने प्रधान वाक्य से जब-तब, जहाँ-तहाँ, यदि-तो, जैसे-तैसे आदि अव्ययों के द्वारा संयुक्त रहते हैं।

(३) संयुक्त या यौगिक वाक्य—जिस वाक्य में दो या अधिक सरल या जटिल वाक्य एक दूसरे पर अपेक्षित न होकर मिले रहते है उसे यौगिक या संयुक्त वाक्य कहते हैं। जैसे; वह बूढ़ा हो गया पर उसके केश काले ही हैं। राम कलकत्ता गया और मोहन पटना आया इत्यादि।

यौगिक वाक्य में एक वाक्य दूसरे के आश्रित नहीं रहते बल्कि दोनों स्वाधीन रहते हैं। इसलिए उन्हें समानाधिकरण वाक्य कहते हैं। वे वाक्य किंतु, परंतु, अथवा, या, एवं, और, तथा आदि संयोजक अथवा विभाजक अव्ययों के द्वारा एक दूसरे से जुटे रहते है।

उद्देश्य अंश के एक से ज्यादा विधेय और विधेय अंश के एक से ज्यादा उद्देश्य रहने पर भी यौगिक वाक्य होता है। जैसे, रसोइया गाता है, रसोई करता है। अर्थात् रसोइया गाता है और रसोई करता है। मोहन और सोहन खेल देखने गये है। अर्थात् मोहन खेल देखने गया

है और सोहन खेल देखने गया है। परंतु वाक्य में संयोजक अव्यय रहने से ही तब तक वह यौगिक वाक्य नहीं होता जब तक उसको अलग-अलग करने पर साफ अर्थ प्रगट नहीं होता। जैसे; मोहन और सोहन दोनों मित्र हैं।

२. क्रिया के अनुसार वाक्य-भेद

क्रिया के अनुसार वाक्य के तीन भेद है। (१) कर्तृवाच्य, (२) कर्मवाचक और (३) भाववाच्य।

(१) कर्तृवाच्य—जिस वाक्य में कर्त्ता अपनी अवस्था में हो और कर्म अपनी अवस्था में तथा क्रिया-पद स्वतंत्र न हो उसे कर्तृवाच्य कहते हैं। जैसे—मोहन गीत गाता है। राम टहलता है।

[नोट—सभी कर्तृवाच्य में कर्त्ता का होना जरूरी नही है।]

(२) कर्मवाच्य—जिस वाक्य में कर्त्ता करण के रूप में और कर्म कर्त्ता के रूप में प्रयुक्त हों तथा क्रिया कर्म के अनुसार हो उसे कर्मवाच्य कहते हैं। जैसे—मोहन से गीत गाया जाता है। मुझसे रोटी खायी जाती है इत्यादि।

[नोट—कर्मवाच्य में कर्म का रहना आवश्यक है।]

(३) भाववाच्य—जब अकर्मक क्रियापद-युत कर्तृवाच्य के कर्त्ता का रूप करण के समान हो जाय तब वहाँ भाववाच्य होता है। भाववाच्य में क्रिया स्वयं प्रधान रहती है। जैसे—राम से टहला भी नहीं जाता।

[नोट—(क) जिस वाक्य में कर्म ही कर्त्ता की भाँति प्रयुक्त हो वहाँ कर्तृकर्मवाच्य होता है। जैसे; चलती नहीं कलम है। पानी बरस रहा है। तलवार चलने लगी। तबला ठनकने लगा इत्यादि।

(ख) वाच्य के संबंध में विशेष ज्ञातव्य बातें वाच्य-परिवर्तनवाले परिच्छेद मे विस्तार के साथ दी गयी हैं।]

३. वाक्य के सामान्य-भेद

सामान्य तरीके से सभी तरह के वाक्यों के निम्नलिखित आठ भेद होते हैं—

(१) विधिवाचक—जिससे किसी बात का विधान पाया जाय। जैसे—आकाश निर्मल हो गया। उपवन में पुष्प खिल रहे हैं इत्यादि।

(२) निषेधवाचक—जिससे किसी बात का न होना पाया जाय। जैसे—वह जातपाँत कुछ नहीं मानता। कोई काम सफल नहीं हुआ इत्यादि।

(३) आज्ञावाचक—जिस वाक्य से आज्ञा, उपदेश, निवेदन आदि का बोध हो। जैसे—सुबह-साँझ टहला करो। गुरु की आज्ञा मानो आदि।

(४) प्रश्नवाचक—जिसमें प्रश्न किया गया हो। जैसे—तुम्हारी पुस्तक कहाँ है? आजकल तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है? इत्यादि।

(५) विस्मयादिबोधक—जिससे आश्चर्य, कौतूहल, कौतुक आदि भाव प्रदर्शित हों। जैसे; अहा! कैसा शीतल जल है! क्या ही सुंदर घोड़ा है!

(६) इच्छाबोधक—जिससे इच्छा प्रगट हो। जैसे—भगवान आपका भला करें! आप चिरायु हों!

(७) संदेहसूचक—जिससे सन्देह हो या सम्भावना पायी जाय। जैसे—मुझे डर है, कहीं अर्थ का अनर्थ न हो जाय। उस दिन कदाचित आप यहाँ होते इत्यादि।

(८) संकेतार्थक—जिसमें संकेत या शर्त पायी जाय। जैसे—अगर वह पढ़ता रहता तो आज उसकी यह गति नहीं हो पाती।

एक वाक्य के एक ही अर्थ में आठो रूप

(१) ज्ञान से बुद्धि निर्मल होगी। (विधिवाचक)

(२) जिसे ज्ञान नहीं उसकी बुद्धि निर्मल नहीं होती है। (निषेधवाचक)

(३) ज्ञानी बनो, बुद्धि निर्मल होगी। (आज्ञावाचक)

(४) क्या ज्ञान से बुद्धि निर्मल होती है ? (प्रश्नवाचक)
(५) (क्या कहा,) ज्ञान से बुद्धि निर्मल होती है ! (विस्मयादिबोधक)
(६) मैं ज्ञानी बनूँगा, बुद्धि निर्मल होगी। (इच्छाबोधक)
(७) हो सकता है कि ज्ञान से बुद्धि निर्मल हो। (सन्देहसूचक)
(८) यदि ज्ञान प्राप्त करोगे तो बुद्धि निर्मल होगी (संकेतार्थक)

अभ्यास

१—आकार की दृष्टि से वाक्य के कितने भेद हैं? उदाहरण के साथ समझाइए।

२—पाँच ऐसे वाक्य लिखिए जिनमें एक-एक गर्भित वाक्य रहे।

३—निम्नलिखित वाक्यों में कौन किस प्रकार के वाक्य हैं? कारण सहित समझाइए— (१) काश्मीर नामक एक पहाड़ी राज्य भारत के उत्तरी हिस्से में अवस्थित है। (२) वह है तो ब्राह्मण पर आचरण उसका शूद्र-जैसा है। (३) जिसने देखा, वही लुभाया। (४) जिसकी लाठी, उसकी भैंस। (५) मोहन की टोपी माधो के सिर पर।

४—नीचे लिखे शब्दों को लेकर एक-एक मिश्र-वाक्य बनाइए— जो, जहाँ, जब तक और ज्योंही।

५—नीचे लिखे वाक्य को बिना अर्थ-भेद के वाक्य के आठो साधारण प्रकारों में दिखलाइए—परिश्रम से विद्या होती है।

तृतीय परिच्छेद

१. वाक्य-विश्लेषण

वाक्य-विश्लेषण—वाक्य के अंशों को अलग-अलग कर उनके पारस्परिक संबंध को प्रदर्शित करने की विधि को वाक्य-विश्लेषण या वाक्य-विग्रह कहते हैं।

सरल वाक्य का विश्लेषण--निम्नलिखित प्रकार से सरल वाक्य का विश्लेषण किया जाता है--

(१) पहले वाक्य के उस अंश को दरसाना होता है जिसे उद्देश्य कहते हैं।

(२) उसके बाद उन अंशों को रखना होता है जिनसे उद्देश्य-पद विस्तृत किया जाता है।

(३) फिर विधेय को दिखाना पड़ता है।

(४) यदि विधेय-पद पूर्ण अर्थ प्रकाश नहीं करता हो तो उसका पूरक अथवा वह अंश जिससे विधेय का पूर्ण अर्थ प्रकाशित हो, रखना पड़ता है।

(५) अगर विधेय सकर्मक हो तो उसका कर्म निर्देश करना पड़ता है।

(६) कर्म जिन अंशों के द्वारा बढ़ाया गया हो वे अंश कर्म के बाद रखने पड़ेंगे।

(७) अंत में उन अंशों को दिखाना पड़ता है जो विधेय के विस्तार के रूप में व्यवहृत हुए हों।

सारांश यह है कि सरल वाक्य-विश्लेषण का क्रम इस प्रकार

रहता है—(१) उद्देश्य, (२) उद्देश्य का विस्तार, (३) विधेय, (४) विधेय-पूरक, (५) कर्म (६) कर्म का विस्तार और (७) विधेय का विस्तार।

उदाहरण—

(१) सम्राट् अशोक ने भिन्न-भिन्न देशों में अपने धर्म-प्रचारक भेजे।
(२) पागल कुत्ते ने राम के पुत्र सुधांशु को परसों काट लिया।
(३) वन्दर पेड़ की पत्तियाँ खाता है।
(४) गुण ही स्त्रियों के लिए सबसे बढ़कर सौंदर्य है।
(५) साहसी मनुष्य भय से नहीं घबराता।

संख्या	उद्देश्य अंश		विधेय अंश				
	मुख्य उद्देश्य	उद्देश्य का विस्तार	विधेय	विधेय पूरक	कर्म	कर्म विस्तार	विधेय का विस्तार
(१)	अशोक ने	सम्राट्	भेजे	×	धर्मप्रचारक	भिन्न-भिन्न देशों में	×
(२)	कुत्ते ने	पागल	काट लिया	×	सुधांशु को	राम के पुत्र	परसों
(३)	वंदर	×	खाता है	×	पत्तियाँ	पेड़की	×
(४)	गुण ही	×	है	सौंदर्य	×	×	स्त्रियों के लिए सबसे बढ़कर
(५)	मनुष्य	साहसी	घवराता है	नहीं	×	×	भय से

जटिल वाक्य का विश्लेषण—

जटिल वाक्य का विश्लेषण करते समय सबसे पहले यह ध्यान में रखना होता है कि वाक्य में कौन अंग प्रधान और कौन अंग आनुषंगिक या अप्रधान है। फिर आनुषंगिक अंग को पद-विशेष समझकर, सरल वाक्य के विश्लेषण की नाईं समूचे वाक्य का विश्लेषण करना पड़ता है। इसके बाद आनुषंगिक अंग का भी विश्लेषण सरल-वाक्य-विश्लेषण-विधि के अनुसार करना होता है।

उदाहरण—(१) मैं जानता हूँ, कि वह यहाँ नहीं आयेगा (२) जो संयम से रहता है वह कभी नहीं बीमार पड़ता। (३) जब मैं आया तब वह चला गया।

विश्लेषण

वाक्य	वाक्य-भेद	समुच्चायक	उद्देश्य अंश: मुख्य उद्देश्य	उद्देश्य अंश: उद्देश्य का विस्तार	विधेय अंश: विधेय	विधेय अंश: विधेय पूरक	विधेय अंश: कर्म: कर्म	विधेय अंश: कर्म: विस्तार	विधेय अंश: विधेय का विस्तार
मैं जानता हूँ कि	प्रधान	कि	मैं	×	जानता हूँ	×	वह यहाँ नहीं आयेगा	×	×
वह यहाँ नहीं आयेगा	आनुषंगिक (कर्म रूप में)		वह	×	आयेगा	नहीं	×	×	यहाँ
वह कभी बीमार नहीं पड़ता	प्रधान	×	वह	जो संयमसे रहता है	पड़ता है	नहीं	×	×	कभी बीमार
जो संयम से रहता है	आनुषंगिक विशेषण रूप में		जो	×	रहता है	×	×	×	संयम से
तब वह चला गया	प्रधान	×	वह	×	चला गया	×	×	×	तब, जब मैं; यहाँ आया
जब मैं यहाँ आया	आनुषंगिक क्रियाविशेषण रूप में		जो	×	आया	×	×	×	यहाँ, जब

ऊपर किये गये वाक्य-विश्लेषण में पहले जटिल वाक्य में आनुषंगिक वाक्य कर्म रूप में आया है; इसलिए समूचे वाक्य का विश्लेषण करते समय वह कर्म के रूप में बताया गया है; दूसरे वाक्य में विशेषण के रूप में आया है इसलिए उद्देश्य का रूप लिखा गया और तीसरे वाक्य में क्रिया-विशेषण रूप मे व्यवहृत हुआ है, इसलिए विधेय का विस्तार समझा गया हैं।

यौगिक या संयुक्त वाक्य का विश्लेषण—

यौगिक या संयुक्त वाक्य का विश्लेषण करने में जिन सब वाक्यों से मिलकर यौगिक वाक्य बना हैं उनका पृथक्-पृथक् विश्लेषण करना चाहिए; फिर जिन योजकों वा अव्ययों द्वारा वे मिले है, उन्हें दरसाना चाहिए। यदि यौगिक वाक्य सरल वाक्यों के मेल से बना हो तो सरल-वाक्य-विश्लेषण-विधि के अनुसार और यदि जटिल वाक्यों के मेल से बना हो तो जटिल-वाक्य-विश्लेषण-विधि के अनुसार विश्लेषण करना चाहिए।

२. पद-निर्देश

पद-निर्देश—व्याकरण-संबंधी विशेषताओं का कथन करते हुए वाक्यों के पदों का जब पारस्परिक संबंध बताया जाय, तब उसे पद-निर्देश कहते हैं। पद-निर्देश को पद-परिचय, पदच्छेद, पदान्वय, पद-व्याख्या, वाक्य-विवरण, पद-निर्णय, पद-विन्यास आदि नामों से भी पुकारते है।

संज्ञापद—संज्ञापद या विशेष्य का पद-निर्देश करने में उसके जातिवाचक आदि भेद, लिंग वचन, पुरुष और कारक दिखाये जाते हैं और जिस पद के साथ उसका संबंध हो उसे दरसाया जाता है। क्रियार्थक संज्ञा में लिंग, वचन, पुरुष नहीं लिखे जाते है।

सर्वनामपद—सर्वनाम का पद-निर्देश करने में उसके भेद, लिंग, वचन, पुरुष, कारक और अन्य पदो के साथ उसका संबंध लिखना पड़ता है। सर्वनाम जिस संज्ञा के बदले मे आता है उसी संज्ञा के लिंग, वचन आदि

के अनुसार उसके भी लिंग, वचन आदि होते है। हाँ, पुरुष और कारक में भेद हो सकता है।

विशेषणपद—विशेषण में उसके भेद के साथ-साथ जिस विशेष्य का वह विशेषण है वह विशेष्य लिखना होता है।

क्रियापद—क्रिया में पूर्वकालिक या समापिका; सकर्मक, द्विकर्मक या अकर्मक; कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य या भाववाच्य; काल और उसके भेद; लिंग, वचन और पुरुष दिखाये जाते हैं और जिस कर्त्ता की क्रिया है वह कर्त्ता और अगर क्रिया सकर्मक हो तो उसका कर्म लिखना पड़ता है।

अव्यय—अव्यय में उसका भेद और अगर किसी पद के साथ उसका संबंध हो तो वह पद दरसाना पड़ता है।

[नोट—(१) जब विशेषणपद स्वतंत्र रूप से विशेष्य की भाँति व्यवहृत होता है तब उसमें भी विशेष्य की भाँति लिंग, वचन, पुरुष और कारक होते है। जैसे—विद्वानों की सभा हो रही है।

(२) कुछ गुणवाचक विशेष्य (संज्ञा) कभी विशेष्य और कभी विशेषण के रूप में आते है। जैसे—'स्वर्ण युग' में 'स्वर्ण' विशेषण और 'युग' विशेष्य है।

(३) कभी-कभी जातिवाचक संज्ञा भी विशेषण के रूप में आती है। जैसे—'क्षत्रिय' कुल में जन्म लेकर कायर क्यों बनते हो? यहाँ 'क्षत्रिय' विशेषण है।

(४) सर्वनाम भी कभी-कभी विशेषण के रूप में व्यवहृत होता है। जैसे—यह पुष्प सहसा मुरझा गया है। यहाँ 'यह' विशेषण है।

(५) पद-निर्देश करते समय गद्य का एक-एक पद लिया जाता है और पद्य का गद्य में रूपांतर कर उसका पद-निर्देश किया जाता है। कोई-कोई वैयाकरण कारक की विभक्ति का अलग पद-निर्देश करते हैं और उसे अव्यय का रूप देते है पर विभक्ति-सहित शब्द का ही पद-निर्देश करना ठीक है। क्योंकि पद-निर्देश में शब्द का परिचय नहीं बल्कि पद का परिचय बताया जाता है।

(६) संबोधन-पद और विधिक्रिया में मध्यम पुरुष होता है ।]

[उदाहरण—मोहन ने गंगा के तट पर जाकर देखा कि एक नौका गंगा में जा रही है । उस पर एक सुन्दर बालक बैठा है जिसके गले में पुष्प की माला है ।]

मोहन ने—संज्ञा, व्यक्तिवाचक, पुंल्लिग, एकवचन, अन्यपुरुष, कर्त्ताकारक जिसकी क्रिया 'देखा है' है ।

गंगा के—संज्ञा, व्यक्तिवाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्यपुरुष, संबंध-कारक, इसका संबंधी 'तट पर' है ।

तटपर—संज्ञा, जातिवाचक, पुंल्लिग, एकवचन, अन्यपुरुष, अधिकरण कारक ।

जाकर—क्रिया, पूर्वकालिक ।

देखा—क्रिया, सकर्मक, कर्तृप्रधान, सामान्यभूत, पुंल्लिग, एकवचन, अन्यपुरुष, इसका कर्त्ता 'मोहन ने' और कर्म 'एक नौका गंगा के तट पर जा रही है', आनुषंगिक वाक्य के रूप में है ।

कि—संयोजक अव्यय जो 'मोहन ने गंगा के तट पर जाकर देखा' और 'एक नौका गंगा में जा रही है' को मिलाता है ।

एक—संख्यावाचक विशेषण । इसका विशेष्य 'नौका' है ।

नौका—संज्ञा, जातिवाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्यपुरुष, कर्त्ता-कारक । इसकी क्रिया है 'जा रही है' ।

गंगा में—अधिकरण कारक ।

जा रही है—क्रिया, अकर्मक, कर्तृप्रधान तात्कालिक वर्तमान, स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्यपुरुष । इसका कर्त्ता 'नौका' है ।

उसपर—सर्वनाम, 'नौका' के बदले में आया है, निश्चयवाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्यपुरुष, अधिकरण कारक ।

सुन्दर—विशेषण । इनका विशेष्य 'बालक' है ।

बालक—संज्ञा, जातिवाचक, पुंल्लिग, एकवचन, अन्यपुरुष, कर्त्ता-कारक । इसकी क्रिया है 'बैठा है' ।

बैठा है—क्रिया, अकर्मक, कर्तृप्रधान, आसन्न भूत, पुंल्लिंग, एकवचन, अन्यपुरुष। इसका कर्त्ता 'बालक' है।

जिसके—सर्वनाम, 'बालक' के बदले में आया है, संबंधवाचक, पुंल्लिंग, एकवचन, संबंध कारक जिसका संबंधी 'गले में' है।

गले में—संज्ञा, जातिवाचक, पुंल्लिंग, एकवचन, अन्यपुरुष, अधिकरण कारक।

पुष्प की—संज्ञा, जातिवाचक, पुंल्लिंग, एकवचन, अन्यपुरुष, संबंधकारक, इसका संबंधी 'माला' है।

माला—संज्ञा, जातिवाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्यपुरुष, कर्त्ता-कारक, जिसकी क्रिया 'है' है।

है—क्रिया, अकर्मक, अपूर्ण अर्थ-प्रकाशक क्रिया, जिसका विधेय-पूरक 'माला' है, सामान्य वर्तमान, स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्यपुरुष। इसका कर्त्ता भी 'माला' ही है।

अभ्यास

१. नीचे लिखे वाक्यों का विश्लेषण करें—

(क) महात्मा गाँधी सत्य और अहिंसा के अवतार थे। (ख) यहाँ बैठूँ कि वहाँ जाऊँ, कुछ समझ में नहीं आता। (ग) यद्यपि अकबर ने दीनइलाही में प्रायः सभी धर्मों की प्रधान-प्रधान बातों को स्थान दिया था, तथापि वह सर्वमान्य धर्म नहीं हो सका। (घ) जो बादल अधिक गर्जन करता है, वह प्रायः बरसता नहीं है। (ङ) मरता क्या न करता।

२. नीचे लिखे वाक्यों का विश्लेषण करें—(क) एक दिन मैंने देखा कि गंगा की मध्य धारा में एक सुन्दर फूल बह रहा है। (ख) गोडसे की बुद्धि मारी गई थी अन्यथा वह बापू की हत्या कर संसार का सबसे बड़ा कलंकी और नराधम क्यों बनता? (ग) राम पटना चला गया पर मोहन घर पर ही है।

३. नीचे के पद्य में मोटी टाइपों में दिये गये पदों का पद-निर्देश करें—

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सुबीति बहार।
अब अलि, रही गुलाब में, अपत कटीली डार॥

चतुर्थ परिच्छेद

वाक्य-रचना के नियम

१. पदक्रम

व्याकरण के नियमों द्वारा या भाषा की रीति के अनुसार सिद्ध पदों की स्थापन-विधि को ही वाक्य-रचना कहते हैं। यहाँ सिद्ध पदों की स्थापना करते समय यह देखना पड़ता है कि पदों के साथ पदों का संबंध रहे, साथ ही, स्थापन-प्रणाली का क्रम भी भंग न हो। तात्पर्य यह है कि वाक्य-रचना में पदों के संबंध और क्रम पर विशेष ध्यान देना होता है जिन्हें पदमेल और पदक्रम कहते हैं।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि वाक्य-रचना मे पद-स्थापन-प्रणाली को पदक्रम कहते है। यह पदक्रम दो प्रकार का होता है—एक अलंकृत पदक्रम, दूसरा साधारण।

विशेष प्रसंग पर वक्ता और लेखक की इच्छा के अनुसार पदक्रम में जो अंतर पड़ता है उसे अलंकारिक पदक्रम कहते हैं और इसके विपरीत व्याकरणीय या साधारण पदक्रम कहलाता है।

अलंकारिक पदक्रम का विषय व्याकरण से भिन्न है; अतएव उसका नियम बनाना कठिन है। हाँ, साधारण पदक्रम के कुछ नियम यहाँ दिये जाते है।

(१) वाक्य के पदक्रम का सबसे पहला और स्थूल नियम यह है कि वाक्य के पहले कर्त्ता या उद्देश्य और अंत में क्रिया या विधेय-पद का क्रम रहता है। जैसे—तारे चमक रहे हैं। हवा बहती है इत्यादि।

(२) यदि क्रिया सकर्मक हो तो उसके कर्म को क्रिया के पूर्व और द्विकर्मक हो तो पहले गौणकर्म और उसके बाद मुख्य कर्म रखते हैं।

जैसे—राम रोटी खाता है। वह मोहन को हिंदी पढ़ाता है।

(३) शेष कारकों में आनेवाले पद उन पदों के पूर्व आते हैं जिनसे उनका संबंध रहता है। जैसे—श्याम ने आलमारी से राम की पुस्तक निकाली। राम का भाई कल पटने से कलकत्ता जायगा।

(४) संबोधन-पद वाक्य के प्रारंभ में रहता है और उसके प्रत्यय—हो, हे, अरे, रे आदि—ठीक संबोधन-पद के पूर्व रहते हैं। जैसे—अरे मोहन, अबतक तू यहीं बैठा है। प्रभो, हमारी रक्षा करो !! इत्यादि।

(५) संबंध-पद के बाद उसका संबंधी-पद आता है। यदि संबंधी-पद का कोई विशेषण हो तो वह संबंधी-पद के ठीक पहले रहता है। जैसे—यह श्याम की धोती है। उसका लाल घोड़ा चर रहा है।

जब संबंधी-पद उद्देश्य-विधेय रूप में आवे तब विधेय-पद वाक्य के पहले आता है। जैसे—लोगों की सेवा करना ईश्वर की सेवा करने के समान है।

(६)कर्मकारक में आनेवाले शब्द प्रायः कर्म के पहले आते हैं और उनके विशेषण उनके पूर्व रहते हैं। जैसे—उसने लाठी से सांप मारा। राम ने अपने सुकुमार हाथों से फूल तोड़े।

(७) अपादान कारक अपने अर्थ-बोधक-पद से पहले आता है। जैसे—वह कल पटने से घर चला गया।

(८) बहुधा अधिकरण-पद अपने आधेय के पूर्व रहा करता है। जैसे—गुलाब में काँटे होते हैं।

(क) कालवाचक अधिकरण-पद वाक्य के पहले आता है। जैसे—रात्रि में ही चंद्रदेव उदय होते है।

(ख) जिस वाक्य में कालवाचक और स्थानवाचक दोनों ही अधिकरण-पद हों वहाँ पहले कालवाचक, पीछे स्थानवाचक रहता है। जैसे—वह दिन में कार्य्यालय में रहता है।

[नोट—ऊपर बताये गये पदक्रम के नियमों में बहुत कुछ अंतर भी पड़ जाता है। अर्थात् वाक्य में जिस पद की प्रधानता दिखानी हो

उसे उपर्युक्त नियमों के विरुद्ध पहले रखते हैं, जिससे वाक्य के अन्य अंशों में भी उलट-फेर हो जाता है। जैसे—

(क) कर्त्ता का स्थानांतर—सिरतोड़ मेहनत कर कमावे 'राम' और खाय 'मोहन'।

(ख) कर्म का स्थानांतर—मिठाई छोड़ कोई 'चीज' मैं खाऊँगा ही नहीं।

(ग) करण का स्थानांतर—'तलवार से' उसने चोर का सिर काट लिया।

(घ) संप्रदान का स्थानांतर—'आप के ही लिए' तो यह सब कुछ किया गया है।

(ङ) अपादान का स्थानांतर—'वृक्ष से' जितने फल गिरे सब के सब बरबाद हो गये।

(च) संबंध का स्थानांतर—'मेरी' घड़ी तो राम ले गया है।

कभी-कभी पद के सिलसिले में संबंधपद अपने संबंधी के पीछे व्यवहृत होता है। जैसे—यह घड़ी किसकी है ?

(छ) अधिकरण का स्थानांतर—इसी पर सब कुछ निर्भर करता है।

(ज) क्रिया का स्थानांतर—वाह साहब, मैंने पुकारा किसे और 'टपक पड़े' आप !]

(६) प्रायः विशेषण अपने विशेष्य के पहले आता है। यदि एक से अधिक विशेषण-पद एक साथ आवें तो उनके बीच में संयोजक अव्यय कोई लाते है और कोई नहीं भी लाते है। क्योंकि लाना और नहीं लाना वाक्य की बनावट और लालित्य पर निर्भर करता है। जहाँ नहीं देने से वाक्य का लालित्य भ्रष्ट होने लगे वहाँ देना चाहिए और जहाँ लालित्य में कोई बाधा नहीं पड़े वहाँ नही देना चाहिए। हाँ, स्थानांतर हो जाने से अगर एक से अधिक विशेषण प्रयुक्त हों तो संयोजक अव्यय जोड़ना आवश्यक हो जाता है। जैसे—

(क) 'बली' भीम ने दुःशासन को गदा के प्रहार से मार डाला।

(ख) भक्तवत्सल, दीनपालक, नरश्रेष्ठ (और) बली राम ने रावण को मारा।

(ग) गुलाब का फूल बड़ा ही सुन्दर 'और' मनमोहक होता है।

(१०) क्रिया-विशेषण या क्रिया-विशेषण के रूप में व्यवहृत वाक्यांश बहुधा क्रिया के पहले आता है। जैसे—राम चुपचाप रास्ता नाप रहा है।

(११) पूर्वकालिक क्रिया बहुधा समापिका क्रिया के पहले आती है जब कि दोनों का कर्त्ता एक ही रहे। और जिस क्रिया के जो कर्म, करण आदि पद होते हैं वे उससे पहले आते है। जैसे—वह कुछ फल खाकर सिनेमा देखने के लिए चला गया।

(१२) सर्वनाम पदों में विशेषण प्रायः सर्वनाम के बाद ही आते हैं। जैसे—वह बड़ा चतुर है।

[नोट—शब्द पर जोर देने के लिए उपर्युक्त नियमों में फेरफार हो जाया करता है। जैसे—

(क) क्रिया-विशेषण कर्त्ता से भी पहले—एक-एक कर वह सब आम खा गया।

(ख) विशेषण का स्थानांतर—राम बड़ा सुशील है।

(ग) पूर्वकालिक क्रिया का स्थानांतर—देखकर भी उसने बात टाल दी।]

(१३) प्रश्नवाचक सर्वनाम या अव्यय उस पद के पहले आता है जिस पद के विषय में प्रश्न किया जाता है। जैसे—वह किसकी टोपी है ?

स्थानांतर—(क) यदि पूरा वाक्य ही प्रश्न हो तो प्रश्नवाचक सर्वनाम या अव्यय वाक्य में पहले ही आता है। जैसे—क्या आप कल कलकत्ता जाने वाले है ?

(ख) वाक्य मे जोर देने के लिए प्रश्नवाचक सर्वनाम या अव्यय मुख्य क्रिया और सहायक क्रिया के बीच में भी आ सकता है। जैसे—वह पटने से आ कैसे सकेगा ?

(ग) कभी-कभी वाक्य में प्रश्नवाचक सर्वनाम या अव्यय नहीं होता, केवल प्रश्नवाचक का चिह्न ही अंत में रहता है। जैसे—सचमुच वह पढ़ेगा? (क्या सचमुच वह पढ़ेगा?)।

(घ) प्रश्नवाचक अव्यय 'क्या' प्रायः वाक्य के आरंभ में ही आता है। कभी-कभी बीच या अंत में भी आ जाता है। जैसे—क्या वह पुस्तक खो गयी? वह पुस्तक खो गयी क्या? वह पुस्तक क्या खो गयी?

(ङ) जब 'न' प्रश्नवाचक अव्यय के समान प्रयुक्त होता है तब वह वाक्य के अंत में आता है। जैसे—आप स्कूल जायँगे न? मोहन कलकत्ता जायगा न? इत्यादि।

(१४) तो, भी, ही, भर, तक और मात्र—ये शब्द किसी शब्द में जोर पैदा करने के लिए ही वाक्य में व्यवहृत होते हैं और उन्हीं शब्दों के पीछे आते हैं जिन पर जोर देने के लिए ये व्यवहृत होते हैं। इनके स्थान परिवर्तन से वाक्य के अर्थ में भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे—मैं भी वहाँ जाने को तैयार हूँ। मै वहाँ भी जाने को तैयार हूँ। मैं तो जरूर सिनेमा देखूँगा। मै सिनेमा तो जरूर देखूँगा।

स्थानांतर—उपर्युक्त शब्दों में 'मात्र' को छोड़कर शेष शब्द मुख्य क्रिया और सहायक क्रिया के बीच में भी आते है। 'भी' तथा 'तो' को छोड़कर शेष शब्द संज्ञा और विभक्ति के बीच में भी आ सकते हैं। 'ही' शब्द कर्तृवाचक, कृदंत तथा सामान्य भविष्यत्काल प्रत्यय के पहले भी आ सकता है। जैसे—अब तो वह कुछ खाता भी है। पटने से कलकत्ते तक की दूरी ३७५ मील है। मोहन ही ने तो ऐसी अफवाह उड़ाई थी। चाहे जो कुछ हो जाय, वह विलायत जायगा ही। अब उसे देखने ही वाला कौन है? इत्यादि।

(१५) संबंधवाचक क्रिया-विशेषण जहाँ-तहाँ, जब-तब, जैसे-तैसे आदि प्रायः वाक्य के आरंभ में आते हैं। जैसे—जहाँ दिल चाहे तहाँ जाकर रहो। जब जी आवे तब यहाँ आ जाया करो। जैसे बने, वैसे समझौता कर लेना उचित है।

लोग 'तहाँ' के बदले 'वहीं' या 'वहाँ' और 'तब' के बदले 'तो' का भी व्यवहार करने लगे हैं। जैसे-जहाँ राम पढ़ेगा वहीं (वहाँ) मैं भी पढ़ूँगा। जब वह जायगा तो तुम भी जाना।

(१६) निषेधवाचक अव्यय (न, नहीं, मत) प्रायः क्रिया के पहले आते है। जैसे—वह कभी न आवेगा। मैंने 'रंगभूमि' अबतक नहीं पढ़ी हैं। तुम मत जाओ। ('मत' का प्रयोग विधिक्रिया रहने पर ही होता है।)

स्थानांतर—(क) 'नहीं' और 'मत' क्रिया के बाद भी आते है। जैसे—तुम वहाँ जाना मत। तुम तो वहाँ गये ही नहीं, वहाँ की बात क्या खाक जानोगे ?

(ख) यदि क्रिया संयुक्त हो तो ये निषेधवाचक अव्यय मुख्य क्रिया और सहायक क्रिया के बीच में भी आते है। जैसे—मैं इस बात का समर्थन कर नहीं सकता। तुम शीघ्र चले मत जाना इत्यादि।

(१७) समुच्चयबोधक अव्यय जिन शब्दों या वाक्यों को जोड़ते हैं उनके बीच में आते हैं। जैसे—राम और श्याम सहोदर भाई हैं। मैं काशी गया और वहाँ विश्वनाथ के दर्शन किये।

[**नोट**—(क) यदि संयोजक समुच्चयबोधक अव्यय कई शब्दों या वाक्यों को जोड़ता हो तो वह अंतिम शब्द या वाक्य के पूर्व आता है। जैसे—मैं फुलवारी गया, वहाँ जाकर सुगंधित फूलों को चुना और उनकी एक सुन्दर माला बनायी। इस पौधे के पत्ते, पुष्प और फल सभी सुहावने है।

(ख) संकेतवाचक समुच्चयबोधक—यदि, तो, यद्यपि, तथापि—प्रायः वाक्य के प्रारंभ में ही आते है। जैसे—यदि तुम यह पुस्तक आद्योपांत पढ़ जाओ तो बहुत से नये-नये शब्द जान जाओगे। यद्यपि बात ठीक थी तथापि उस समय बोलना उचित नहीं था।]

(१८) वाक्य में जब कोई शब्द दो बार आता है तब 'वीप्सा' कहलाता है जो संपूर्णता, एक-कालीनता, निकटता, केवलता आदि अर्थों का द्योतक है। जैसे—

घर-घर डोलत दीन ह्वै, जन-जन जाँचत जाय। —'बिहारी'

[नोट—जहाँ एक ही शब्द दो बार लिखना होता है वहाँ लोग एक शब्द लिखकर उसके आगे '२' लिख देते है, पर यह प्रयोग अच्छा नही है। कभी-कभी यह भ्रम में डालनेवाला हो जाता है।]

२. मेल

प्रायः देखा जाता है कि हिंदी के वाक्यों में कर्त्ता या कर्म-पद के साथ क्रिया-पद का, संज्ञा-पद के साथ सर्वनाम-पद का, संबंध के साथ संबंधी-पद का और विशेष्य के साथ विशेषण का संबंध वा मेल रहता है। कुछ और शब्द भी आपस में संबंध रखते है जिन्हें 'नित्य-संबंधी' कहते है।

कर्त्ता, कर्म, और क्रिया का मेल

(१) यदि वाक्य में कर्त्ता की विभक्ति प्रकट न रहे तो उसकी क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्त्ता के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार होते है; चाहे कर्म किसी भी रूप में क्यों न रहे। जैसे—मोहन टहलता है। स्त्रियाँ स्नान करती है। मैं रोटी खाता हूँ इत्यादि।

(२) यदि वाक्य में एक ही लिंग, वचन और पुरुष के अनेक विभक्ति-रहित कर्त्ता 'और' या इसी अर्थ में प्रयुक्त किसी अन्य योजक शब्द से मिल रहें तो क्रिया भी उसी लिंग के बहुवचन में होगी। मगर यदि उनके समूह से एकवचन का बोध हो तो क्रिया भी एकवचन में होगी। जैसे—शकुन्तला, प्रियंवदा, और अनसूया पुष्पवाटिका में पौधों को सींच रही थी। राम, मोहन और हरगोविंद आ रहे हैं। यह बात सुनकर उन्हें दुःख और क्षोभ हुआ।

(३) यदि वाक्य में दोनों लिंग और वचनों के अनेक विभक्ति-रहित कर्त्ता 'और' या इसी अर्थ में प्रयुक्त किसी अन्य शब्द से संयुक्त हों तो क्रिया बहुवचन में होगी और उसका लिंग अंतिम कर्त्ता के अनुसार होगा। जैसे—एक गाय, दो घोड़े और एक बकरी मैदान में चर रही हैं।

[नोट—(क) यदि वाक्य में दोनों लिंगों के एकवचन के विभक्ति-रहित अनेक कर्त्ता 'और' या इसी अर्थ में व्यवहृत किसी अन्य शब्द से

संयुक्त हों तो क्रिया प्रायः बहुवचन और पुंल्लिंग होगी। जैसे बाघ और बकरी एक घाट पानी पीते है।

(ख) तीसरे नियम के अनुसार बने वाक्य में यदि अंतिम कर्त्ता एकवचन में आवे तो क्रिया भी प्रायः एकवचन में व्यवहृत हुआ करती है। जैसे—ईसा की जीवनी में उनके हिसाब का खाता तथा डायरी नहीं मिलेगी।]

(परंतु लोग प्रायः इस प्रकार के वाक्य लिखने में अंतिम कर्त्ता अक्सर बहुवचन में लिखते है।)

(४) यदि वाक्य में कई विभक्ति-रहित कर्त्ता हों और उनके बीच में कोई विभाजक शब्द आवे तो उसकी क्रिया के लिंग और वचन अंतिम कर्त्ता के लिंग और वचन के अनुसार होंगे। जैसे—मेरी गाय या उसके बैल तालाव में पानी पीते हैं। निर्मलकुमार या उसकी बहन जा रही हैं इत्यादि।

(५) यदि वाक्य में अनेक विभक्ति-रहित कर्त्ताओं और उनकी क्रिया के बीच कोई समूहवाचक शब्द रहे तो क्रिया के लिंग और वचन समूहवाचक शब्द के अनुकूल होंगे। जैसे—युवक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष, लड़का-लड़की सब के सब आनंद से उन्मत्त हो उठे।

(६) यदि वाक्य में अनेक विभक्ति-रहित कर्त्ता हों और उनसे यदि एकवचन का बोध हो तो क्रिया एकवचन में और बहुवचन का बोध हो तो बहुवचन में होगी चाहे कर्त्ताओं और क्रिया के बीच कोई समूहसूचक शब्द रहे या न रहे। परंतु यह याद रखना चाहिए कि यह नियम केवल अप्राणिवाचक कर्त्ताओं के लिए है, प्राणिवाचक के लिए नहीं। जैसे—आज उसे चार रुपये तेरह आने तीन पैसे मिले। इस काम को करने मे कुल दो महीना और एक बरस लगा। विद्यालय के लिए दो हजार रुपया दान मिला इत्यादि।

(७) जब अनेक संज्ञाएँ विभक्ति-रहित कर्त्ताकारक में आकर किसी एक ही प्राणी वा पदार्थ को सूचित करती है तब क्रिया एकवचन में आती है। जैसे—वह राजनीतिज्ञ और योद्धा सन् १८६८ ई० में मर गया।

[नोट—उपर्युक्त नियम पुस्तकों के संयुक्त नामों में भी लागू होता है। जैसे—'धर्म और राजनीति' किसका लिखा हुआ है।]

(८) प्रायः वाक्य में पहले मध्यम पुरुष, उसके बाद अन्यपुरुष और अंत में उत्तमपुरुष रहता है। जैसे—तुम, वह और मैं जाऊँगा।

(९) यदि वाक्य में विभक्ति-रहित कर्त्ता तीनों पुरुष में आवें तो क्रिया के लिंग और वचन उत्तमपुरुष के लिंग और वचन के अनुसार होंगे; यदि मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष या अन्यपुरुष और उत्तमपुरुष आवें तो भी उत्तमपुरुष के ही अनुसार होंगे और यदि मध्यमपुरुष और अन्यपुरुष में आवें तो मध्यमपुरुष के अनुसार होंगे। जैसे—तुम, वह और मैं जाऊँगा। तुम और मैं जाऊँगा। वह और हम जायँगे। तुम और वह जाओगे।

(१०) आदर का भाव प्रदर्शित करने के लिए विभक्ति-रहित कर्त्ता अगर एकवचन में भी हो तो उसकी क्रिया बहुवचन में होगी। जैसे—वह चले गये। मालूम नहीं, रामेश्वर बाबू अबतक क्यों नहीं आये हैं?

(११) ईश्वर के लिए एकवचन की क्रिया का प्रयोग ही अच्छा मालूम पड़ता है। जैसे—मैं अपनी निर्दोषता कैसे सिद्ध करूँ—ईश्वर ही इसका साथी है। ईश्वर, तू है पिता हमारा!

(१२) जहाँ-जहाँ वाक्य में क्रिया कर्त्ता के अनुसार होती है वहाँ-वहाँ मुख्य कर्त्ता के ही अनुसार होती है, विधेय रूप में आये हुए अप्रधान कर्त्ता के अनुसार नहीं। जैसे—'राम' सूख कर 'लाठी' हो गया। 'स्वर्ण-लता' डर से 'पानी' हो गई।

(१३) यदि वाक्य में एक ही कर्त्ता की दो या अधिक समापिका-क्रियाएँ भिन्न-भिन्न कालों में हों या कोई अकर्मक और कोई सकर्मक हो तो कर्त्ता की विभक्ति केवल पहली क्रिया के अनुसार आती है। जैसे—हरि ने दोपहर का खाना खाया और सो रहा।

(१४) किसी वाक्य में प्रयुक्त दो या दो से अधिक क्रियाओं के समान

कर्त्ता को कई बार नहीं लिखकर केवल एक बार लिखना चाहिए। जैसे—वह बराबर यहाँ आता-जाता है।

(१५) कर्त्ता की विभक्ति पूर्वकालिक क्रिया के अनुसार नहीं आती। किसी वाक्य में पूर्वकालिक क्रिया का वही कर्त्ता होगा जो समापिका क्रिया का होगा। जैसे—वह खाकर सो रहा।

(१६) यदि एक या अधिक विभक्ति-रहित कर्त्ताओं का कोई समानाधिकरण शब्द हो तो क्रिया के लिंग, वचन आदि समानाधिकरण शब्द के अनुसार आते है। जैसे—स्त्री और पुत्र कोई साथ नहीं जाता। कंचन और कामिनी दोनों ही लोगों को पागल बनाकर छोड़ती हैं।

(१७) यदि वाक्य में कर्त्ता की 'ने' विभक्ति और कर्म की 'को' विभक्ति प्रगट रहे तो क्रिया सदा एकवचन, पुंल्लिंग और अन्यपुरुष में होगी। जैसे—कृष्ण ने वंशी को बजाया। मोहन ने अपनी बहन को बुलाया।

(१८) यदि वाक्य में कर्त्ता का 'ने' प्रकट रहे और कर्म रहे पर उसका 'को' प्रकट नहीं रहे तो क्रियाके लिंग, वचन और पुरुष कर्मके, लिंग वचन और पुरुष के अनुसार होंगे। जैसे—सीता ने राम के गले में जयमाल डाल दी। मैंने रोटी खायी। उसने बड़ी अच्छी चीज देखी इत्यादि।

(१६) यदि वाक्य में कर्त्ता 'ने' के साथ रहे और कर्म न रहे या लुप्तावस्था में रहे तो क्रिया सदा एकवचन, पुंल्लिंग और अन्यपुरुष में आती हैं। जैसे—सीता ने कहा। लोगों ने देखा इत्यादि।

(२०) क्रियार्थक संज्ञा की क्रिया भी सदा एकवचन, पुंल्लिंग और अन्यपुरुष में आती है। जैसे—उसका जाना सफल हुआ। सुबह का टहलना लाभदायक है।

(२१) यदि वाक्य में कर्त्ता या कर्म के, जिसके अनुसार क्रिया में लिंग, वचन आदि का प्रयोग किया जाता हैं, लिंग में संदेह हो तो क्रिया पुंल्लिंग में व्यवहृत होती है। जैसे—शास्त्रों में लिखा है। तुम्हारा सुनता कौन है इत्यादि।

(२२) कुछ संज्ञाएँ केवल बहुवचन में प्रयुक्त हुआ करती हैं। जैसे—उसके होश उड़ गये। मुफ्त में प्राण छूट गये। आँखों से आँसू टपक पड़े। तुम्हारे दर्शन भी दुर्लभ हो रहे है। शत्रुओं के दाँत खट्टे हो गये। क्रोध से उसके ओंठ फड़कने लगे। होश, प्राण, दर्शन, आँसू, ओंठ, दाँत आदि शब्द सदा बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं।

(२३) कर्म के अनुसार आनेवाली क्रियायुक्त वाक्य में यदि एक ही लिंग और एकवचन के अनेक प्राणिवाचक विभक्ति-रहित कर्मकारक आवें तो क्रिया उसी लिंग के बहुवचन में आती है। जैसे—उसने बकरी और गाय मोल ली। मोहन ने अपना भतीजा और बेटा भेजे।

[नोट—विभक्ति-रहित कर्मकारक में उत्तमपुरुष और मध्यमपुरुष नहीं आते।]

(क) उपर्युक्त नियमों के अनुसार आये हुए कर्मों में यदि पृथकता का बोध हो तो क्रिया एकवचन में आवेगी। जैसे—मोहन ने एक भतीजा और एक बेटा भेजा। उसने एक गाय और एक बकरी मोल ली।

(ख) यदि वाक्य में एक ही लिंग और एकवचन के अनेक विभक्ति-रहित अप्राणिवाचक कर्म आवें तो क्रिया एकवचन में आवेगी। जैसे—उसने सूई और कंघी खरीदी। राम ने फूल और फल तोड़ा।

(ग) यदि वाक्य में भिन्न-भिन्न लिंगों के अनेक विभक्ति-रहित कर्म एकवचन में रहे तो क्रिया पुंल्लिंग और बहुवचन में आवेगी। जैसे—मैंने बैल और गाय मोल लिये। मोहन ने सर्कस में बंदर और बाघ देखे।

(घ) यदि वाक्य में भिन्न-भिन्न लिंगो और वचनों के एक से अधिक विभक्ति-रहित कर्म रहें तो क्रिया के लिंग और वचन अंतिम कर्म के अनुसार होंगे। जैसे—मैंने सूई, कंघी, दर्पण और पुस्तकें मोल लीं।

[नोट—अंतिम कर्म प्रायः बहुवचन में आता है।]

(ङ) यदि वाक्य में कई विभक्ति-रहित कर्म आवें और वे विभाजक अव्यय द्वारा जुटे रहें तो क्रिया अंतिम कर्म के अनुसार होगी। जैसे—तुमने मेरी टोपी या डंडा जरूर लिया है।

(च) यदि वाक्य में अनेक विभक्ति-रहित कर्मों से किसी एक वस्तु का बोध हो तो क्रिया एकवचन में आवेगी। जैसे—मोहन ने एक अच्छा मित्र और बंधु पाया।

(छ) यदि वाक्य में व्यवहृत कई विभक्ति-रहित कर्मों का कोई समानाधिकरण शब्द रहे तो क्रिया समानाधिकरण शब्द के अनुसार होगी। जैसे—उसने धन, जन, कुल, परिवार आदि सब कुछ त्याग दिया।

(ज) विभक्ति-रहित दो कर्मों में क्रिया मुख्य कर्म के अनुसार होती है। जैसे— मीरकासिम ने अपनी राजधानी मुंगेर बनायी थी।

३. संज्ञा और सर्वनाम का मेल

(१) वाक्य में किसी सर्वनाम के लिंग और वचन उसी संज्ञा के लिंग और वचन के अनुसार होते है जिसके बदले में वह आता है; पर हाँ, कारकों में भेद हो जाता है। जैसे—स्त्रियाँ कहती हैं कि हम गंगा-स्नान करने जायँगी। हरिगोपाल कहता है कि मै पत्र-संपादन-कला सीखूँगा, क्योंकि मेरा झुकाव उस ओर अधिक है।

(२) यदि वाक्य में कई संज्ञाओं के बदले एक ही सर्वनाम-पद हो तो उसके लिंग और वचन संज्ञा-पद-समूह के लिंग और वचन के अनुसार होंगे। जैसे—शीतल और भागवत खेल रहे है परंतु वे शीघ्र ही खाने को आवेंगे।

(३) 'तू' का प्रयोग अनादर और प्यार के अर्थ में किसी संज्ञा के बदले होता है। देवताओं के लिए भी लोग इसका प्रयोग करते हैं। जैसे—मोहन, तू आज पढ़ने नहीं गया? मन्थरे, तू ही मेरी हितकारिणी हो। हा विधाता, तूने यह क्या किया? (तू की जगह तुम का भी प्रयोग होता है)

(४) किसी संस्था या सभा के प्रतिनिधि, संपादक, ग्रंथकार और बड़े-बड़े अधिकारी 'मैं' के बदले 'हम' का प्रयोग कर सकते हैं। जैसे—हम पिछले प्रकरणों में यह बात लिख चुके हैं। हम हिंदू-सभा के प्रतिनिधि की हैसियत से इस प्रस्ताव का विरोध करते हैं।

(५) अधिक आदर का भाव प्रदर्शित करने के लिए 'आप' शब्द के बदले पुरुष के लिए 'कृपानिधान', 'हुजूर', 'महाशय', 'श्रीमान्' आदि और स्त्रियों के लिए 'श्रीमती', 'देवीजी' आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी व्यंग्य भाव में भी ये शब्द प्रयुक्त होते हैं। जैसे—श्रीमान् की आज्ञा शिरोधार्य है? देवी जी कब जा रही हैं? हुजूर को सलाम! कृपानिधान के ही कारण मुझे यह दुःख भोगना पड़ा है (व्यंग्य भाव) इत्यादि।

(६) बड़ों के सामने अपनी हीनता और दीनता दिखाने के लिए अथवा शिष्टाचार के नियमों के अनुसार उत्तमपुरुष सर्वानम के बदले पुरुषों के लिए—दास, बंदा, सेवक, अनुचर आदि और स्त्रियों के लिए--अनुचरी, दासी, सेविका आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं। जैसे--इस दास को याद रखियेगा। नाथ, इस दासी को मत भूलियेगा!

४. विशेषण और विशेष्य

(१) विशेषण के लिंग, वचन आदि विशेष्य के लिंग, वचन आदि के अनुसार होते है; चाहे वह विशेष्य के पहले रहे या पीछे। यहाँ पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि केवल आकारांत विशेषण में ही विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के कारण विकार उत्पन्न होता है, अन्यथा नहीं। जैसे--काली गाय चरती है। यह गाय काली है।

[नोट--सुंदर, सुशील आदि कुछ ऐसे अकारांत तत्सम विशेषण हैं जिनमें विशेष्य के लिंग के कारण विकार उत्पन्न हो सकता है। लोग इन्हें दोनों तरह से (विकृत और अविकृत) प्रयोग में लाते है। जैसे—

सुंदर बालक—सुंदरी (सुंदर) बालिका। सुशील—सुशील बालक—(सुशीला) बालिका।

(ख) प्रत्यय से बने बहुत से अकारांत विशेषणों में भी विशेष्य के कारण विकार उत्पन्न होते है। जैसे—मनोहर—मनोहारिणी, भाग्यवान्—भाग्यवती, श्रीमान्—श्रीमती, बुद्धिमान—बुद्धिमती इत्यादि।

(२) विभक्ति-रहित कर्म कारक का विकारी विशेषण अगर विधेय के रूप में व्यवहृत हो तो उसके लिंग और वचन कर्म के लिंग और वचन के अनुसार होंगे पर यदि कर्म में 'को' विभक्ति रहे तो विशेषण ज्यों का त्यों रह जाता है। जैसे—उसने अपने सिर की टोपी सीधी की। उसने अपने सिर की टोपी को सीधा किया इत्यादि।

(३) यदि एक ही विकारी विशेषण के अनेक विशेष्य हों, तो वह पहले विशेष्य में लिंग, वचन और कारक के अनुसार बदलता है। जैसे—सड़क पर छोटी-छोटी लड़कियाँ और लड़के खेलते है।

(४) यदि अनेक विकारी विशेषणों का एक ही विशेष्य हो तो वे सभी विशेष्य के लिंग और वचन के अनुसार बदलते है। जैसे—चमकीले और सुहावने दाँत।

(५) समय, दूरी, परिमाण, धन, दिशा आदि का बोध करनेवाली संज्ञाओं के पहले जब संख्यावाचक विशेषण रहे और संज्ञाओं से समुदाय का बोध न हो तब वे विकृत कारकों में भी प्रायः एकवचन के रूप में आती है। जैसे—चार मील की दूरी। पाँच हजार रुपये में इत्यादि।

नोट—चार महीने में, चार महीनों में, चारों महीने में और चारों महीनों में—इन चारों वाक्यांशों के अर्थ में थोड़ा भेद है। पहले में साधारण गिनती है, दूसरे में जोर दिया गया है और तीसरे तथा चौथे में समुदाय का अर्थ है।

(६) यदि क्रिया का साधारण रूप किसी संज्ञा के आगे विधेय-विशेषण होकर आवे और उससे संप्रदान या क्रिया की पूर्ति का अर्थ प्रदर्शित हो तो उसके लिंग और वचन उसी संज्ञा के लिंग और वचन के

अनुसार होंगे जिसके साथ वह आया है: परन्तु यदि उससे उस संज्ञा के संवंधी का बोध हो तो उसका रूप ज्यों का त्यों रह जायगा। जैसे—घंटी बजानी होगी। रोटी खानी पड़ेगी। परीक्षा देनी होगी। व्यर्थ का कसम खाना छोड़ दो।

यहाँ पर 'रोटी खानी पड़ेगी' आदि वाक्यो में क्रिया संप्रदान या क्रिया की पूर्ति का अर्थ प्रदर्शित करती है परंतु 'कसम खाना' में कसम संवंध कारक के ऐसा व्यवहृत हुआ है जिसका संवंधी 'खाना' है अर्थात् 'कसम का खाना'। इसलिए पहले तीनों वाक्यों मे विधेय-विशेषण क्रिया का रूप संज्ञा के रूप के अनुसार वदल गया है और अंतिम वाक्य में ज्यों का त्यों रह गया है।

[नोट—इस छठें नियम के संवंध मे हिंदी लेखको में वहुत मतभेद हैं परंतु अधिकांश लेखक इसी नियम को मानते है।]

संबंध और संवंधी

(१) संबंध की विभक्ति में वही लिंग और वचन होंगे जो संबंधी के होंगे। जैसे—राम की गाय, मोहन का लड़का, उसके घोड़े आदि।

(२) जिस प्रकार आकारांत विशेषण में विशेष्य के अनुसार विकार उत्पन्न होता है उसी प्रकार संवंध कारक की विभक्ति में संवंधी के अनुसार विकार उत्पन्न होता है। जैसे—काली गाय; राम की गाय; अच्छे घोड़े; मोहन के घोड़े इत्यादि।

(३) यदि एक ही संबंध के कई एक संबंधी हों तो संबंध की विभक्ति में पहले संवंधी के अनुसार विकार उत्पन्न होगा। जैसे—राम की गाय, घोड़े और बकरियाँ चरती हैं।

नित्यसंबंधी शब्द

वहुत से अव्यय, थोड़े से सर्वनाम और कुछ ऐसे शब्द हैं जिनमें वरावर एक-सा संवंध रहता है। ऐसे शब्दों को नित्यसंबंधी शब्द कहते हैं। जैसे—जब-तब, इसमें 'जब' के साथ 'तब' का बराबर संबंध रहता

हैं अर्थात् जब वाक्य में 'जब' का प्रयोग किया जायगा तब वहाँ 'तब' का भी प्रयोग होगा। जैसे—जब मै वहाँ गया तब वह खा रहा था।

कुछ नित्यसंबंधी शब्द

(१) जब-तब—'तब' के स्थान पर लोग 'तो' भी लिखते हैं पर ऐसा लिखना खटकता है।

(२) यद्यपि-तथापि—'तथापि' की जगह किंतु, परंतु आदि लिखना ठीक नहीं है। 'तो-भी' या 'फिर भी' लिखा जा सकता है। जैसे—यद्यपि वहाँ हैजे की बीमारी है तथापि (तो भी) मेरा वहाँ जाना अनिवार्य है।

(३) अगर या यदि—तो। 'तो' की जगह 'तब' लिखना ठीक नहीं है। 'यदि' की जगह 'जो' लिखा जा सकता है। जैसे—यदि आज मोहन रहता तो यह बात होने ही नहीं पाती। जो मै यह जान पाता कि तुम नहीं आ सकोगे तो मै स्वयं वहाँ पहुँच जाता।

(४) जो-सो—लोग 'सो' की जगह 'वह', 'वही' आदि का ही विशेष रूप से प्रयोग करने लगे है। जैसे—जो खोजेगा सो पावेगा। जो देखेगा, वही हँसेगा इत्यादि।

(५) जहाँ-तहाँ—'तहाँ' के बदले में अब 'वहाँ' का ही प्रयोग विशेष रूप से होता है। जैसे—जहाँ छमा तहाँ आप। जहाँ क्षमा है, वहाँ ईश्वर है।

[नोट—कभी-कभी नित्यसंबंधी शब्द लुप्त भी रहते हैं। जैसे—आप आइयेगा तो देखा जायगा। इस वाक्य में 'यदि' शब्द छिपा हुआ है। उसी प्रकार से—आप आ गये तब चिंता की क्या बात ?]

५. अध्याहार

अध्याहार—कभी-कभी वाक्य में संक्षेप अथवा गौरव लाने के लिए कुछ ऐसे शब्द छोड़ दिये जाते हैं जो वाक्य का अर्थ लगाते समय सहज ही समझ में आ जाते हैं। इस प्रयोग को 'अध्याहार' कहते हैं। जैसे—हमारी सुनता कौन है ? इस वाक्य में हमारी के बाद 'बात' शब्द लुप्त है।

अध्याहार दो तरह के होते हैं—पूर्ण और अपूर्ण। पूर्ण अध्याहार में छोड़ा हुआ शब्द पहले कभी नहीं आता। जैसे—उसने मेरी एक भी नहीं सुनी। अपूर्ण अध्याहार में छोड़ा हुआ शब्द एक बार पहले आ चुकता है। जैसे-मुझे कलम की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी पेंसिल की।

पूर्ण अध्याहार का प्रयोग

(१) कहना, सुनना और देखना क्रियाओं के सामान्य वर्तमान और आसन्न भूतकाल में कभी-कभी कर्त्ता लुप्त रहता है। जैसे—कहते हैं; स्वीडेन में कभी-कभी आधीरात में सूर्य दिखाई पड़ता है। सुनते हैं, संसार में फिर लड़ाई छिड़ने वाली है। कहा भी है कि जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि। देखते हैं, अब वह नहीं आ सकेगा।

(२) विधि क्रिया में कर्त्ता अक्सर लुप्त रहता है। जैसे—पधारिए! सुनिए तो सही!

(३) जहाँ प्रसंग से बात समझ में आ जाय वहाँ कर्त्ता और संबंध कारक की आवश्यकता नहीं रह जाती है। जैसे—अकबर बड़ा ही प्रभावशाली सम्राट् था। हिन्दू मुसलमान दोनों को एक नजर से देखता था। राजधानी दिल्ली थी।

(४) संबंधवाचक, क्रिया-विशेषण और संकेतसूचक समुच्चयबोधक अव्ययों के साथ अगर होना, हो सकना, बनना, बन सकना आदि क्रियाएँ हों तो उनका उद्देश्य अक्सर लुप्त रहता है। जैसे—'जैसे बने, समझा-बुझाकर धैर्य सब दीजिए।' जहाँ तक हो सके, मुझे जल्द खबर देंगे।

(५) जानना क्रिया के संभाव्य भविष्यत्काल का कर्त्ता अगर अन्य-पुरुष हो तो वह प्रायः लुप्त रहता है। जैसे—उसके हृदय में 'न जाने' क्या-क्या भाव उठ रहे होंगे।

(६) छोटे-छोटे प्रश्नवाचक या अन्य वाक्यों में जब कर्त्ता का अनुमान क्रिया के रूप से लग जाय तो कर्त्ता को लोप कर सकते हैं। जैसे—क्या घर जाओगे? हाँ, जाना ही ठीक है।

(७) जिन सकर्मक क्रियाओं के अर्थ में व्यापकता हो उनका कर्म लुप्त रहता है। जैसे—मोहन पढ़ लेता है पर लिख नहीं सकता।

(८) विशेषण अथवा संबंधकारक के बाद बात, हाल, संगति आदि अर्थवाले विशेष्य अथवा संबंधी का लोप हो जाता है। जैसे—अगर मेरी और आपकी अच्छी निभी तो कुछ दिन चैन से कट जायँगे। जहाँ आप विद्यमान हैं फिर वहाँ की क्या कहनी?

(९) कहावतों में, निषेधवाचक विधेय में तथा उद्‌गार में 'होना' क्रिया का वर्तमानकालिक रूप प्रायः लुप्त रहता है। जैसे—मैं वहाँ जा नहीं सकता। दूर के ढोल सुहावन। महाराज की जय!

(१०) कभी-कभी जटिल वाक्य में 'कि' शब्द लुप्त रहता है। जैसे—पता नहीं, परीक्षाफल कबतक निकलेगा।

अपूर्ण अध्याहार का प्रयोग

(१) एक वाक्य में कर्त्ता का उल्लेख कर दूसरे वाक्य में उसका लोप कर सकते है। जैसे—महेंद्र इतना असावधान लड़का है कि रोज एक न एक चीज खो ही देता है।

(२) यदि एक वाक्य में विभक्ति के साथ कर्त्ता आवे और दूसरे में विभक्ति-रहित, तो पिछले कर्त्ता की आवश्यकता नहीं रहती। जैसे—गुणानंद ने पढ़ना छोड़ दिया और घर जाकर खेती करने लगे।

(३) जब अनेक कर्त्ताओं की एक ही सहायक क्रिया रहे तो उसे बार-बार नहीं लिखकर अंतिम क्रिया के साथ लिखते है। जैसे—संयम-पूर्वक रहने से मन प्रसन्न रहता, शरीर की वृद्धि होती और बीमारी का शिकार नहीं बनना पड़ता है।

(४) समता प्रदर्शित करनेवाले वाक्यों में उपमावाले वाक्यों के उद्देश्य के प्रायः सभी शब्द लोप कर दिये जाते हैं। जैसे—उसका शरीर बड़ा ही भयंकर है, मानों राक्षस।

(५) प्रश्नवाचक वाक्य के उत्तर में प्रायः वही शब्द रह जाता है जिसके विषय में प्रश्न किया जाता है। जैसे—मोहन खा-पीकर निश्चिंत हो गया। कोई देखने और सुननेवाला हो तब तो ?

अध्याहार के प्रयोग से वाक्य संक्षिप्त तो हो ही जाता है, साथ ही, भाषा का सौष्ठव भी बढ़ जाता; इसलिए अच्छे-अच्छे लेखक इसके प्रयोग पर विशेष ध्यान देते हैं।

अभ्यास

१. नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करें—

जब आप बोले तो हम नहीं सुने। जब उन्होंने रोये तो बड़ा शोर मचा। उन्होंने हँसते-हँसते लोट गये। वह बालिका अब युवक बन गया है। मैं, तुम और वह जायगा। मेले में ऐसा भगदड़ मचा कि बालक, युवा, नर, नारी सब के सब भाग गई। उसकी बात पर मोहन ने हँस दिया।

२. नीचे के शब्द-समूहों को इस तरह सजावें कि एक-एक शब्द-समूह एक-एक वाक्य बन जाय—

(१) कहते, पानी, उसे, हैं, टापू, रहे, जिसके चारों ओर।

(२) खाड़ी, गिरती, नदी, हिमालय, है, से, पहाड़, गंगा, बंगाल, निकलकर, की, में।

(३) गर्भ में, इस, महासागर. इतिहास, जाने, रूपी, न, के रत्न हैं, असंख्य, हुए, रत्न, छिपे, कितने।

३. नीचे लिखे वाक्य-समूहों में भेद बतलाइए—

(१) मैं भी वहाँ जाने को तैयार हूँ। (२) मैं वहाँ भी जाने को तैयार हूँ। (३) वहाँ जाने को भी मैं तैयार हूँ।

पंचम परिच्छेद

१. पद, वाक्यांश, खंड-वाक्य

वाक्य रचना करते समय पहले बनाये गये नियमों पर ध्यान रखते हुए इस बात की पूरी कोशिश करते रहना चाहिए कि वाक्य-रचना के नियमों को निबाहते हुए भी वाक्य मधुर और आकर्षक रहे। वाक्य को मधुर और आकर्षक बनाने के लिए पद, वाक्यांश और खंडवाक्य के प्रयोग का पूरा अभ्यास रहने की आवश्यकता है। यों तो साधारणतः वाक्य कसा हुआ और गठीला होना ही चाहिए; पर कहीं-कहीं प्रायः देखा जाता है कि अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए, वाक्य में सरलता लाने के लिए, उसे शिथिल करना भी जरूरी हो जाता है। सारांश यह है कि आवश्यकता देखकर वाक्य को बढ़ा या कस देना चाहिए। इसके लिए पद, वाक्यांश और खंडवाक्य में परस्पर परिवर्तन करना पड़ता है एवं वाक्य को कभी विस्तृत, कभी संकुचित, कभी पृथक् और कभी संयुक्त करना पड़ता है।

पद, वाक्यांश और खंडवाक्य का आपस में परिवर्तन करना, समास, कृदंत और तद्धितांत पर अवलंबित रहता है। परिवर्तन करते समय इस बात पर बराबर ध्यान रहे कि अर्थ में किसी तरह की बाधा न पड़े।

(क) पद का वाक्यांश और वाक्यांश का पद

सामासिक पद, कृदंत और तद्धितांत पद को वाक्यांश में और वाक्यांश को सामासिक पद, कृदंत और तद्धितांत पद में परिवर्तित कर सकते हैं।

पद का वाक्यांश

वैष्णव--विष्णु के उपासक।

लब्धप्रतिष्ठा--प्रतिष्ठा--प्राप्त किये हुए।

आपादमस्तक—पैर से सिर तक ।
राजनीतिज्ञ—राजनीति जाननेवाले ।
दार्शनिक—दर्शनशास्त्र जाननेवाले ।

वाक्यांश का पद

निंदा करने योग्य—निंद्य ।
विज्ञान जाननेवाले—वैज्ञानिक ।
द्रुतगति से चलनेवाला—द्रुतगामी ।

(ख) पद का खंडवाक्य और खंडवाक्य का पद ।

पद का खंडवाक्य

शैव—जो शिव का उपासक है ।
आजानुबाहु—जंघे तक जिसकी भुजाएँ फैली हैं ।
धनवान—जिसके पास धन है ।
विधवा—जिस स्त्री के पति नहीं हैं ।
दयालु—जो दया से द्रवित होता है ।
महाशय—जिसका आशय महान् है ।

खंडवाक्य का पद

जो दुःख देता है—दुःखद ।
जो विदेश का है—विदेशी ।
जिसके पास विद्या है—विद्वान् ।

(ग) वाक्यांश का खंडवाक्य और खंडवाक्य का वाक्यांश ।

वाक्यांश का खंडवाक्य

मेरे वहाँ जाते ही—जब मैं वहाँ जाता हूँ ।
उसके आने पर—जब वह आयगा या आया ।
शक्ति से परे—जो शक्ति से बाहर है ।
लक्ष्मी के लाड़िले—जो लक्ष्मी के लाड़िले है ।

खंडवाक्य का वाक्यांश

जब वर्षाऋतु समाप्त होगी – वर्षाऋतु के समाप्त हो जाने पर।
जो अभिमान करता है—अभिमान करनेवाला।
जिसे बुद्धि और बल है—बुद्धि-बलवाला।

मिश्रित उदाहरण

पद	वाक्यांश	खंडवाक्य
घमंडी	घमंड करनेवाला	जो घमंड करता है।
गणितज्ञ	गणित जाननेवाला	जो गणित जानता है।
दर्शक	देखनेवाला	जो देखता है।
प्रशंसनीय	प्रशंसा के योग्य	जो प्रशंसा के योग्य है।

२. वाक्य-संकोचन और संप्रसारण

अर्थ में बिना किसी प्रकार का भेद उत्पन्न किये अनेक पदों से बने वाक्य के भाव को थोड़े ही पदों के द्वारा प्रदर्शित करने की विधि को वाक्य-संकोचन-विधि कहते है। ठीक इसके विपरीत थोड़े-से पदो के बने वाक्य के भाव को और भी स्पष्ट करने के लिए उस अनेक पदों मे प्रकाशित करने की विधि को वाक्य-संप्रसारण विधि कहते है। वाक्य रचना करते समय यह बात सदा ध्यान में रहे कि वाक्य सरल हो, सुगमता से समझ में आ जाय और व्यर्थ पद वाक्य में व्यवहृत न हों। वाक्य को गठीला और रोचक बनाने के लिए ही वाक्य-संकोचन की आवश्यकता पड़ती है और स्पष्ट भाव दरसाने के लिए वाक्य-संप्रसारण की। इसलिए जब वाक्य में व्यर्थ के पदों का व्यवहार किया गया हो तब उन पदों को हटाकर केवल उपयुक्त पदों की स्थापना के लिए वाक्य-संकोचन-विधि का जानना आवश्यक है। इसी प्रकार किसी वाक्य के अर्थ या भाव को स्पष्ट करने के लिए उसमें आवश्यकतानुसार एक-दो पदों को बढ़ाने की विधि का भी जानना आवश्यक ही है। मगर दोनो विधियों के प्रयोग के समय बराबर

यह ध्यान में रखना चाहिए कि वाक्य के अर्थ में विभिन्नता न होने पावे अन्यथा सब गुड़ गोबर हो जायगा।

(क) वाक्य-संकोचन-विधि

यों तो अर्थ में बिन बाधा डाले किसी वाक्य के संकुचित करने के भिन्न-भिन्न तरीके काम में लिये जा सकते हैं पर यहाँ पर मुख्य दो तरीके दरसाये जाते है।

(१) वाक्य मे व्यवहृत कई समापिका क्रियाओं को असमापिक या पूर्वकालिक क्रिया मे बदलकर वाक्य संकुचित किया जा सकता हैं। जैसे—मास्टर साहब आये और फिर चले गये—मास्टर साहब आकर चले गये।

मै फुलवाड़ी गया और गुलाब के फूल तोड़े—
मैने फुलवाड़ी जाकर गुलाब के फूल तोड़े।

(२) आनुषंगिक वाक्य, वाक्यांश या पदों के बदले एक सामासिक, प्रत्ययांत या अल्पपद का प्रयोग करने से वाक्य को संकुचित किया जाता है। जैसे—

जैसा मै हूँ वैसा वह है—मेरे जैसा वह भी हैं।
जैसा काम किया वैसा फल मिला—जैसी करनी वैसा फल।
जिसे भूख लगी है उसे भोजन दो—भूखे को भोजन दो।
विष्णु भगवान् की चार भुजाएँ है—विष्णु भगवान् चतुर्भुजी है।
उसने दसों इंद्रियों को वश में कर लिया हैं—वह जितेंद्रिय हैं।
उसकी आँखे मृग की आँखों की समान है—वह मृगनयनी हैं।

(ख) वाक्य-संप्रसारण-विधि

वाक्य-संकोचन-विधि के विपरित नियमों के द्वारा ही वाक्य का संप्रसारण कर सकते हैं। यहाँ पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि वाक्य का विस्तार करते समय अनावश्यक पदों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। विशेषकर यह देखना चाहिए कि किसी एक वाक्य में दो पूर्वकालिक क्रियाओं का व्यवहार भरसक नहीं होना चाहिए। इससे वाक्य सुनने

रूखा मालूम पड़ता है। जहाँ इस प्रकार का प्रयोग हो वहाँ वाक्य को खंड-खंड कर देना ही ठीक है।

जैसे—'मोहन राम की बात सुनकर क्रोधित होकर बोला'—की जगह 'मोहन ने राम की बात सुनी और क्रोधित होकर बोला'—ही लिखना अधिक अच्छा मालूम पड़ता है। फिर एक ही वाक्य में एक ही संज्ञा का बार-बार प्रयोग भी अच्छा नहीं जँचता है, इसलिए एक संज्ञा को छोड़कर शेष के लिए सर्वनामों का प्रयोग करना चाहिए। जैसे—'ज्योंही मोहन ने मोहन की पुस्तक आलमारी से निकालकर पढ़ना शुरू किया त्योंही मोहन को किसी ने बुला लिया'—इस वाक्य में एक 'मोहन' को छोड़ कर शेष 'मोहन' के बदले सर्वनामों का प्रयोग करने से वाक्य में लालित्य आ जायगा। अर्थात् ज्यों ही मोहन ने अपनी आलमारी से पुस्तक निकाल कर पढ़ना शुरू किया त्यों ही किसी ने उसे बुला लिया। वाक्य-संप्रसारण के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है।—

(१) चैतन्य वैष्णव थे—चैतन्य विष्णु के उपासक थे।

(२) पढ़ना लाभप्रद है—पढ़ने से लाभ होता है।

(३) गरीब को धन दो—जो गरीब है उसे धन दो।

(४) वहाँ का दृश्य बड़ा हृदय-विदारक था—वहाँ का दृश्य हृदय को विदीर्ण करने वाला था।

३. वाक्यों का संयोजन और विभाजन

वाक्यों का संयोजन करते समय पहले बताये हुए वाक्य-संकोचन-विधि पर ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि दोनों की विधियाँ करीब-करीब समान ही है। वाक्य-संकोचन और वाक्य-संयोजन में केवल इतना ही भेद है कि वाक्य-संकोचन में एक विस्तृत वाक्य को संकुचित करना होता है और वाक्य-संयोजन में वाक्यसमूह को मिलाना होता है।

नियम—अर्थ में बिना किसी प्रकार की विभिन्नता उत्पन्न किये ही समापिका क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया में बदल देने से, वाक्यों के

उभयनिष्ठ या मिलते-जुलते शब्दो को एक ही वार प्रयुक्त कर देने से, अव्यय के प्रयोग से, वाक्यों के शब्दों को आवश्यकता अनुसार उलट-फेर करने से, वाक्यों को पद, वाक्यांश या आनुषंगिक वाक्य वना देने से वाक्यसमूह को मिलाया जाता है। उदाहरण—

(क) समापिका क्रिया को असमापिका बनाने से तथा मिलते-जुलते शब्दों को एक ही वार प्रयुक्त करने से—

वाक्य-समूह—राम ने रावण को मारा। राम ने सीता को रावण के वंधन से मुक्त किया।

संयोजित वाक्य—राम ने रावण को मारकर सीता को उसके वंधन से मुक्त किया।

वा० स०—सम्राट् अकवर ने उनचास वर्ष तक राज्य किया। सम्राट् अकवर ने प्रजा का पालन भलीभाँति किया।

संयोजित वा०—सम्राट् अकवर ने उनचास वर्ष तक राज्य कर प्रजा का पालन भलीभाँति किया।

(ख) अव्यय के प्रयोग से—

वा० स०—मैं स्टेशन पर गया। गाड़ी आ गयी।

सं० वा०—ज्योंही मैं स्टेशन पर गया, गाड़ी आ गयी।

वा० स०—वह धनी है। वह अभिमानी नहीं है। उसका स्वभाव वड़ा सरल है।

सं० वा०—यद्यपि वह धनी है तथापि अभिमानी नहीं वरन् सरल स्वभाव का है।

(ग) उलट-फेर से—वाक्यों को पद, वाक्यांश आदि वनाकर—

वाक्य-समूह—सम्राट् अशोक मगध के राजा थे। उनकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। पाटलिपुत्र गंगा और सोन के संगम पर वसा हुआ था। अव भी उस प्राचीन नगरी का भग्नावशेष कुम्हरार नामक स्थान में पाया जाता है। कुम्हरार गुलजारवाग स्टेशन के निकट है।

सं० वा०—गंगा और सोन के संगम पर बसी हुई पाटलिपुत्र नगरी मगध देश के राजा सम्राट् अशोक की राजधानी थी जिसका भग्नावशेष गुलजारबाग स्टेशन के निकट कुम्हरार नामक स्थान में पाया जाता है।

वा० स०—कामता इंगलैंड चले गये। वे कैसरे-हिंद नामक जहाज पर गये है। वहाँ कदाचित् समाजशास्त्र पढ़ेगे।

सं० वा०—कामता कदाचित् समाजशास्त्र पढ़ने के लिए कैसरे-हिंद जहाज पर इंगलैंड गये हैं।

वाक्य-विभाजन

वाक्य-संयोजन के विपरीत नियमों के अनुसार मिलित वाक्य को अनेक वाक्यो में बदला जा सकता है—

मिलित वाक्य	विभक्त वाक्य
आकाश में बादल के छाते ही मोर उन्मत्त होकर नाच उठे।	आकाश में बादल छा गया। मोर उन्मत्त होकर नाच उठे।
वधिक की वीणा का शब्द सुनते ही मृग सुध-बुध खोकर चारों ओर उस स्वर-लहरी की खोज में दौड़ने लगा।	मृग ने वधिक की वीणा का स्वर सुना। सुध-बुध खो दिया। चारों ओर उसी स्वरलहरी की खोज में दौड़ने लगा।
रात हो जाने पर आकाश में तारे टिमटिमाने लगे।	रात हुई। आकाश में तारे टिमटिमाने लगे।
ज्योंही वह बाग में जाकर चुपचाप फूल तोड़ने लगा त्योंही माली ने उसे देख लिया।	वह बाग में गया। जाकर चुपचाप फूल तोड़ने लगा। माली ने उसे देख लिया।

४. वाक्यों का परिवर्तन

वाक्य स्वरूप की दृष्टि से तीन प्रकार के होते है—सरल, जटिल, और यौगिक। इन तीनों तरह के वाक्य एक दूसरे मे परिवर्तित हो सकते है। वाक्यों को परिवर्तन करने में वाक्य-संयोजन और वाक्य-विभाजन

की पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है। इसलिए पूर्वोक्त वाक्य-संयोजन और वाक्य-विभाजन के अभ्यास को सदा ख्याल में रखना चाहिए। वाक्यों का परिवर्तन करने में अभ्यस्त हो जाने से वाक्य-रचना में प्रौढ़ता आती है।

(क) सरल से जटिल

सरल वाक्य में प्रयुक्त विधेय-पूरक, विधेय-विशेषण, विधेय के विस्तार तथा उद्देश्य-वर्द्धक विशेषण के रूप में व्यवहृत पद वा पद-समूह को वाक्य के रूप में बदलकर जो–वह, यदि–तो, जब–तब आदि अव्ययों द्वारा मिला देने से वह जटिल या मिश्र वाक्य बन जाता है। पद-विन्यास के नियमानुसार कभी-कभी नित्यसंबंधी शब्द लुप्त भी रहा करते हैं।

सरल—फ्रांस का राजा नेपोलियन बड़ा वीर था।
जटिल—नेपोलियन, जो फ्रांस का राजा था, बड़ा वीर था।
सरल—गर्मी में मैं प्रतिदिन गंगा-स्नान करता हूँ।
जटिल—जब गर्मी आती है तब मैं प्रतिदिन गंगा-स्नान करता हूँ।
सरल—तुम्हारा दाँव-पेंच सब मैं जानता हूँ।
जटिल—जो तुम्हारे दाँव-पेंच है, सब को मै जानता हूँ।
सरल—दयालु पुरुष दूसरों के दुःख से दुःखी होते हैं।
जटिल—जो पुरुष दयालु होते है वे दूसरों के दुःख से दुःखी होते है।

(ख) जटिल से सरल

जटिल वाक्य में आये हुए आनुषंगिक या सहायक वाक्य को वाक्यांश या पदसमूह के रूप में परिवर्तित कर नित्यसंबंधी या अन्य योजक शब्दों को हटा देने से वह सरल वाक्य होता है। ऐसा करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि काल और अर्थ में बाधा न पड़े।

जटिल—जो केवल दैव का भरोसा करता है वह कायर है।
सरल—केवल दैव पर भरोसा करनेवाला कायर है।

जटिल—जब तक मातृका बी० ए० पास नहीं कर लेगी तब तक 'ब्याह नहीं करेगी।

सरल—मातृका बिना बी० ए० पास किये ब्याह नहीं करेगी।

जटिल—जिन्हें विद्या है वे सब जगह आदर पाते है।

सरल—विद्वान् सब जगह आदर पाते हैं।

जटिल—उमर, जो अरब का तीसरा खलीफा था, बड़ा सरल और दयालु था।

सरल—अरब का तीसरा खलीफा उमर बड़ा सरल और दयालु था।

जटिल—अगर आप चाहते है कि सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें तो विद्याध्ययन कीजिए।

सरल—सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने की इच्छा से विद्याध्ययन कीजिए।

जटिल— जो मर गया हैं उसे मारकर क्या बहादुरी दिखाते हो ?

सरल—मरे को मारकर क्या बहादुरी दिखाते हो ?

(ग) सरल से यौगिक

सरल वाक्य के किसी वाक्यांश को एक सरल वाक्यमें अथवा असमापिका या पूर्वकालिक क्रिया को समापिका क्रिया में बदलकर तथा **और, एवं, किंतु, परंतु, इसलिए** आदि योजकों के प्रयुक्त कर यौगिक वाक्य बनाया जाता है।

सरल— वह भूख से छटपटा रहा है।

यौगिक—वह भूखा है, इसलिए छटपटा रहा है।

सरल— सुशील होने के कारण मोहन को सभी प्यार करते हैं।

यौगिक—मोहन सुशील हैं, इसलिए उसे सभी प्यार करते है।

सरल—मैं खाकर सो रहा।

यौगिक—मैने खाया और सो रहा।

सरल—आवश्यकता पड़ने पर ही मै तुम्हारे पास आया हूँ।

यौगिक—मुझे आवश्यकता पड़ी है, इसी हेतु मै तुम्हारे पास आया हूँ।

(घ) यौगिक से सरल

यौगिक वाक्य के किसी स्वतंत्र वाक्य को वाक्यांश में अथवा किसी समापिका क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया में परिवर्तित कर उसे सरल वाक्य में बदला जाता है। यौगिक वाक्य के अव्यय या योजक पद को सरल वाक्य में लुप्त कर दिया जाता है।

यौगिक—उसने मुझे दूर ही से देख लिया और चुपचाप गायब हो गया।

सरल—वह मुझे दूर ही से देखकर चुपचाप गायब हो गया।

यौगिक—वह गंगा-स्नान कर आया और रामायण का पाठ करने लगा।

सरल—गंगा-स्नान कर आने पर वह रामायण का पाठ करने लगा।

यौगिक—संध्या हुई और तारे आकाश में टिमटिमाने लगे।

सरल—संध्या होने पर तारे आकाश में टिमटिमाने लगे।

यौगिक—वह मन लगाकर नही पढ़ता था, इसलिए फेल हो गया।

सरल—मन लगाकर न पढ़ने के कारण वह फेल हो गया।

(ङ) जटिल से यौगिक

जटिल वाक्य के अंगवाक्य (आनुषंगिक) वाक्य को एक स्वतंत्र वाक्य वना देने और उसके नित्य-संबंधी दोनों शब्दों को हटा कर उनके बदले तो, और. किंतु, अन्यथा आदि संयोजक, विभाजक अव्ययों का प्रयोग करने से यौगिक वाक्य होता है।

जटिल—अगर भला चाहते हो तो इस काम में हाथ मत डालो।

यौगिक—तुम अपना भला चाहते हो इसलिए इस काम में हाथ मत डालो।

सरल—राम जो कुछ कहता है वह कर दिखाता है।

यौगिक—राम कहता है और कर दिखाता है।

(च) यौगिक से जटिल

यौगिक वाक्य में स्वतन्त्र वाक्यों में से एक को छोड़कर शेष को आनुषंगिक वाक्य बना देने से जटिल वाक्य बन जाता है। ऐसी दशा में यौगिक वाक्य में व्यवहृत संयोजक या विभाजक अव्ययों को नित्य-संबंधी अव्ययों में बदल देना पड़ता है।

यौगिक--वह पढ़ा-लिखा तो उतना नहीं है पर उसे दुनियाँ की हवा लग चुकी है।

जटिल—यद्यपि वह उतना पढ़ा-लिखा नहीं है तथापि उसे दुनिया की हवा लग चुकी है

यौगिक—मन लगाकर पढ़ो, अवश्य पास करोगे।

जटिल—अगर मन लगाकर पढ़ोगे तो अवश्य पास करोगे।

यौगिक—चंद्रोदय हुआ और सारा संसार प्रकाशमय हो गया।

जटिल—ज्यों ही चंद्रोदय हुआ, सारा संसार प्रकाशमय हो गया।

यौगिक—मन तो मलिन है, अतः गंगास्नान करने से क्या होगा?

जटिल– अगर मन मलिन है तो गंगास्नान करने से क्या होगा?

५. वाच्य-परिवर्तन

पिछले किसी प्रकरण में बताया जा चुका है कि वाच्य के अनुसार वाक्य तीन तरह के होते है—कर्तृवाच्य, कर्म-वाच्य और भाववाच्य।

सकर्मक धातु से बने हुए कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य और अकर्मक धातु से बने हुए कर्तृवाच्य से भाववाच्य बनाये जाते है। फिर कर्म-वाच्य और भाववाच्य को कर्तृवाच्य में रूपान्तर कर सकते है।

कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य

सकर्मक कर्तृवाच्य मे कर्त्ता को करण के रूप में बदलकर क्रिया के मुख्य धातु को सामान्य भूत के रूप मे लाकर उसके आगे 'जाना' धातु के

प को कर्म के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार, उसी काल में, जोड़ने से कर्मवाच्य होता है। जैसे—

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
राम ने पुस्तक पढी।	राम से पुस्तक पढ़ी गयी।
मोहन ने रोटी खायी।	मोहन से रोटी खाई गयी।
सम्राट् अशोक ने चालीस वर्ष तक राज्य किया।	सम्राट् अशोक से चालीस वर्ष तक राज्य किया गया।
उसने मिठाई चुरायी।	उससे मिठाई चुराई गयी।
मैंने उसे पकड़ा।	वह मुझसे पकड़ा गया।

कर्मवाच्य से कर्तृवाच्य

कर्मवाच्य में करण रूप में व्यवहृत कर्त्ता की 'से' विभक्ति को हटाकर कर्त्ता के ही अनुसार क्रिया को वदल देने से कर्तृवाच्य हो जाता है। जैसे—राम से रावण मारा गया—राम ने रावण को मारा। चौकीदार से चोर पकड़ा गया—चौकीदार ने चोर पकड़ा।

कर्तृवाच्य से भाववाच्य

कर्तृवाच्य से भाववाच्य बनाने मे भी कर्त्ता को करण में रूपांतर कर क्रिया के मुख्य धातु के सामान्य भूत रूप के आगे 'जाना' धातु, काल के अनुसार, एकवचन और पुंलिंग में जोड़ दिया जाता है। केवल 'जाना' धातु को सामान्य भूत में रूपांतर न कर उसका 'जाया' कर देते हैं। लेकिन प्रायः निषेधार्थक वाक्य में अशक्यता की दशा में ही क्रिया भाववाच्य के रूप में प्रयुक्त होती है। जैसे—मोहन से नहीं चला जाता।

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
मै जाता हूँ।	मुझसे जाया जाता है।
मै पटने में रहता हूँ।	मुझसे पटने में रहा जाता है।
मोहन वाग में टहलता है।	मोहन से वाग में टहला जाता है।
तेजनारायण गंगा नहाया।	तेजनारायण से गंगा नहाया गया।

भाववाच्य से कर्तृवाच्य

भाववाच्य के करणरूप में आये कर्त्ता को स्वाभाविक रूप में लाकर उसी के अनुसार क्रिया को बदल देने से कर्तृवाच्य हो जाता है। जैसे—मोहन से सोया गया—मोहन सोया। उससे शांत होकर बैठा नहीं जाता—वह शांत होकर नहीं बैठता।

६. वाक्यों का रूपांतर

जिस प्रकार एक ही शब्द के अर्थबोधक भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द होते हैं उसी प्रकार एक ही वाक्य के अर्थबोधक भी कई वाक्य हो सकते हैं। अर्थात् वाक्य के रूप में परिवर्तन होने पर जब अर्थ में भेद न पड़े तब वे सभी भिन्न-भिन्न रूप के वाक्य 'एकार्थबोधक' वाक्य कहलाते हैं। वाक्यरचना के अभ्यास के लिए एक ही अर्थ का बोध करनेवाले अनेक रूपों के वाक्यों को स्मरण रखना आवश्यक है। इससे भाषा में उपयुक्त और ललित वाक्यों को इच्छानुसार चुनकर व्यवहार करने से बड़ी सहायता मिलती है।

विशेषणों, मुहाविरों अलंकारों आदि के द्वारा वाक्य को रूपांतरित किया जाता है। जैसे—

वह सोया हुआ है

वह निद्रादेवी की गोद में पड़ा हुआ है। वह विश्राम कर रहा है। वह नींद में है। वह सुप्तावस्था में है। वह खर्राटे ले रहा है। उसे नींद ने धर दबाया है। वह निद्रा के वशीभूत हो गया है।

वह यहाँ से भाग गया

वह यहाँ से गायब हो गया। वह यहाँ से नौ-दो ग्यारह हो गया। वह यहाँ से चंपत हो गया। वह यहाँ से रफूचक्कर हो गया। वह यहाँ से सिर पर लात रखकर भागा।

वह मर गया

उसने पंचत्व प्राप्त किया। उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसने सदा

के लिए महानिद्रा की गोद में विश्राम ले लिया। उसने अंतिम सांस ले ली। वह यहाँ से सदा के लिए चल बसा। उसने संसार से अंतिम विदाई ले ली। वह भवबंधन से छूट गया। उसकी प्राणवायु निकल गयी। उसका देहांत हो गया। वह कालकवलित हुआ। उसकी मृत्यु हो गई। उसे मौत ने धर दबाया। उसने अपनी मानव-लीला संवरण की। उसका जीवन-प्रदीप बुझ गया। उसके जीवन-रूपी मसिपात्र की स्याही का अंत हो गया। उसने इस असार संसार को छोड़ दिया। उसे गंगा लाभ हुआ। उसके जीवन का अंत हो गया। वह परलोक सिधारा। वह स्वर्ग-लोक को सिधारा। वह स्वर्ग सिधारा। उसका स्वर्गवास हो गया। वह इस जीवन से हाथ धो बैठा। वह अमर धाम को सिधारा। वह अन्तकाल कर गया। वह मृत्यु के मुँह में विलीन हो गया। उसे काल धर दबाया। वह कजा कर गया इत्यादि।

वर्षा होने लगी

पानी पड़ने लगा। वृष्टि होने लगी। बूँदें टपकने लगीं। मेघ बरसने लगा इत्यादि।

सूर्य्योदय हुआ

भगवान् अंशुमाली उदयाचल पर्वत पर शोभित हुए। भगवान् भास्कर भासमान हुए। कमल-नायक की प्रखर किरणें उदयाचल पर भासित हुईं। अरुणोदय हुआ। अंशुमालि का शुभागमन हुआ इत्यादि।

अभ्यास

१ नीचे लिखे पदों को वाक्यांशों और खंडवाक्यों में पृथक्-पृथक् परिवर्तित कर बतलाइए—

अलौकिक, अस्वाभाविक, अजातशत्रु, नास्तिक और आपादमस्तक।

२. नीचे लिखे वाक्यों को संकुचित कर लिखें—

पृथिवी पर मिलने वाला सुख कुछ ही काल तक रहता है। दसो दिशाओं को जीतनेवाला रावण शिव का उपासक था और विष्णु के उपासकों का संहार करनेवाला था। जिस जमीन पर बीज उगता ही

नहीं, उसमें बीज बोने का कोई अर्थ नहीं है। जहाँ बालुओं की राशि फैली रहती है वहाँ ऊँट बड़ा लाभ पहुँचाने वाला होता है। यह संसार सदा बदलता रहता है।

३. नीचे लिखे वाक्य-समूहों को पृथक्-पृथक् संकलित कर एक-एक वाक्य बनावें—

(क) सूर्योदय हुआ। सरोवर में कमल खिल गये।

(ख) सूर्यास्त हुआ। सर्वत्र अंधकार छा गया।

(ग) उपेंद्र बी० ए० पास हैं। स्थानीय स्कूल के शिक्षक हैं। हिंदी पढ़ाते हैं। आजकल घर गये हैं।

(घ) वह गरीब है। वह सुखी है। वह संतोषी है।

(ङ) उनके चार लड़के हैं। चारों में से किसी का व्याह नहीं हुआ है।

४. नीचे लिखे जटिल वाक्यों को सरल वाक्यों में बदलें—

(क) जो बालक स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं देते वे सदा रोगग्रस्त रहते हैं। (ख) मैंने उसे जैसा कहा वैसा ही उसने किया। (२) जब किसी पर विपद आ जाय तब उसे धीरज धरना चाहिए।

५. नीचे लिखे जटिल वाक्यों को संयुक्त वाक्यों में बदलिए—

१—जो पुस्तक मैंने खरीदी वह लाभप्रद है। २—सभी जानते हैं कि मोहन बड़ा धूर्त लड़का है। ३—मैंने जो पेड़ लगाये थे वे अब फलने लगे।

६. नीचे लिखे संयुक्त वाक्यों के जटिल वाक्य बनावें—

१—वह बड़ा अभिमानी है इसलिए किसी से बोलना अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझता है। २—वहाँ वह आया और मुझे दुःख देना शुरू कर दिया। ३—वह बहुत दुर्बल है; इसलिए वह एकाध मील भी पैदल नहीं चल सकता।

७. नीचे लिखे वाक्यों के वाच्य परिवर्तन करें—

उससे आम खाया गया था। तुमसे घड़ी भर भी बैठा नहीं जाता। नक्कू ने चोरी की थी। स्त्री कपड़ा सीती है। उससे आम नहीं खाया गया।

८. नीचे के संयुक्त वाक्यों को सरल वाक्यों में दिखलाइए—

१—मेरी बात नहीं मानते हो, इसलिए तुम्हारा कोई काम नहीं सुधारता है। २—गंगा हिमालय पहाड़ से निकलती है और बंगाल की खाड़ी में गिरती है। ३—वह पढने में बहुत तेज है, इसलिए सभी शिक्षक उसे बहुत मानते हैं।

९. नीचे के सरल वाक्यों को पृथक्-पृथक् यौगिक और जटिल वाक्यों में दिखलाइए—

१—उद्योगी-पुरुष सफल-मनोरथ होते हैं। २—वह मेरी पुस्तक लेकर चुपचाप चल दिया ३—प्रातः काल होते ही लोग अपनी-अपनी धुन में लग गये। ४—नटखट लड़के प्रायः पढने में तेज होते हैं। ५—यत्नकरने पर ही तुम्हें सफलता मिलेगी।

१० नीचे लिखे वाक्यों को एक ही अर्थ में अनेक प्रकार के वाक्यों में बदलिए—

चंद्रोदय हुआ। भोर हुआ। आकाश में बादल घिर आये।

षष्ठ परिच्छेद

१. रोजमर्रा (दैनिक बोल-चाल की रीति)

जिन लोगों की मातृभाषा हिंदी है वे ही दैनिक बोल-चाल में वाक्य रचना कर सकते है। इस प्रकार की रचना के ढंग को रोजमर्रा कहते है। बोलने अथवा लिखने में रोजमर्रे का विचार आवश्यक समझा जाता है। इसका व्यवहार करने से भाषा में सरलता आती है। परंतु इसके प्रयोग का कोई खास नियम नहीं है। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लेखको के लेखों को ध्यान-पूर्वक पढ़कर उनमे व्यवहृत रोजमर्रे के शब्दों के प्रयोग का ढंग मालूम किया जा सकता है। बहुत से लोग नये-नये रोजमर्रे के शब्दों को गढ़कर उन्हें वाक्य में व्यवहार करने की अनधिकार चेष्टा करते हैं। ऐसे लोगों को यह ख्याल रखना चाहिए कि रोजमर्रे के शब्द गढ़े नहीं जाते। बोल-चाल में रोजमर्रे के जो शब्द जिस ढंग से प्रयुक्त होते आ रहे है वे उसी ढंग से प्रयुक्त होंगे। उलट-फेर करने से वाक्य की रचनाशैली भद्दी हो जायगी। यहाँ पर रोजमर्रे के कुछ शब्द और उनके प्रोयग दिये जाते है—

सुवह-शाम—मैं 'सुवह-शाम' दोनों वक्त टहला करता हूँ। यहाँ पर 'सुवह-शाम' रोजमर्रा के शब्द है। इसके बदले 'सुवह-संध्या' या 'भोर-शाम' आदि लिखना उचित नहीं है।

हर रोज—वह 'हर-रोज' यहाँ आया करता है। 'हर-रोज' जगह 'हर दिन' नहीं होगा। हाँ, दिन के पहले 'प्रति' लिखा जाता है। जैसे—'प्रतिदिन'।

रोज-रोज—तुम्हारी 'रोज-रोज' की यह हरकतें पसंद नहीं। 'रोज-रोज' की जगह 'दिन-दिन' नही होता।

बातचीत; बहस-मुबाहसे, कोस-कोस पर, पाँच-पाँच दिन में, दो-चार दिन में, सात-आठ कोस पर, दिन-प्रति-दिन, आये दिन आदि शब्द रोजमर्रे के शब्द है।

सात-आठ या आठ-सात, पाँच-सात, दो-चार- एक-आध, आठ-छः आदि रोजमर्रे के शब्द है। इन शब्दों की जगह आठ-नौ-छ, सात-नौ, चार-दो, आध-एक, चार-सात आदि शब्द प्रयुक्त नहीं हो सकते क्योंकि ये रोजमर्रे के शब्द नहीं है।

यहाँ पर यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि वाक्यों में एक ही ढंग के शब्दों या पदों का व्यवहार होना चाहिए। अगर साधारण भाषा के शब्दों का प्रयोग करने की इच्छा हो तो आदि से अंत तक उसी ढंग के शब्दों का ही व्यवहार करना उचित हैं और अगर बड़े-बड़े लच्छेदार पदों का प्रयोग करना हो तो अर्थ से इति तक उसी ढंग के पदों का व्यवहार होना चाहिए। दो ढंग की भाषा की मिलावट अखरने लगती हैं। जैसे—'मैने उसका हस्त पकड़ा' की जगह 'मैने उसका हाथ पकड़ा' लिखना ही ठीक है। 'आवश्यकता' रफ़ा नहीं बल्कि की पूरी की जाती हैं। हाँ, 'जरूरत' 'रफा' की जाती हैं इत्यादि।

२. वाग्धारा या मुहाविरे का प्रयोग

'मुहाविरा' को कोई-कोई 'मुहावरा' भी लिखते हैं।

परिभाषा—ऐसा पद या वाक्यांश जो अपना सामान्य अर्थ छोड़कर कुछ और ही विलक्षण अर्थ जतावे उसे वाग्धारा या मुहाविरा कहते हैं। मुहाविरे का प्रयोग करने से वाक्य की रौनक बढ़ जाती है और वह वजनदार भी हो जाता है। जहाँ तक हो सके, वाक्य में मुहाविरे का प्रयोग करना ही उचित है। हाँ, जब तक इसके प्रयोग का ढंग न मालूम हो तब तक इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए; क्योंकि इसके बेढंगे प्रयोग से वाक्य का अर्थ ही बदल जाता है। कभी-कभी तो अर्थ का अनर्थ भी हो जाने की संभावना रहती है, इसलिए मुहाविरे के अर्थ को अच्छी तरह समझकर ही उसका प्रयोग करना युक्तिसंगत होता है।

प्रायः शरीर के अधिकांश अंगों के आगे भिन्न-भिन्न क्रियाओं को लगाने से भिन्न-भिन्न अर्थ मुहावरेदार शब्द बन जाते हैं।

सिर का मुहाविरा

मुहाविरा	अर्थ	प्रयोग
सिर खुजलाना	टालमटोल करना	सिर खुजलाने से काम नहीं चलेगा।
सिर पकड़ना	निरुपाय होना	वह लाचारीवश सिर पकड़कर बैठ रहा।
सिर पड़ना	नाम लगना	कुल दोष मेरे ही सिर पड़ा।
सिर चिंराना	हठात् कुछ ले लेना	किसी पर सिर चिराना ठीक नहीं।
सिर काटना सिर उतारना	} मारना	सिर काटना सहज नहीं है। अधिक बोलोगे तो सिर उतार लूँगा।
सिर मूड़ना	माथा मूड़ना, ठगना	आज किसका सिर मूड़ा जाय।
सिर लेना	भार लेना	इसके पढ़ाने की जिम्मेवारी आप अपने सिर ले लें तो बड़ी कृपा हो।
सिर हिलाना	अस्वीकार करना	आखिर उसने सिर हिला ही दिया।
सिर देना	बलिदान होना	धर्म के लिए हकीकत ने अपना सिर दे दिया।
सिर पटकना	{ सौप देना झख मारना	उसने सब काम मेरे सिर पटक दिया। वह सिर पटकते रह गया।
सिर मढ़ना	सौप देना	उसने सब काम मेरे सिर मढ़ दिया।
सिर धुनना	लाचारी के अर्थ में	'सिर धुनि-धुनि पछिताहिं'।
सिर चढ़ाना	आदत बिगाड़ना	तुम्हीं ने इस लड़के को सिर चढ़ाकर बिगाड़ दिया है।

मुहाविरा	अर्थ	प्रयोग
सिर पार उतरना	बहाने के अर्थ में	मोहन मेरे सिर पार उतर गया।
सिर ठोकना	पीटना	चोरों ने उसका सिर ठोक दिया।
माथा ठनकना	ताड़ जाना	सुनते ही उसका माथा ठनक गया।
माथा खाना	तंग करना	ओह! तुम मेरा माथा खा गये।
सिर-माथे	स्वीकृत के अर्थ में	आप की आज्ञा सिर-माथे।

केश

केश पकना	बूढ़ा होना	अब तो उसके केश भी पक चले।
केश करना	अंत्येष्टि क्रिया के अर्थ में	उसका केश कर दिया गया। (ग्रामीण प्रयोग)
केश (बाल) फाड़ना	माँग सँवारना	आजकल के लड़के केश (बाल) फाड़ने में ही मस्त रहते है।

बाल

बाल जमाना (हथेली पर)	असंभव के अर्थ में	अगर यह काम तुम कर लो तो मैं हथेली पर बाल जमा दूँ।
बाल-बाल बचना	निरापद होना	वह आज बाल-बाल बच गया।
बाल बाँका करना	बिगाड़ने के अर्थ में	'बाल न बाँका करि सकै'।

आँख

आँख मारना आँख मटकाना	इशारा करना	मोहन उसकी ओर आँख मारता है। वाह! बंदर किस खूबी से आँख मटका रहा है।
आँख मूँदना	विचार के अर्थ में, अवहेलना करना, मृत्यु के अर्थ में	वह आँख मूँद कर विचार में तल्लीन हो गया। उसने मेरी ओर से आँखें मूँद लीं। उसने सदा के लिए आँखें मूँद लीं।

मुहाविरा	अर्थ	प्रयोग
आँख खुलना	समझ आना	कलकत्ते जाने से उसकी आँखें खुल गयीं।
आँख दिखाना	डराना	तुम किसे आँख दिखा रहे हो?
आँख लगना	सोना, प्रेम होना, प्रतीक्षा करना	आधी रात को मेरी आँख लग गयी। शकुंतला की आँखें दुष्यंत से लग गयी थीं। बहुत दिनों से आँखें लगी हुई थीं; आज मुराद पूरी हुई।
चार आँखें होना	सामने होना	जब आँखें चार होती है, मुरव्वत आ ही जाती है।
आँख बदलना	रंगत बदलना	मैं देखता हूँ कि उसकी आँखें बदल गयी है।
आँखों में चर्बी छा जाना	घमंड करना	धन के मद से आँखों में चर्बी छा गयी है।
आँख नीली-पीली करना	क्रोध में आना	उसने आँखे नीली-पीली कर कहा।
आँख उठाकर देखना	कृपा-दृष्टि करना	एक बार भी तो मेरी ओर आँख उठाकर देखिए, बस मैं तो निहाल हो जाऊँगा।
आँख से खून उतरना	अत्यधिक क्रोध के अर्थ में	क्रोध के मारे उसकी आँख से खून उतर आया।
आँखें फेरना	रंग बदलना	कैसी आँखें फेर लीं, मतलब निकल जाने के बाद।
आँख की पुतली होना	प्यारी चीज़	कृष्ण यशोदा की आँख की पुतली के समान थे।

मुहाविरा	अर्थ	प्रयोग
आँखें ठंढी करना / आँखें जुड़ाना	सुख प्राप्त करना	बहुत दिनों के बाद ब्रह्मदेव ने अपने पुत्र को देख कर अपनी आँखें ठंढी कीं या आँखें जुड़ायीं।
आँख लाल करना	क्रोध करना	आप व्यर्थ ही आँखें लाल कर रहे हैं।
आँख बचाना	चुपके से	वह मेरी आँख बचाकर भाग गया।
आँखें लड़ाना	प्रणय-लीला करना	देखो! वे दोनों किस प्रकार आँखें लड़ा रहे हैं।
आँख लड़ना	प्रेम होना	उन दोनों की आँखें लड़ गयीं।
आँख का तारा	प्रिय वस्तु	मेरी आँखों के तारे हो (सनेही)।
आँख में धूल डालना	ठगना	उसने बड़ी चालाकी से मेरी आँखों में धूल डालकर अपना काम बना लिया।
आँखें भर आना	(दुःख में)	शुक भर-भर आँखें भौन को देखता है। (प्रि० प्र०)
फूटी आँख	नहीं अच्छा लगने पर	वह मुझे फूटी आँखे नहीं सुहाता है।
आँख पर बिठाना	अधिक प्रेम करना	मैने कृष्णदेव को आँख पर बिठा रखा था।
आँख गड़ाना	ताक में रहना	मेरी घड़ी पर वह आँख गड़ाये हुए है।
आँख आना	आँख में रोग होना	मेरी आँख आ रही है।
आँखें बिछाना	गर्म स्वागत के लिए	आँखें बिछी हुई हैं पथ पर प्यारे जल्दी आओ (साधक)
आँख की ओट होना	ओझल होना	आँख की ओट होते ही रामेश्वर मुझे भूल गया।

मुहाविरा	अर्थ	प्रयोग
आँखे थकना	(आशा में)	नाथ, बाट जोहते-जोहते आखें थक गई पर आप नहीं आये।
आँसू पोंछना	सांत्वना देना	कोई आँसू पोंछनेवाला नहीं रहा।

नाक

नाक कटना	इज्जत चली जाना	हाय ! मेरी नाक कट गयी !
नाक टेढ़ी करना	चिढ़ना	वाह साहब, नाक टेढ़ी कर क्यों बोलने लगे।
नाकोंदम करना	तंग करना	ओह ! तुमने तो नाकों दम कर दिया।
नाक का बाल होना	प्रिय वस्तु	सोहन तो उसकी नाक का बाल हो रहा है।
नाक रखना	लाज बचाना	भाई, अब मेरी नाक रख लो !

कान

मुहाविरा	अर्थ	प्रयोग
कान देना	ध्यान देना	कान देकर सुनो।
कान फटना	(ऊँची आवाज सुनकर)	उसकी बोली सुनते-सुनते मेरे कान फट गये।
कान में रखना	याद रखना	गुरु के उपदेश को कान में रख लो।

दाँत

दाँत खट्टे करना	पराजित करना	शिवाजी ने शत्रुओं के दाँत खट्टे कर दिये।
दाँत पीसना	क्रोध करना	वह दाँत पीस कर रह गया।

मुहाविरा	अर्थ	प्रयोग
दाँत दिखाना / दाँत निपोड़ना	लाचारी दिखाना	करूँ तो क्या करूँ, उसने तो अपने दाँत दिखा दिये। वाह! कैसे दाँत निपोड़ दिये।
दाँत तोड़ना	चोट पहुँचाना	दाँत तोड़कर मुँह में घुसेड़ दूँगा।
दाँतों में उँगली देना	चकित होना	यह तमाशा देख दाँतों में उँगली देनी पड़ी।
दाँत कटी रोटी	अत्यधिक प्रेम	उन दोनों में दाँत कटी रोटी थी।

मुँह

मुहाविरा	अर्थ	प्रयोग
मुँह फिरना	स्वाद उतरना	मीठा खाते-खाते मुँह फिर गया।
	घमंड होना	आजकल उसका मुँह फिरा रहता है।
मुँहकी खाना	कड़ा उत्तर पाना	बच्चू को मुँहकी खानी ही पड़ी।
मुँह चलाना	बकबक करना	अधिक मुँह चलाना ठीक नहीं है।
मुँह फटना	लोभी होना	उसका मुँह फटा हुआ है।
मुँहफट्ट होना	बकवादी होना	यह तो बड़ा मुँहफट्ट हो गया।
मुँह ही मुँह देना	जवाब पर जवाब	बड़ों को मुँह ही मुँह देना ठीक नहीं है।
मुँह फक्क होना / मुँह पीला होना	घबड़ाना	डर से उसका मुँह फक्क हो गया।
	,,	डर से उसका मुँह पीला हो गया।
मुँह काला होना	कलंक लगना	अपनी करनी से ही तुम्हारा मुँह काला हुआ है।
मुँह में पानी भरना	प्रबल इच्छा होना	अंगूर देखकर सियार के मुँह मे पानी भर आया।
मुँहमागी मौत लिलना	इच्छा पूरी होना	मुँह माँगी मौत किसे मिलती है?

मुहाविरा	अर्थ	प्रयोग
मुँह बनाना	चेष्टा विशेष के अर्थ में	कैसा मुँह बना लिया है ?
मुँह बिगाड़ना	उलटा जवाब देना	रामने उसका मुँह बिगाड़ दिया है।
मुँह फुलाना	चिढ़ जाना	मेरी बात पर उसने अपना मुँह फुला दिया।
मुँह देखना	पक्षपात के अर्थ में	यहाँ तो मुँह देखकर ही सब काम होता है।
मुँह चुराना	बोलने से डरना	राम बड़ा मुँह चुराता है।
मुँह धोना	व्यंग के अर्थ में (नहीं देना)	मुँह धोकर आइये, तब यह चीज लीजियेगा।

गाल

गाल बजाना	बक-बक करना	यहाँ गाल बजाने से काम नहीं चलेगा।
गाल-फुलाना	रूठ रहना	किस लिए आपने गाल फुला दिया ?

हाथ

हाथ उठाना	मारना, समर्थन के अर्थ में	स्त्रियों पर हाथ उठाना ठीक नहीं। उसने हाथ उठाकर अपनी स्वीकृति प्रकट की।
हाथ डालना	प्रारंभ करना	बिना सोचे-विचारे किसी काम में हाथ डालना उचित नहीं।
हाथ धो बैठना	खो देना	वह अपनी पुस्तक से हाथ धो बैठा।

मुहाविरा	अर्थ	प्रयोग
हाथ खींच लेना	संबंध तोड़ लेना	आज से मैने उस काम से हाथ खींच लिया ।
हाथ मलना	पछताना	बूढ़ा हाथ मलने लगा ।
हाथ आना	मिलना	कुछ हाथ आया अथवा नहीं ।
हाथ धोकर पीछे पड़ना	जी जान से पीछे पड़ना	वह तुम्हारे पीछे हाथ धोकर पड़ा है ।
हथियाना	लेना	तुम मेरी सभी चीजें हथियाने में बाज नहीं आते ।
हाथ पर हाथ धरे बैठना	कुछ नहीं करना	मै देखता हूँ, आप आजकल हाथ पर धरे बैठे रहते हैं ।
हाथ होना	कृपा होना सहायता के अर्थ में	इसके ऊपर बड़े-बड़े का हाथ है । मालूम होता है, इस काम में उसका हाथ जरूर है ।
हाथ काटना	बेकाबू होना	राम अपना हाथ कटा बैठा ।
हाँथापाई करना	लड़ना	राम उससे हाँथापाई करने लगा ।
हाथ ऊपर होना	आगे रहना	सब काम मे उसका हाथ ऊपर रहता है ।
हाथ देखना	हस्तरेखाविचार के अर्थ मे	ज्योतिषी लड़के का हाथ देखता है ।
हाथ मारना	उड़ा लेना	उसने खूब हाथ मारा !

उँगली

उँगली उठाना	इशारा करना	कृष्ण ने राम की ओर उँगली उठायी ।
उँगली दिखाना	डराने के अर्थ में	उँगली दिखाने से कोई डर नहीं जायगा ।

ओठ

मुहाविरा	अर्थ	प्रयोग
ओठ सटना	बोली बंद होना	तुम्हारे ओठ क्यों न सट जाते ?
ओठ चबाना	क्रोधित होने के अर्थ में	क्रोध के मारे वह ओठ चबाने लगा।
ओठ सूखना	प्यास लगना	मेरे ओठ सूख गये।

इसी प्रकार प्रायः शरीर के अधिकांश अंगों के मुहाविरेदार शब्द बन सकते हैं। हम विस्तार-भय से अधिक शब्द देने में असमर्थ हैं। अब कुछ अन्य शब्दों के बने मुहाविरेदार शब्दों को देना भी आवश्यक है।

संख्यावाचक शब्दों के मुहाविरेदार शब्द

नौ-दो ग्यारह	गायब होना	वह झट नौ-दो ग्यारह हो गया।
छः पाच	सरलता या भोलापन दिखने के अर्थ में जानना क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है।	सच कहता हूँ, मैं छः-पाच कुछ नहीं जानता। (ग्रामीण प्रयोग)
तीन तेरह	तितर-बितर होना	सारी सेना तीन-तेरह हो गयी।
चार दिन	कुछ दिन	चार दिन के लिए आये हो, जो कुछ करना है कर लो।
आठ-आठ आँसू	रोने के अर्थ में	वे आठ-आठ आँसू रोये।
सोलहो आना	बिल्कुल	यह बात सोलहो आना ठीक है।
बावन तोला पाव रत्ती	,,	तुम्हारा कहना बावन तोला पाव रत्ती उतरता है।
निन्यानवे के फेर में पड़ना	संकट में पड़ना	आजकल वह निन्यानवे के फेर में पड़ा है।

अन्य शब्दों के मुहाविरेदार शब्द, वाक्यांशादि

पानी

पानी का बुलबुला = क्षणभंगुर। पानी के मोल = बड़ा सस्ता। पानी चढ़ना = रंग आना। पानी-पानी होना = शर्मिन्दा होना। पानी पी पीकर = लगातार। पानी भरना = नीचता प्रदर्शित करना। पानी में आग लगाना = असंभव बात करना। पानी भरी खाल = क्षणिक जीवन। पानी जाना = इज्जत जाना।

—पानी गये न ऊबरे, मुक्ता मानिक चून—रहीम ॥

पानी बुझना—गर्म वस्तु में पानी डालना। पानी पीकर जात पूछना—काम कर पीछे सोचना। चुल्लू भर पानी में डूबना = शर्म के अर्थ में।

खाक

खाक छानना = दर-दर फिरना। खाक में मिलना = नष्ट होना। खाक उड़ना = बरबाद होना। खाक चाटना = तबाह होना। खाक डालना = छिपाना।

खून

खून बहाना = मार काट करना। खून बिगड़ना = खून का रोग होना। खून सूखना = डरना। खून उबलना = क्रोध आना। खून का प्यासा = जान का ग्राहक।

अन्य मुहाविरेदार शब्द, पद-समूह, वाक्यांश आदि

संज्ञा

उछलकूद, कथोपकथन, कूपमंडूक, कहराम, गोलमाल, गुलगपाड़ा, घनचक्कर, चमक-दमक, चिंतासागर, छलप्रपंच, छलबल, छीनझपट, [illegible], ऊँचनीच, नोकझोंक, पापपुण्य, मारपीट, मस्तानीचाल

मुक्तकंठ, मेलाठेला, मेलजोल, मनहीमन, सभासमाज, सर्वसाधारण, सर्वाधिकार, सुखदुख, हस्तामलक, हाथपाँव, हिताहित, हिस्साबखरा इत्यादि ।

सर्वनाम

अपने में, हम सब, कोई और, कई एक, जो न सो इत्यादि ।

विशेषण

अजरअमर, अनगिनत, अनर्गल, अनपढ़, अनसूंघा, अनिर्वचनीय, अर्थलोलुप, असाधारण, अभूतपूर्व, अपरिमित, किंकर्तव्यविमूढ़, कृतकार्य, खुलमखुल्ला, घनघोर, घटाटोप, चितचोर, डावाँडोल, न्यूनाधिक, पकापकाया, बनाबनाया, भग्नहृदय, भूतपूर्व, भोलाभाला, मनमाना, मूसलधार, लालबुझक्कड़, लोमहर्षण, शृंखलाबद्ध, सर्वसम्मत, सायंकालीन, हस्तांतरित, हराहरा इत्यादि ।

क्रिया

उ—गुलछर्रे उड़ाना, उबल पड़ना, हाथ उठाना ।

क—पुण्य कमाना, दाँत कटकटाना, छप्पर कड़कड़ाना, (नदी का) कलकल करना, कुड़कुड़ाना, चूहा कूदना ।

ख—खर्राटे लेना, (गुल) खिलाना, (दाँत) खट्टा होना, पत्ते खड़खड़ाना, खिलखिलाकर हँसना ।

ग—गड़गड़ाना, गिड़गिड़ाना, गुर्राना, गुंजारे करना ।

घ—घुरना, घिनघिनाना ।

च—चहचहाना, चासनी, चढ़ाना चढ़ बैठना, चबाचबाकर बात करना, अक्ल चरने जाना ।

छ—छनछनाना, छलमलाना, छटपटाना, छानना ।

ज—जमना, जमाना—(दूकान जमाना, हाथ जमाना, रंग जमाना, रौब जमाना, मामला जमना, जड़ जमना, भीड़ जमना, (भोजन) जीमना ।

झ—झटका मारना, झिलमिलाना, झनझनाना, झरना (नौबत झरने लगी)।

ट—टरटराना, टक लगाना, टिमटिमाना !

ठ—ठठाकर हँसना, ठनठनाना।

ड—डकार जाना, डबडबा आना, डाक आना, (मूर्च्छित होना)।

ढ—ढलढलाना, ढलना—(दिन ढल गया, यौवन ढल गया)।

त—तिलमिला उठना, तिरमिरा जाना।

थ—थर्रा जाना, थरथराना।

द—दाग लगना, देखना—(चाँद देखना, हाथ देखना, काम देखना, रास्ता देखना इत्यादि।,

ध—धकधकाना, धधकना।

न—नकारना, नकियाना, नकेल धरना।

प—पार होना, पकना—(फल पकना, वाल पकना, मुँह पकना, घाव पकना इत्यादि)। पनपनाना (चेहरा पनपनाना, पौधा पनपनाना आदि)।

फ—फटना (पौ फटना, आकाश फट पड़ना)।

ब—बलबलाना, बन आना, बनाना, (बिगड़े को बनाना, बात बनाना, मुँह बनाना, चिढ़ाने के अर्थ में, काम बनाना, आदि) बन पड़ना।

भ—भकभकाना, भुरभुराना, भाग निकलना, भंडा फोड़ना।

म—मनमनाना, मटकना, मड़राना, मुकियाना।

ल—लटपटाना, लड़खड़ाना, लिख मारना, लौ लगाना, (हाथ) लगाना, (मुँह) लगाना आदि।

स—सनसनाना, सिटपिटाना, समाना (आँखों में समाना)।

ह—हाँफना, हँसना, (चन्द्र हँस रहा है, फूल हँस रहे हैं), हथियाना, इत्यादि।

पशु पक्षियों की बोली के लिए खास-खास मुहाविरेदार शब्द प्रयुक्त होते हैं। जैसे—

हाथी के लिए चिग्घाड़ करना।

बाघ के लिए	गुर्राना।
कुत्ते ,,	भूँकना।
भौंरे ,,	गुंजार करना।
सूअर ,,	किकियाना।
मुर्गे ,,	कुरकुराना, बाँग देना।
कबूतर ,,	घुटुकना
कौवे ,,	काँव-काँव करना।
घोड़े ,,	हिनहिनाना।
गदहे ,,	रेंकना।
चिड़ियों ,,	चहचहाना।
मेंढक ,,	टरटराना।
बकरे ,,	मेमियाना।
सियार ,,	हुआँ-हुआँ करना।
मोर ,,	कूकना।
मक्खियों ,,	भनभनाना।
कोयल ,,	कुँहू-कुँहू करना।

अव्यय—अब-तब, आमने-सामने, आठोयाम, इधर-उधरकी, एकबएक, कौड़ी-कौड़ी, खींचातानी, गुत्थमगुत्थी, जहाँ-वहाँ, यावज्जीवन, यथाशक्ति, सोते-जागते, उठते-बैठते, हाथोंहाथ, रातोरात, स्वेच्छानुसार, इत्यादि।

३. कहावतों का प्रयोग

लोग अपने कथन की पुष्टि में अथवा अपने पक्ष में निर्णय प्राप्त करने के उद्देश्य से, अथवा किसी बात को किसी आड़ से कहने के अभिप्राय से, अथवा किसी को उपालंभ देने, किसी से व्यंग करने या किसी को चेतावनी देने के लिए ऐसे मुहाविरेदार वाक्यों या उक्तियों का प्रयोग किया करते है जो स्वतंत्र अर्थ रखती हों। ऐसे वाक्य या उक्तियाँ 'कहावत' कहलाती हैं। इसे प्रमादवाक्य या जनश्रुति भी कहते हैं।

कहावतों के प्रयोग से बोली अधिक युक्तियुक्त, प्रमाणित और जोरदार तथा भाषा स्पष्ट और जानदार हो जाती है। किसी बात को स्पष्ट समझाने के लिए कहावतों का प्रयोग अधिक प्रभावोत्पादक होता है। भाषा में सजीवता लाने के लिए 'कहावतें' बड़ी ही उपयोगी सिद्ध होती हैं। वक्ता भी जब भाषण करने लगता है तब बीच-बीच में रोचकता और स्पष्टता लाने के लिए कहावतों का प्रयोग करता है। सारांश यह है कि 'कहावत' रचना का एक मुख्य अंग है। तभी तो अलंकारशास्त्र में इसे भी भाषा का एक अलंकार समझा गया है जो 'लोकोक्ति' अलंकार के नाम से प्रसिद्ध है।

मुहाविरे में वाक्य स्वतंत्र अर्थ नहीं रखता पर कहावतें स्वतंत्र अर्थ रखती है। जब पृथक्-पृथक् कहावतों का प्रयोग करते हैं तो सापेक्ष वाक्य-समूह का निचोड़ कहावत में रहता है। जैसे—

गणेश बड़ा संतोषी है, वह द्रव्य के लिए हाय-हाय नहीं करता है। थोड़ी-बहुत खेती-बारी है, जो जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त है। मजे में दिन कट जाते हैं। किसी का मुँह नहीं जोहना पड़ता। "न उधो का लेना है न माधो को देना है।"

इसी प्रकार सैकड़ों कहावतें हिन्दी में प्रयुक्त होती हैं। कुछ कहावतें नीचे दी जाती हैं—

अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता। आगे नाथ न पीछे पगहा। आँख के अंधे गाँठ के पूरे। आँख के अंधे नाम नयनसुख। आम का आम गुठली का दाम। एक पंथ दो काज। ऊँची दूकान फीकी पकवान। ऊँट किस करवट बैठे। ओछे की प्रीत बालू की भीत। अँधेर नगरी चौपट राजा। काला अक्षर भैंस बराबर। दिया तले अँधेरा। चोर की दाढ़ी में तिनका। ग्वालिन अपने दही को खट्टा नहीं कहती। गुड़ खाय गुलगुले से परहेज। छट्टी का दूध जबान पर आ गया। छोटा मुँह बड़ी बात। डूबते को तिनके का सहारा। ढाक के तीन पात। दाल भात में मूसल-

चंद। मान न मान मैं तेरा मेहमान। पाँचों उँगली घी में। सीधी उँगली से घी नहीं निकलता। नौ की लकड़ी नब्बे खर्च। पूछे न आछे, मैं दुलहन की चाची। पैसे की हाँड़ी गई, कुत्ते की जात पहचानी गयी। मोहर की लूट कोयले पर छाप। हँसुआ के ब्याह में खुरपी का गीत। हाथी का खाया कैथ हो गया इत्यादि।

कुछ संस्कृत और उर्दू की कहावतें भी हिन्दी में व्यवहृत होती हैं। जैसे—

सं०—एरंडोपि द्रुमायते। दैवोपि दुर्बल घातकः।

उर्दू—मरे को मारे शा मुदा। जान न पहचान बड़ी।
बीबी सलाम। मियाँ की दौड़ मसजिद तक।
चला था नमाज बख्शवाने रोजा गले पड़ा।

नीति-विषयक अथवा युक्तिसंगत पद्य या पद्यांश भी कहावत के रूप में गद्य के साथ प्रयुक्त होते हैं। कथन की पुष्टि के लिए अथवा भाषा को प्रभावान्वित करने के लिए ही ऐसा किया जाता है। जैसे—

भाई, मैं तो तंग आ गया! जब देखो तब दूसरों का मुँह जोहना पड़ता है। जरा भी इधर-उधर किया कि आफत मची। कैफियत तलब करते-करते नाकोंदम आ गया। नौकरी बड़ी बुरी बला है। कहा भी है—

"पाराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।"

इसी प्रकार—रहिमन पानी राखियो, बिना पानी सब सून।
पानी गये न उबरै, मुक्ता मानिक चून॥

तिरिया तैल हमीर हठ,
चढै न दूजी बार।

अन्धेर नगरी, चौपट राजा।
टके सेर भाजी, टके सेर खाजा॥

सुर्खरू होते हैं इन्सां ठोकरें खाने के बाद।

जाति पाति पूछे नहीं कोई। हरि के भजे सो हरि के होई॥

चार दिन की चाँदनी, फिर अंधेरी रात।

खेती के सम्बन्ध की घाघ कवि की बनायी कहावतें दिहातों में बहुतायत से प्रचलित हैं।

अभ्यास

१. नीचे लिखी क्रियाओं के भूतकालिक रूप में पृथक्-पृथक् वाक्य बनाइए—

हाथ मारना, हाथ लगाना, मुँह लगाना, बात बनाना, आँख दिखाना, नाकोंदम करना और बात बदलना।

२. नीचे लिखे शब्दों या वाक्यांशों का अलग-अलग वाक्यों में प्रयोग कीजिए—

कथोपकथन, नोंकझोंक, दारमदार, मूसलधार, कूपमंडूक, सिर पर लात, बाजार-गर्म, दूध का धोया, हाथी का खाया कैथ और मन मार कर।

३. नीचे की कहावतों का प्रयोग दिखाइए—

ग्वालिन अपनी दही को खट्टा नहीं कहती। घर पर फूस नहीं और नाम धनपत। रस्सी जल गई पर ऐंठ नहीं गई। सत्तर चूहे खाके बिल्ली चली हज को। छूल न छुट्टा, मसूर दाल में खट्टा।

४. निम्नांकित कहावतों की व्याख्या करें—

(१) आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास।
(२) अकेला चना भाँड़ नहीं फोड़ता।
(३) एक खून का खूनी, लाख खून का गाजी।
(४) गुड़ खाय गुलगुले से परहेज।
(५) जैसा देश वैसा भेस।

५. नीचे लिखे कि व्याख्या करें—

(१) मोहरों की लूट और कोयलों पर छाप। (२) पेट में चूहे कूद रहे हैं। (३) अपनी डफली अपना राग। (४) मिया की दौड़ मसजिद तक। (५) जंगल में मंगल। (६) अकेला मियाँ रोये या कब्र खोदे। (७) मार-मार कर हकीम।

सप्तम परिच्छेद

विराम-विचार

पद, वाक्यांश या वाक्य बोलते समय बीच-बीच में कुछ क्षण के लिए ठहरना आवश्यक हो जाता है। भाषा में इस ठहराव को 'विराम' कहते हैं।

पद, वाक्यांश या वाक्य लिखते समय जहाँ ठहराव की आवश्कता प्रतीत होती है वहाँ कुछ चिह्न लगाये जाते है। ऐसे चिह्न 'विराम-चिह्न' कहलाते है। विराम-चिह्नों को लगाये बिना वाक्यों के अर्थ स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आते। कभी-कभी तो विराम-चिह्नों से रहित वाक्यों को समझने में ऐसा गड़बड़झाला उपस्थित हो जाता है कि अर्थ का अनर्थ तक हो जाता है। अतएव, वाक्य-रचना के अभ्यास के साथ-साथ विराम-चिह्नों को उपयुक्त स्थान पर लगाने का भी अभ्यास करना आवश्यक है। साधारणतः हिंदी में नीचे लिखे विराम-चिह्नों का प्रयोग देखा जाता है।

(१) अल्पविराम या कोमा	(,)
(२) अर्द्धविराम या सेमीकोलन	(;)
(३) पूर्ण विराम या पाई	(।)
(४) प्रश्नबोधक चिह्न	(?)
(५) विस्मयादिबोधक चिह्न	(!)
(६) उद्धरण या अवतरण चिह्न	(' ') (" ")
(७) निर्देशक चिह्न या कोलोन डैस	(:—)
(८) योजक या विभाजक चिह्न	(-)
(९) कोष्टक या ब्राकेट	( ) [ ]

अल्पविराम

वाक्य पढ़ते समय जहाँ-जहाँ बहुत थोड़ी देर ठहरने की आवश्कता होती है वहाँ-वहाँ अल्पविराम का चिह्न लगाया जाता है। साधारणतः निम्नलिखित अवसरों पर अल्प-विराम के चिह्न लगाने की आवश्यकता देखी जाती है—

(१) जब वाक्य में कई पद, वाक्यांश या खंडवाक्य एक ही रूप में व्यवहृत होते है तब अंतिम पद, वाक्यांश या खंडवाक्य के पहले तो 'और', 'या' आदि समुच्चयबोधक अव्यय-पद रखते हैं मगर शेष पदों, वाक्यांशों और खंड-वाक्यों के बाद अल्पविराम का ही प्रयोग करते हैं। मगर जब अंतिम पदादि के आगे 'आदि' 'इत्यादि' या कोई समूह-सूचक शब्द रहे तो उनके पहले समुच्चयबोधक शब्द की आवश्यकता नहीं पड़ती। जैसे—

(क) पृथिवी, बुध, मंगल, शनि आदि ग्रह सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करते हैं।

(ख) विद्या पढ़ने से अज्ञान दूर होता, धन मिलता और प्रतिष्ठा बढ़ती है।

(ग) वृद्ध, युवा, नर, नारी सब के सब चले गये।

(२) जब वाक्य के अंतर्गत कोई पद, वाक्यांश या खंडवाक्य आकर उसके अन्वय को पृथक् कर देता है तब ऐसे पद, वाक्यांश या खंड-वाक्य के दोनों ओर अल्पविराम लगते है। जैसे—

मेरे एक मित्र ने, स्वप्न में भी मुझे ऐसी आशा नहीं थी, मेरे साथ भयानक विश्वासघात किया है।

[नोट—ऐसे अवसर पर कभी-कभी डैस (—) का भी प्रयोग देखा जाता है। जैसे; आज मैने गंगा की बीच धारा में—जब मैं स्नान कर रहा था—एक डरावनी लाश को बहते देखा।]

(३) जहाँ वाक्य का अर्थ समझने में बाधा या रुकावट पड़ने की आशंका प्रदर्शित की जाती है वहाँ भी अल्पविराम का प्रयोग होता है। जैसे—हरिकृष्ण, चाहे वह विश्वासघाती ही क्यों न हो, आखिर मेरा मित्र ही तो है।

(४) संबोधन-पदों के आगे भी अल्पविराम का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी ऐसे अवसरों पर लोग विस्मयादिबोधक चिह्न (!) भी लगाते है। जैसे—ईश्वर, तू है पिता हमारा ! क्यों महाशय, आप अब जाना चाहते है। रे दुष्ट ! मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था।

(५) जटिल वाक्य में जब नित्यसंबंधी जोड़े का अंतिम शब्द लुप्त रहता है तब वहाँ भी अल्पविराम का प्रयोग होता है। जैसे—अगर यह बात मुझे पहले से मालूम रहती, मै कदापि यहाँ नही आता।

(६) कोई-कोई जटिल वाक्य के समुच्चयबोधक 'कि' के आगे या पीछे अल्पविराम रखते है; लेकिन यह प्रयोग मान्य नहीं है। हाँ, यदि 'कि' के बाद किसी की उक्ति अवतरण चिह्नों के बीच रहे या 'कि' लुप्तावस्था मे हो तो अल्पविराम रखना आवश्यक हो जाता है। जैसे—मोहन ने कहा कि, "मै किसी हालत में उस पर विश्वास नहीं कर सकता।" मै जनता हूँ, वह बड़ा दुष्ट है।

(७) अगर वाक्य के आरंभ में आनेवाला पद, वाक्यांश या वाक्य-खंड पूर्वोक्त विषय के साथ संबंध रखता हो तो उसके आगे अल्पविराम का प्रयोग मान्य है। जैसे—जो हो, मै इसका समर्थन नहीं कर सकता। हाँ, यही प्रयोग सर्वथा मान्य है।

(८) यौगिक वाक्य में प्रयुक्त 'क्योंकि', 'बल्कि', 'फिर भी 'किन्तु', 'परन्तु', 'इसलिए' आदि के पहले भी अल्पविराम का प्रयोग देखा जाता है। जैसे—मैं वहाँ जा न सका, इसलिए सब काम चौपट हो गया।

अर्द्धविराम

जहाँ अल्पविराम की अपेक्षा कुछ अधिक क्षण तक ठहरने की आवश्यकता होती है तथा एक वाक्य का दूसरे वाक्य के साथ दूर का संबंध दरसाना होता है वहाँ अर्द्ध विराम (;) का प्रयोग होता है।

प्रायः देखा जाता है कि हिंदी में इस विराम का प्रयोग वहुत कम होता है। इसकी जगह लोग अल्पविराम या पूर्ण विराम से ही काम चला लेते हैं। इसलिए हिंदी में इसके प्रयोग को विशेप महत्त्व भी नही दिया गया है।

अर्द्ध विराम का प्रयोग—(१) प्रतिदिन पाठशाला जाया करो; पाठ याद किया करो; संयम से रहो; वस, इसी मे तुम्हारी भलाई है।

पूर्णविराम

जहाँ एक पूरा वाक्य समाप्त होता है वहाँ पाई या पूर्ण विराम का प्रयोग किया जाता है। अगर वाक्य वड़ा हो अथवा यौगिक या जटिल रूप में हो तो उसके अंतर्गत आवश्यकतानुसार अल्पविराम, अर्द्ध विराम आदि चिह्न लगाये जाते हैं। जैसे—महराज अशोक ने अपने चालीस वर्ष के राज्य-काल में अपनी प्रजा के कल्याण के अनेक कार्य किये। राज्य में कहीं शांतिभंग न हो; किसी प्रजा को दुख न हो; इसका वह बराबर ध्यान रखता था।

यहाँ पर यह याद रखना चाहिए कि प्रश्नवोधक तथा विस्यमादिबोधक वाक्यों के अंत में पाई का चिह्न नहीं लगता। शेष प्रकार के वाक्यों में, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो ; एक अक्षर का भी क्यों न हो; यदि वह स्वतः पूर्ण है तो उसके अंत में पाई का चिह्न लगेगा ही। जैसे;

शिक्षक—गाँधी जी ने हमें जिस राज्य की कल्पना दी है, उसे क्या कहते है ?

एक छात्र—रामराज्य ।

प्रश्नबोधक चिह्न

प्रश्नसूचक वाक्यों में पूर्णविराम की जगह प्रश्नबोधक चिह्न (?) का प्रयोग किया जाता है। जैसे—क्यों साहब, हम लोग कब स्वदेश लौटेंगे ? क्या हमारे देश से दारिद्र्य का अंत नहीं होगा ?

विस्मयादिबोधक चिह्न

विस्मय, हर्ष, विषाद, करुणा, आश्चर्य, भय, घृणा आदि मनोवृत्तियों को प्रगट करने के लिए पद, वाक्यांश या वाक्य के अंत में विस्मयादि-बोधक चिह्न (!) लगाया जाता है। जैसे—ओह ! कितना करुण कहानी है। छिः ! यह क्या कर रहे हो ? अहा ! आज की पावसी संध्या कितनी मनोरम है ! शावाश ! तुमने कमाल कर दिखाया !

कभी-कभी मनोवेग को जोरदार वनाने के लिए एक साथ दो-दो, तीन-तीन विस्मयादिवोधक चिह्नों का भी प्रयोग देखा जाता है। जैसे—ॐ शांति ! शांति !! शांति !!!

उद्धहरण चिह्न

(१) जहाँ किसी अन्य लेखक के वाक्य, वाक्यांश या उक्ति को अविकल उद्धृत करना होता है वहाँ उद्धहरण (" ") चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। जैसे; जब किसी की उक्ति के अंतर्गत किसी दूसरे की उक्ति को उद्धृत करने की आवश्यकता पड़ जाय तो उसे इकहरे अल्प-विराम के उद्धहरण चिह्नों के बीच में रखते हैं। जैसे—इतिहास बतलाता है, "नेपोलियन बड़ा वीर था। जब वह अपने सैनिकों को एक बार कड़ककर आदेश देता था, 'बहादुरो, तैयार हो जाओ' तो वायुमंडल गूँज उठता था।"

स्मरण रहे कि अवतरण के चिह्न किसी उक्ति या कथन के प्रारंभ में लगाने के बाद उसके अंत में बंद भी किया जाना चाहिए। यदि उद्धृत वाक्य के बीच में कुछ कहना हो तो, उसके प्रत्येक खंड को अलग-अलग उद्धहरण चिह्नों के भीतर रखना चाहिए। जैसे—

"देखो, मुझे जो कुछ कहना था, वह दिया" रमेश ने अपने छोटे भाई से कहा, "अब मानना या न मानना तेरी इच्छा पर निर्भर है।"

(२) वाक्य के बीच में आये हुए ऐसे शब्द जिन पर जोर देने का उद्देश्य हो अथवा पुस्तकों आदि के नाम तथा अन्य विशिष्ट शब्द भी इकहरे अवतरण चिह्नों में बंद किये जाते हैं। जैसे—प्रायः अच्छे-अच्छे लेखक भी 'चिह्न' को 'चिन्ह' लिखने की भूल कर बैठते हैं। 'चुन्नू-मुन्नू' पटने के 'अजंता प्रेस' से प्रकाशित होता है।

निर्देशक

(१) जहाँ पर किसी विषय पर विशेष प्रभाव डालने के लिए उदाहरण देने या उसकी व्याख्या करने की आवश्यकता पड़ती है वहाँ निर्देशक (:—)का प्रयोग किया जाता है। जैसे—राजा दशरथ के चार पुत्र थे :—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न।

(२) निर्देशक का एक चिह्न यह भी है (—)।इस तरह के निर्देशक का प्रयोग व्यापक रूप से होता है। प्रथम दिखाये गये निर्देशक चिह्न के बदले यह चिह्न (—) तो लगता ही है; साथ ही, विषय-विभाग को निर्देश करनेवाले प्रत्येक पद के आगे तथा वार्तालाप-संबंधी लेख में वक्ता के नाम के आगे भी लगता है। जैसे—

(१) नागरिकता—नागरिकता का यथार्थ अर्थ है........।

(२) शिक्षक—तुम्हारे राष्ट्रपति का क्या नाम है ?

छात्र—देशरत्न डा० राजेंद्र प्रसाद।

(३) यदि वाक्य में कोई स्वतंत्र पद, वाक्यांश या वाक्य आ जाय तो उसके दोनो ओर यह निर्देशक (—) लगाते है। कभी-कभी अनुक्त पद, वाक्यांश या वाक्य के बदले भी यह चिह्न प्रयुक्त होता है। जैसे—

(१) राष्ट्रपिता बापू के निधन से—ईश्वर उस दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करें—सारा देश अनाथ हो गया।

(२) उसने लड़खड़ाते स्वर में कहा, "अब यह शारीरिक कष्ट—।

योजक या विभाजक चिह्न

जहाँ दो या दो से अधिक शब्दों को संयुक्त कर एक पद के अंतर्गत लिखना होता है यानी सामासिक पदों, विशेषकर तत्पुरुष और द्वंद्व समास में आये हुए पदों के खंडों के बीच प्रायः विभाजक चिह्न (-) का प्रयोग होता है। जैसे—धन-जन सभी का ह्रास हो रहा है।

हिंदी में पहले विभाजक चिह्न का प्रयोग बहुत कम देखा जाता था, मगर अब बहुतायत से होने लगा है। कभी-कभी लोग विभाजक की जगह निर्देशक चिह्न लगा देने की भी भूल कर बैठते हैं।

अगर किसी पंक्ति के अंतिम शब्द के अंतिम शब्दांश को दूसरी पंक्ति में लिखने की जरूरत पड़ जाय तो पूर्व शब्दांश के बाद विभाजक का चिह्न देना चाहिए।

इन चिह्नों के अतिरिक्त हिन्दी में और भी कई तरह के चिह्न प्रयुक्त होते हैं जिनमें कोष्ठक ( ) [ ] आदि का प्रयोग तो सामान्य रूप से देखा जाता है।

अभ्यास

१. नीचे लिखे अनुच्छेद में यथास्थान विराम चिह्न लगावें—

सुनोगी क्या हुआ आह स्मृति मात्र से हृदय में आग जल उठी उसकी जीवित ज्वालाएँ अपने पंजों को विकराल रूप से बढ़ाये आ रही हैं ग्लानि धिक्कार और क्रोध की मिली हुई इन दारुण चोटों से इतना निर्बल हो रहा हूँ कि तड़पने की हविस रखकर भी एक बार तड़प नहीं सकता क्या बताऊँ लक्खो कहते नहीं बनता मगर चाहे जिस तरह हो इतना तो कहना ही पड़ेगा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

———

अष्टम परिच्छेद

१. पत्र-रचना

पत्र-लेखन भाषा का एक प्रधान अंग माना गया है। निबंध, कहानी, पुस्तकादि लिखनेवालों की संख्या तो थोड़ी ही होती है; सब नही लिख सकते; मगर पत्र लिखने की आवश्यकता तो प्रायः सब को होती है। बड़े-बड़े लेखकों से लेकर साधारण पढ़े-लिखे व्यक्तियों तक को पत्र लिखने की जरूरत होती है। जो निरक्षर हैं, वे भी पढ़े-लिखे लोगों से पत्र लिखवाकर अपना काम चला लेते है। अतः पत्र लिखने की साधारण योग्यता भी प्राप्त करना परमावश्यक है।

मुख्यतः पत्र दो प्रकार के होते हैं--एक निजी-पत्र, दूसरा सार्वजनिक-पत्र। ऐसे पत्र, जिनके विषय से केवल पत्र-लेखक तथा पत्र पानेवाले का ही संबंध रहता है, निजी-पत्र कहलाते है। इस श्रेणी में प्रार्थना-पत्र, आदेश-पत्र, कार्य-संबंधी-पत्र आदि आते है। प्रार्थना-पत्र किसी सरकारी या गैर-सरकारी विभाग के अधिकारियों को लिखा जाता है। आदेश-पत्र अपने अधीन के कर्मचारियों को या तो उनके प्रार्थना-पत्र के उत्तर के रूप में या स्वतंत्र आदेश के रूप में लिखा जाता है। अपने सगे-संबंधियों तथा इष्टमित्रों के कुशल-पत्र, व्यापार या व्यवसाय से संबंध रखनेवाले पत्र, निमंत्रण-पत्रादि कार्य-संबंधी पत्र कहलाते है।

निजी-पत्र किसी दूसरे का तबतक नहीं पढ़ना चाहिए जबतक कि उसके लिखनेवाले की अनुमति नही मिल जाय।

सार्वजनिक-पत्र

सार्वजनिक-पत्र में सर्वसाधारण के संबंध की बातें रहती है। सर्वसाधारण के लिए ही ऐसे पत्र लिखे जाते हैं और अधिक से अधिक लोग

उस पत्र को पढ़ सकें इसलिए ऐसे पत्रों के लेखक उन्हें समाचार-पत्रों में प्रकाशित भी करा देते हैं। ऐसे पत्र या तो किसी समाचार-पत्र के संपादक के नाम से लिखे जाते हैं या सार्वजनिक कार्यकर्त्ता के नाम से। समाचार-पत्रों में संपादक के नाम से आये हुए पत्रों को प्रकाशित करने के लिए कोई स्थान निश्चित रहता है। 'संपादक की डाक' आदि स्थाई शीर्षकों के नीचे ऐसे पत्र प्रकाशित होते हैं। गाँव या नगर के लोग या संवाददाता अपने-अपने क्षेत्र की विशेष घटनाओं, सामाजिक अवस्थाओं आदि की ओर जनता या सरकार का ध्यान आकृष्ट करने के लिए ऐसे पत्र अखबारों में प्रकाशनार्थ भेजा करते हैं।

कभी-कभी किसी सार्वजनिक नेता, समाज के उत्तरदाई व्यक्ति अथवा सरकार के जवाबदेह अफसर को किसी घटना-विशेष की जानकारी दिलाने या जनता से संबंधित शिकायतों से परिचित कराने के लिए उसके नाम से 'खुली चिट्ठी' या 'प्रकाश्य-पत्र' अखबारों में प्रकाशित कराते हैं। तत्संबंधी व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करने के साथ-साथ उस विषय से सर्वसाधारण को भी परिचित कराने के उद्देश्य से ऐसा पत्र लिखा जाता है।

कभी-कभी सरकार और किसी सार्वजनिक नेता अथवा परस्पर-विरोधी सिद्धांत रखनेवाले दो नेताओं के बीच जनहित संबंधी किसी आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक प्रश्न को लेकर महीनो पत्र-व्यवहार होता रहता है। जबतक दोनों पक्ष के लेखक सहमत नहीं हो जाते तबतक ऐसे पत्र निजी-पत्र के ही रूप में रहते हैं, लेकिन जब दोनों पक्ष के लेखक उस पत्र-व्यवहार को प्रकाशित कर देने के लिए सहमत हो जाते हैं तब वे पत्रों में प्रकाशित कर दिये जाते है और सार्वजनिक-पत्र का स्थान प्राप्त कर लेते है।

समाचार-पत्र के पढ़नेवाले जानते होंगे कि ऐसे पत्रों में गाँधी-इर्विन पत्र-व्यवहार, गाँधी-जिन्ना पत्र-व्यवहार, नेहरू-बोस पत्र-व्यवहार (पं० जवाहरलाल नेहरू तथा श्री शरत्चंद्र बोस के बीच का पत्र-व्यवहार) आदि

कुछ ऐसी पत्रावलियाँ समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई हैं जो ऐतिहासिक और राजनीतिक दृष्टि से बड़े महत्त्व की मानी जाती हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के सार्वजनिक-पत्र तो प्रसिद्ध हैं ही। वे अपने संपादकत्व से निकलने वाले समाचार-पत्र 'यंग इंडिया', हिंदी नवजीवन', 'हरिजन-सेवक' आदि में ऐसे पत्रों का उत्तर प्रकाशित करते रहते थे जो पत्र उन्हें किसी सार्वजनिक विषय को लेकर लिखे जाते थे और जिनके उत्तर को वे सिर्फ पत्र लिखनेवाले जिज्ञासुओं तक ही सीमित नहीं रखकर सर्वसाधारण के भी समक्ष उपस्थित करने में लोक-कल्याण देखते थे।

निमंत्रण-पत्रों में भी कुछ तो निजी होते है और कुछ सार्वजनिक। सार्वजनिक सभाओं, उत्सवों, प्रीतिभोजों, परिषदों आदि में सम्मिलित होने के लिए जो निमंत्रण-पत्र प्रसारित किये जाते हैं वे सार्वजनिक-पत्र की कोटि में आते हैं।

कभी-कभी लोग अपने सगे-संबंधियों को पत्रों के द्वारा ही किसी विषय की शिक्षा देते हैं। जब वे अपना मंतव्य पूरा कर लेते हैं तब उन पत्रावलियों को अन्य लोगों के लाभार्थ पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे निजी-पत्र पुस्तकाकार होने से सार्वजनिक-पत्र हो जाते हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू अपनी पुत्री इंदिरा देवी को ऐसे पत्र लिखा करते थे। 'विश्व इतिहास की झलक' नामक उनका प्रसिद्ध ग्रंथ इसी प्रकार के ऐतिहासिक पत्रों का संग्रह-मात्र है।

२. पत्र लेखन-प्रणाली

सभी प्रकार के पत्रों को लिखते समय मुख्यतः दो बातो पर ध्यान देना अवश्यक है। एक तो पत्र-संबंधी शिष्टाचार पर और दूसरी, पत्र के विषय पर।

शिष्टाचार के संबंध में यह देखना चाहिए कि जिन्हें पत्र लिखा जा रहा है वे बड़े हैं, पूज्य हैं, सम श्रेणी के हैं या छोटे हैं। जिस

श्रेणी के व्यक्ति हों उसी श्रेणी के प्रचलित शिष्टाचार के नियमानुसार प्रशस्ति या सरमाना लिखना चाहिए।

हिंदी भाषा में पत्र लिखने की दो प्रणालियाँ प्रचलित हैं; एक प्राचीन और दूसरी नवीन प्रणाली। पुराने विचार के लोग या कम-पढ़े लिखे व्यक्ति प्रायः पुरानी प्रणाली का अनुसरण करते हैं मगर नये विचार के शिक्षित लोग नवीन प्रणाली के अनुसार पत्र लिखते हैं। नवीन प्रणाली में व्यर्थ की आडंबर-पूर्ण बातें नही लिखकर संक्षेप में ही मुख्य-मुख्य बातें लिख दी जाती हैं। आजकल इसी प्रणाली का अधिक प्रचार है।

नयी परिपाटी के अनुसार कुशल-संबंधी पत्र लिखते समय पत्र लिखने के कागज पर दाईं ओर एक कोने पर उस स्थान का नाम लिखते है जहाँ से पत्र लिखा जाता है और ठीक उसके नीचे तिथि या तारीख लिखी जाती है। कोई-कोई तारीख के साथ-साथ पत्र लिखने के समय का भी निर्देश कर देते हैं। आजकल पत्र लिखने के लिए कागज भी मुद्रित करा लिया जाता है, जिस पर ऊपर बाईं ओर पत्र लिखनेवाले का नाम मुद्रित रहता है और दाहिनी ओर स्थान का नाम।

स्थान और समय का निर्देश करने के बाद उसके नीचे बाईं ओर छोटे-बड़े के अनुसार प्रशस्ति लिखी जाती है। संबंधियों, इष्टमित्रो या आत्मीय व्यक्तियों के पत्रों में प्रशस्ति के नीचे यथायोग्य प्रणाम, नमस्कार, नमस्ते, आशीर्वाद आदि अभिवादन के शब्द लिखे जाते हैं। फिर कुशलादि जताने के पश्चात् जिस कार्य के लिए पत्र लिखा जाता है उसे व्यक्त करना होता है और अंत में समाप्तिसूचक शब्द के साथ अपना हस्ताक्षर कर पत्र के पृष्ठ भाग पर या लिफाफे के ऊपर पत्र पानेवाले का पता लिखा जाता है।

३. प्रशस्ति और समाप्ति के शब्द

१. बड़ों और गुरुजनों के लिए—

(क) पूज्यपाद, पूज्यवर, पूज्यचरणेषु, श्रद्धास्पद, मान्यवर, श्रद्धेय आदि।

(ख) अज्ञानुवर्त्ती, आज्ञाकारी, सेवक, कृपैषी, कृपाकांक्षी, प्रणत, विनयावनत, स्नेह-भाजन, कृपाभिलाषी आदि ।

२. बराबरीवालों के लिए—

(क) प्रिय, प्रियवर, बंधुवर, प्रियवर पाठकजी, प्रियवर ठाकुर जी आदि ।

(ख) भवदीय, आपका स्नेही आदि ।

३. छोटों के लिए—

(क) प्रिय, चिरंजीव, आयुष्मान आदि ।

(ख) तुम्हारा शुभचिंतक, शुभेच्छु, हितैषी आदि ।

४. मित्र के लिए—

(क) सुहृदवर, मेरे अभिन्न, मित्रवर आदि ।

(ख) भवदीय, आपका अभिन्न-हृदय मित्र आदि ।

५. पति के लिए—

(क) आर्यपुत्र, प्राणेश्वर, प्राणाधार, प्राणपति आदि ।

(ख) आप की दासी, सेविका, किंकरी आदि ।

६. स्त्री के लिए—

(क) प्रियतमे, प्रिये, प्राणप्रिये, प्राणेश्वरी आदि ।

(ख) तुम्हारा हितैषी, तुम्हारा शुभेच्छु आदि ।

[नोट—उपर्युक्त शब्दों में, जहाँ स्त्री-जाति को पत्र लिखना हो, वहाँ, आवश्यकतानुसार पुंल्लिंग प्रशस्तियों का स्त्रीलिंग रूप बना लेना चाहिए। जैसे—आयुष्मान-आयुष्मती; सेवक-सेविका; कृपाकांक्षी-कृपाकांक्षिणी ।]

७.—व्यावहारिक पत्रों में—(क) महाशय, प्रिय महाशय । (ख) आपका ।

व्यावहारिक पत्र में घनिष्ठता प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं होती है। अतएव, ऐसे पत्रों में न तो कुशलादि जताने की आवश्यकता

होती हैं और न कोई निरर्थक वाक्य ही लिखा जाता है। व्यावहारिक पत्र की भाषा बिलकुल स्पष्ट, संक्षिप्त और सरल होनी चाहिए। उसमें केवल काम की बातें ही रहनी चाहिए।

आजकल प्रायः देखा जाता है कि व्यावहारिक पत्रों के कागज के आकार-प्रकार में एकरूपता रहती है, जिसके शीर्ष भाग पर पत्र लिखने वाले या प्रेषक के नाम तथा पता मुद्रित रहते हैं या लिख दिये जाते हैं। उसके बाद तिथि का निर्देश रहता है और तब पत्र देनेवाले के नाम, पता आदि दिये जाते है। आदेश-पत्र या प्रार्थना-पत्र में भी इसी ढंग को अपनाया जाता है।

पत्र में पानेवाले का पता लिखने में विशेष सावधानी से काम लेना चालिए। पत्र लिखकर उसे लिफाफे में बंदकर ऊपर स्पष्ट अक्षरों में पूरा पता लिखना चाहिए। पता अस्पष्ट रहने से पत्र के मिलने में कठनाई होती हैं।

मुख्य विषय—प्रशस्ति आदि को विचारपूर्वक लिखकर पत्र के मुख्य विषय पर विचार करना होता हैं। जितनी बातें पत्र में लिखनी हों, अगर संभव हो तो, उनका संकेत एक दूसरे कागज पर टाँक लेना चाहिए। पश्चात् प्रत्येक संकेत के भाव को स्पष्ट और सरल वाक्यों में लिखते जाना चाहिए, अन्यथा क्रम-भंग हो जाने से लेख भद्दा प्रतीत होगा। पत्र की भाषा सरल, सुबोध और आडंबर-शून्य होनी चाहिए। पत्र लिखते समय ऐसा मालूम पड़े कि पत्र लिखनेवाला उससे बातें कर रहा है। ऐसी धारणा कर लेने से पत्र की भाषा में अस्वभाविकता नहीं आने पाती। आवेश की दशा में पत्र नहीं लिखना चाहिए। पूज्य महात्मा गाँधी प्रातःकाल के शांत वातावरण में ही पत्र लिखने काम करते थे। उस समय मस्तिष्क शांत रहता हैं।

अच्छे-अच्छे उपदेश, कहानियाँ, निबंध आदि भी पत्रात्मक रूप में लिखे जाते है जो पत्र-साहित्य कहलाते है। कभी-कभी किसी-किसी समाचार-पत्र का 'पत्रांक' भी प्रकाशित होता हैं।

४. कुछ आदर्श-पत्र

पटना
११-५-२७

अभिन्न श्री,

बहुत दिन हो गये, आपका कोई समाचार नहीं मिला। मैं दो-दो पत्र लिख चुका, पर एक का भी उत्तर नहीं प्राप्त हुआ। मालूम नहीं, क्या कारण है। कुशल-समाचार नहीं मिलते रहने से हृदय चिंतित रहा करता है। एक तो मेरा मन पारिवारिक झंझटों में फँस कर यों ही उदास रहता है। साथ ही, आत्मीय व्यक्तियों तथा शुभेच्छु मित्रों के अभाव से हृदय एकांतता का कटु अनुभव कर बरावर खिन्न रहा करता है। ऐसी परिस्थिति में समय-समय पर आप जैसे अभिन्न मित्रों का पत्र भी नहीं मिलते रहने से चिंता और भी बढ़ जाती है। आशा है, आप प्रसन्न होंगे।

आपका अभिन्न-हृदय

सुरेश्वर

ज्ञानपीठ

[पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता]

पत्र-संख्या—५२५
खजांची रोड, पटना
१५ जुलाई, १९५०

श्रीयुत व्यवस्थापक,

श्री सरस्वती पुस्तकालय, रतैठा (मुंगेर)

प्रिय महाशय,

आपके पत्र-संख्या १७ तारीख ११ जुलाई के पत्र के उत्तर में निवेदन है कि हमारे यहाँ से प्रकाशित कुल पुस्तकों की तालिका छप कर प्रस्तुत हो चुकी है जिसकी एक प्रति इसी पत्र के साथ आपकी सेवा में प्रेषित कर रहे हैं। तालिका देखकर पुस्तकों का आर्डर शीघ्र भेज दें।

साथ में—
एक प्रति पुस्तकों की तालिका

भवदीय,
मदनमोहन पांडेय
संचालक

श्रीपुत प्रधानाध्यापक,

श्री गांधी विद्यालय हवेली खड्गपुर की सेवा में—

महाशय,

सेवा में निवेदन है कि हम दसवीं कक्षा के छात्रों ने आगामी महीने के प्रारंभ से ही सिंहपुर गाँव में एक सामाजिक शिक्षण-केंद्र की स्थापना कर उसे सुचारु रूप से संचालित करने का निश्चय किया है। इसके लिए आपकी अनुमति की अपेक्षा है।

अतः निवेदन है कि आप इसके लिए हमलोगों को अनुमति प्रदान करते हुए केंद्र-स्थापना की उचित व्यवस्था कर देने की भी कृपा करें।

श्री गांधी पुस्तकालय,
हवेली खड्गपुर
२७ मई, १९५२

भवदीय निवेदक—
चंद्रधर,
मंत्री, दसवी श्रेणी-छात्र-संघ

निमंत्रण-पत्र

[प्रथम पृष्ठ]

श्री गांधी विद्यालय, मुजफ्फरगंज, डाकघर-रतैठा (मुंगेर)

श्रीयुत...की सेवा में

मान्यवर,

सेवा में निवेदन है कि हमारे विद्यालय का पारितोषिक वितरणोत्सव आगामी ११ अगस्त को विद्यालय-भवन में माननीय शिक्षामंत्री आचार्य बदरीनाथ वर्मा के नेतृत्व में मनाया जायगा। अतः इस सुअवसर पर आपकी उपस्थिति प्रार्थनीय है।

—श्री गाँधी विद्यालय
मुजफ्फरगंज
७ अगस्त, १९५०

निवेदक
सत्यदेव,
प्रधानाध्यापक

[द्वितीय पृष्ठ]

कार्य-क्रम

अपराह्न ३ बजे से ५ बजे तक—

मंगलाचरण, स्वागत-गान ।
विद्यालय का वार्षिक रिपोर्ट-पाठ ।
सभापति का अभिभाषण ।
छात्रों द्वारा कविता-पाठ ।
आगत विद्वानों के भाषण ।
सभापति जी द्वारा पारितोषिक-वितरण ।
सभापति तथा आगत सज्जनों को धन्यवाद ।

रात्रि में आठ बजे—

प्रीति-भोज ।
छात्रों द्वारा 'पंचायत-राज्य' का प्रदर्शन ।

सार्वजनिक-पत्र

अपनी लोकप्रिय सरकार से

श्रीयुत संपादक, नवराष्ट्र, पटना

महाशय,

सेवा में निवेदन है कि निम्नलिखित विषय को आप अपने प्रतिष्ठित पत्र के आगामी अंक मे उचित स्थान पर प्रकाशित करने का कष्ट करेंगे।

भागलपुर जिलांतर्गत कृष्णगढ़ गाँव की जनसंख्या लगभग चार हजार है। लेकिन खेद के साथ लिखना पड़ता है कि इस गाँव में न तो कोई व्यवस्थित विद्यालय है और न कोई पुस्तकालय ही। शिक्षा की दिशा में यह गाँव बहुत पीछे है। गत वर्ष यहाँ के कुछ उत्साही और पढ़े-लिखे समाजसेवकों ने यहाँ एक माध्यमिक विद्यालय की स्थापना की है। गाँव के धनीमानी सज्जनों ने विद्यालय का एक स्वतंत्र भवन निर्माण करा दिया है। विद्यालय में छात्रों की संख्या भी संतोषजनक है। दो-तीन मास

पूर्व शिक्षा-विभाग के भागलपुर-स्थित निरीक्षक विद्यालय का निरीक्षण कर यह आश्वासन दे गये थे कि इसे एक माह के भीतर सरकार की स्वीकृति मिल जायगी। इसके बाद स्वीकृति प्राप्त करने के लिए बराबर पत्र-व्यवहार चल रहा है। विद्यालय के मंत्री ने दौड़-धूप भी यथेष्ट की; लेकिन खेद है कि शिक्षा-विभाग का अब तक आसन नहीं डिगा है। स्वीकृति देना तो दूर रहे, अब तो पत्रों का उत्तर देना भी शिक्षा-विभाग के अधिकारी उचित नही समझते। वर्ष का अंतिम भाग आ चुका। अगर दिसंबर के पूर्व इस विद्यालय को स्वीकृति नहीं मिली तो अंतिम वर्ग के छात्रों का जीवन नष्ट हो जायगा।

अतः हम इस पत्र के द्वारा शिक्षा-विभाग के अन्य अधिकारियों के साथ-साथ अपनी लोकप्रिय सरकार के शिक्षा-मंत्री का ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हुए उनसे अनुरोध करते है कि वे ऐसी कृपा दरसावें कि विद्यालय को शीघ्र स्वीकृति मिल जाय।

कृष्णगढ़ (भागलपुर)
२१ अगस्त, १९५०

निवेदक—
परमेश्वर दयाल

संवाद-पत्र

श्रीयुत संपादक, 'प्रदीप', पटना।

महाशय,

अपने जिले के कुछ समाचार आपके प्रतिष्ठित-पत्र, के आगामी अंक में प्रकाशनार्थ प्रेषित कर रहा हूँ। आशा है, आप इन्हें यथायोग स्थान प्रदान करेंगे।

मुंगेर,
२५ अगस्त, १९५०

भवदीय,
सत्येंद्र
(संवाददाता)

बाढ़ से क्षति

मुंगेर, १० सितंबर।

गत सप्ताह गंगा की बाढ़ बड़ी भयानक रही। यद्यपि अब उसकी प्रगति मंद पड़ गई है; फिर भी बाढ़ के कारण दियारे के कोई एक दर्जन गाँवों की भदई फसल एकदम दह गई। एक तो इस वर्ष गेहूँ की अच्छी फसल नहीं होने से किसानों के घर अन्न का अभाव था ही, दूसरे, भदई के नष्ट हो जाने से तो उनकी आशा पर सहसा तुषारपात हो गया। अन्न के अभाव से सैकड़ों लोग दाने-दाने के लिए मुहताज हो रहे है। कितने ऐसे परिवार है, जो घोंघा, करमी के साग आदि पर गुजर कर रहे है। अगर सरकार की ओर से शीघ्र से शीघ्र बाहर से अन्न पहुँचाने की व्यवस्था नही की जायगी तो अकाल का भीषण तांडव प्रारंभ हो जायगा।

एक सप्ताह में अनेक डाके

मुंगेर, १० सितंबर।

गत सप्ताह इस जिले के कई स्थानों में भीषण डाके पड़ गये। उस दिन मुंगेर शहर के पूरबसराय महल्ले में एक व्यक्ति के घर डकैतों ने डाका डाल कर उसके घर के सारे माल-असबाब तो उठा कर ले ही गये; साथ ही, एक वृद्धा की भी हत्या कर डाली। खड़गपुर थानांतर्गत मुजफ्फर-गंज बाजार में सुनते हैं कि पुलिस की मौजूदगी में ही, उस रात एक बनिये के घर में डकैती हो गई, खड़गपुर बाजार के धनी व्यक्तियों को भी डकैतों की ओर से सतर्क रहने के कई परचे मिले हैं। तमाम आतंक हैं। इन डकैतियों का कारण पुलिस की लापरवाही भी कहा जाता है।

दिन-दहाड़े खून

मुंगेर, १० सितंबर।

उस दिन खड़गपुर के एक धनी मारवाड़ी एक मामला जीत कर खुशी-खुशी कचहरी से लौटे आ रहे थे। ज्योंही वे किले के फाटक पर पहुँचे

कि एक व्यक्ति ने उन पर सहसा आक्रमण किया और छुरा भोंक कर उन्हें मार डाला। कहते हैं कि हत्यारा वही गरीब किसान है जिसके विरुद्ध सेठजी ने अभी-अभी मामला जीता था। वह रंगे हाँथ घटना-स्थल पर ही गिरफ्तार कर लिया गया। इस हत्या से चारों ओर बड़ी सनसनी है।

जमीन-सम्बंधी फसाद

मुंगेर, १० सितंबर।

इस जिले के खड़गपुर थाने के गाँवों में जहाँ-जहाँ परती जमीन थी, सब की जमींदारों की ओर से बंदोबस्ती हो गई। यहाँ तक कि कितने गाँवों के अहरे-पोखरे, सड़क के हिस्से, निकास के स्थान, चारागाह आदि सार्वजनिक उपयोग की जमीन भी बंदोबस्त कर दी गई। कितनों के हक की हत्या कर दूसरों को भी जमीन बंदोबस्त देने की अनेक खबरें मिल रही है। इन सब कारणों से इस इलाके के अनेक गाँव पारस्परिक वैमनस्य के अड्डे हो रहे हैं। कहीं-कहीं तो मारपीट तक की नौबत आ गई है।

अभ्यास

१. अपने पिता को एक पत्र लिखें जिसमें अपनी पढ़ाई का विवरण देते हुए अपने व्यय के लिए रुपये भेजने का अनुरोध हो।

२. अपने मित्र को एक पत्र लिखें जिसमें अपने विद्यालय के पारितोषिक-वितरण का वर्णन संक्षेप में व्यक्त रहे।

३. किसी विद्वान् को ऐसा पत्र लिखें जिसमें अपने विद्यालय के छात्र-संघ के वार्षिक अधिवेशन के लिए उनसे सभापति-पद ग्रहण करने का आग्रह हो।

४. अपने छोटे भाई को एक ऐसा पत्र लिखें जिसमें स्वास्थ्य और शारीरिक श्रम के महत्त्व का दिग्दर्शन हो।

५. पत्र द्वारा किसी पुस्तक-विक्रेता से डाक द्वारा अपनी पाठ्य-पुस्तकें भेजने का अनुरोध करें।

६. अपने विद्यालय के छात्र-संघ के वार्षिक-अधिवेशन के विवरण के साथ किसी साप्ताहिक-पत्र के संपादक को ऐसा पत्र लिखें जिसमें विवरण प्रकाशित कर देने का अनुरोध हो।

७. समाचार-पत्रों में प्रकाशित एक सप्ताह के महत्त्वपूर्ण समाचारों का संक्षेप में संकलन करें।

८. अपने इलाके के किसानों की सच्ची शिकायतों और उनकी माँगों का वर्णन करते हुए किसी पत्र-संपादक को उन्हें प्रकाशित कर देने के अनुरोध के साथ एक पत्र लिखें।

९. अपनी श्रेणी के छात्र-संघ के मंत्री की हैसियत से अपने विद्यालय के प्रधानाध्यापक को एक ऐसा पत्र लिखें जिनमें किसी ऐतिहासिक स्थान के परिदर्शन के लिए एक सप्ताह का अवकाश प्रदान करने का उनसे अनुरोध हो।

१०. आपके एक मित्र ने आपको एक पत्र लिखा है जिसमें उन्होंने यह जनाना चाहा है कि आपलोग सामाजिक शिक्षा के प्रचार के लिए क्या कर रहे हैं। आप उनके पत्र का यथोचित उत्तर दें।

११. अपने गाँव के सर्वतोमुखी सुधार की एक संक्षिप्त योजना तैयार करें।

रचना कला

[तृतीय खंड]

प्रथम परिच्छेद

१. निबंध किसे कहते हैं ?

हम अपने मनोभावों को दो तरह से प्रगट करते हैं—बोलकर और लिखकर। जब हम अपने विचार बोलकर या वाणी द्वारा प्रगट करते है, तब वे भाषा या व्याख्यान कहलाते है। लेकिन जब हम उन्हें लिपिबद्ध कर देते हैं, तब वे निबंध का रूप ले लेते हैं। संक्षेप में, साहित्य या जीवन से संबंध रखनेवाले किसी विषय पर अपने जो मंतव्य या विचार, एक साधारण लेख के रूप में प्रगट किये जाते हैं, उन्हें निबंध कहते हैं।

निबंध के विषय असंख्य है, मगर लेखक की शक्ति तो परिमित ही रहती है। अतः किसी निबंध के विषय की सीमा और लेखक की शक्ति का सामंजस्य रहने से ही निबंध अच्छा उतरता है। नवसिखुए लेखकों को प्रारंभ में छोटे-छोटे वर्णन सरल और सीधी भाषा में लिखकर निबंध लिखने का अभ्यास करना चाहिए। अगर उन्हें दया, क्रोध, सत्य आदि विषयों पर निबंध लिखने को कहा जाय तो उनका मन ऐसे रूखे-सूखे विषयों से ऊब जायगा और वे निबंध लिखना एक कठोर कर्म समझने लगेंगे। अतएव, निबंध लिखने का प्रारंभ नित्य-प्रति देखी हुई वस्तुओं के वर्णन और छोटी-छोटी रोचक कहानियों के लेखन से होना स्वाभाविक और श्रेयस्कर भी है। अगर इस तरीके से लिखने का अभ्यास हो जायगा

तो आगे चलकर लेख में आप से आप निदंध के सभी गुण आने लगेंगे। संक्षेप में, किसी भी निबंध में विषय की सीमा निर्धारित रहे और उस सीमा की परिधि को अच्छी तरह देखभाल कर और अपनी शक्ति से तौल कर ही उसे लिखने के लिए लेखनी उठानी चाहिए।

२. निबंध के साधन

शरीर सुंदर और सुडौल है, मगर उसमें प्राण नहीं है। ऐसे शरीर को हम मुर्दा या मृत कहते है। उसे छूने से भी डरते हैं। उसी प्रकार सुंदर और सुललित भाषा में लिखे गये निबंध में भी अगर भाव नहीं हैं तो वह भी बेजान है, मृतवत् शरीर-तुल्य है। अतः भाव ही निबंध के प्राण हैं। जो लेखक अपने लेख में जितने ही सुंदर, स्पष्ट और विकसित भाव प्रगट करने में समर्थ हो सकेंगे, उनका निबंध उतना ही भावपूर्ण, सुंदर और सुस्पष्ट समझा जायगा। इसलिए निबंध लिखने के लिए अपने मनोभावों को विकसित करने के साथ-साथ भाव-संग्रह की भी अतीव आवश्यकता होती है; क्योंकि जिस प्रकार भाषा मँजते-मँजते मँजती है उसी प्रकार भाव उठते-उठते ही उठते हैं। भावों के विकास के लिए ज्ञानार्जन की आवश्यकता है, अपने ज्ञान-भांडार को भरा-पूरा करने की जरूरत होती है। ज्ञान-भांडार की वृद्धि के लिए या यों कहिए कि उत्तम निबंध लिखने के लिए मुख्य चार साधनों का उपयोग आपेक्षित है—(१) ज्ञानेंद्रिय, (२) भ्रमण, (३) स्वाध्याय और (४) अभ्यास।

१. **ज्ञानेंद्रिय**—ज्ञानेंद्रिय पाँच हैं—आँख, कान, जिह्वा और त्वचा। आँख से हम देखते है, कान से सुनते हैं, नाक से सूंघते हैं, जीभ से चखते हैं और त्वचा से छूते हैं। इस प्रकार ये पाँचों ज्ञानेंद्रिय हमें पाँच प्रकार के ज्ञान प्रदान करते हैं। यों तो ज्ञानार्जन के लिए हमें पाँचों ज्ञानेंद्रियों को सचेत रखना पड़ता है, मगर निबंध की सामग्री जुटाने मे सबसे अधिक उपयोगी हैं आँखें और इनके बाद दूसरा स्थान है कान का। आँखों के द्वारा हम प्रकृति के अनंत सौंदर्य का अवलोकन करते

हैं, उसे हृदय में बिठाते और उसे स्मरण रखने की भी चेष्टा करते हैं। यदि प्रतिक्षण हमारी आँखें खुली रहें, हम जगत् की चीजों का सचेत होकर निरीक्षण करते रहें तो हमारे हृदय पर बाहरी जगत् का जो चित्र अंकित होगा, और वह बहुत स्पष्ट होगा उसे भाषा के द्वारा व्यक्त करने में हमें पूरी सफलता मिलेगी। अगर हम ध्यानपूर्वक, सचेत होकर, किसी पदार्थ का सूक्ष्म निरीक्षण नहीं करेंगे तो हम उसका पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

जिस प्रकार हम आँखों के द्वारा बाह्य जगत् के पदार्थों को देखकर उनका ज्ञान प्राप्त करते हैं उसी प्रकार अच्छे-अच्छे वक्ताओं और व्याख्याताओं के भाषण हम कानों से सुनते है और उन्हें स्मरण रखकर अपने ज्ञान-भांडार की वृद्धि करते है।

२. **भ्रमण**—लेकिन हमारी ज्ञानेंद्रियाँ उसी दशा में अधिक से अधिक ज्ञानार्जन कर सकती हैं, जब कि वे बाहरी दुनियाँ की अधिकाधिक वस्तुओं के देखने तथा ज्ञान-विज्ञान से परिचित विद्वानों तथा व्याख्याताओं के भाषण सुनने में समर्थ हो पाती हैं। अतः देश-विदेश का पर्यटन ज्ञानार्जन का दूसरा प्रधान साधन है। हम घर बैठे न तो समुद्र-तट की शोभा का वर्णन कर सकते हैं, न हिमालय के अपूर्व दृश्यों का मनोरम चित्र वाणी के द्वारा अंकित कर सकते हैं। भौगोलिक तथा ऐतिहासिक लेखों के लिए तो पर्यटन से ही समुचित सामग्री संग्रह हो सकती है।

३ **अध्ययन**—मगर देश-विदेश का भ्रमण करना सब के लिए सुलभ नहीं है। दूर-देशों के पर्यटन के लिए धन, अवकाश, साहस तथा साथियों का सुयोग चाहिए। जिन्हें ये सुयोग नहीं मिलते, उनके लिए तीसरा साधन है अध्ययन। मगर इसका यह तात्पर्य नहीं कि जो भ्रमण-शील हैं, दूर-दूर के देशों की यात्रा करते ही रहते है, उनके लिए अध्ययन आवश्यक नहीं है। विषयों की, जानकारी पाने के लिए अध्ययन तो सब के लिए अनिवार्य-सा है। नये-नये भावों को संगृहीत

करने, उच्च कोटि के विचारकों तथा लेखकों के विचारों को जानने, विभिन्न भाषा-शैलियों से परिचित होकर अपने विचारानुसार कोई उत्तम शैली चुनने तथा विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न विषयों की उत्तमोत्तम पुस्तकों, उत्कृष्ट विद्वानों के लेखों तथा उच्च कोटि की पत्र-पत्रिकाओं का बराबर अवलोकन करते रहना चाहिए। अध्ययन के फलस्वरूप जो नये भाव, शब्द, मुहाविरे, कहावतें आदि मिलें उन्हें सीखकर अपने निबंध में समावेश करने का प्रयत्न करना चाहिए। अध्ययन से ज्ञान-भांडार की वृद्धि होती है, नये-नये भावों और विचारों से अभिज्ञता प्राप्त होती है, शब्दों का भांडार भरा-पूरा रहता है।

४. **अभ्यास**—नये लेखकों को प्रतिदिन कुछ-न-कुछ लिखते रहने का भी अभ्यास करते रहना चाहिए। जब लिखना पूरा हो जाय तब उसे एक बार पढ़कर यह देखना चाहिए कि कहाँ भाव विकृत हुआ है और कहाँ भाषा दोषपूर्ण है। अभ्यास के ही सहारे साधारण प्रतिभा के लेखक भी उच्चकोटि के लेखक हो सकते हैं।

५. चिंता – जिस विषय पर लेख लिखना हो, पहले उस विषय पर मन में अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए। विचार करते समय उस विषय के संबंध में जो-जो भाव मन में उठें उन्हें एक कागज के टुकड़े पर आँक लेना चाहिए। फिर उन भावों को सुंदर शब्दों द्वारा उचित क्रम से विस्तृत कर निबंध का रूप देना चाहिए।

३. निबंध की भाषा

हम कह चुके है कि भाव ही निबंध के प्राण है। इसे यों भी कह सकते हैं कि निबंध हमारे मनोगत भावो की प्रतिमूर्ति होता है। भाषा से ही इस प्रतिमूर्ति का निर्माण होता है; क्योकि भावो की ध्वनिमयी मूर्ति तो भाषा ही है। इस प्रकार भाव ही भाषा के भी प्राण कहे जा सकते हैं। यों तो भाषा के कई रूप होते हैं, मगर निबंध लिखने के लिए इसके

साहित्यिक स्वरूप को ही ग्रहण करना पड़ता है। सुलेखकों का आदर्श साहित्यिक-भाषा ही है। अतएव, लेखक को भाषा की दृष्टि से निम्न-लिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

शब्द और वाक्य

(१) व्याकरण के नियमों के अनुसार निबंध के सभी वर्ण, शब्द और वाक्य शुद्ध रहें। पहली बार पढ़ते ही वाक्य की व्याकरण-संबंधी रचना स्पष्ट समझ में आ जानी चाहिए।

(२) एक वाक्य में केवल एक ही भाव व्यक्त किया जाय, उससे भिन्न और कोई भाव उसमें न आने पावे।

(३) संपूर्ण निबंध में भाषा की एकरूपता का यथाविधि निर्वाह होना चाहिए। भाषा की एकरूपता से ही लेखक के भावों का निर्वाह संभव है। अत्यंत क्लिष्ट भाषा में, जिसमें लंबे-लंबे सामासिक पदों का बाहुल्य हो, लेख लिखने से न तो अथ से इति तक भाषा की एकरूपता रह सकती है और न भावों का निर्वाह ही हो सकता है। हाँ, उचित स्थानों पर कहावतों, लोकोक्तियों तथा मुहाविरों का प्रयोग अवश्य होना चाहिए। इससे भाषा प्रभावोत्पादक और जोरदार बनती है।

(४) रचना में वाक्यों का संतुलन रहना चाहिए। लंबे वाक्यों की रचना में उनके अंग-भंग में ऐसी अनुरूपता रहे कि प्रत्येक वाक्य यथोचित नपा-तुला प्रतीत हो। एक अंग भारी तथा दूसरा हल्का होने से भाषा लचर हो जाती है।

(५) जहाँ तक संभव हो, संस्कृत, अँगरेजी, फारसी आदि परकीय भाषाओं के अप्रचलित और अव्यावहारिक तत्सम शब्दों को अकारण ठूँसते रहने की कोशिश नहीं होनी चाहिए।

(६) लेख में अश्लील शब्दों का प्रयोग नहीं हो। शब्दों, मुहाविरों आदि के प्रयोग में भी यह ख्याल रखना चाहिए कि उनका अपप्रयोग नहीं हो। एकार्थक शब्दों के प्रयोग में उनके सूक्ष्म अर्थ-भेद पर अवश्य ध्यान रहे।

(७) निबंध में न तो निरर्थक शब्द रहें और न निरर्थक वाक्य। उतने ही शब्द प्रयोग में आवें जितने से लिखने का मंतव्य पूरा हो जाय। साथ ही, एक ही शब्द का बार-बार प्रयोग भी नहीं होना चाहिए। ऐसा होने से लेखक के शब्द-भांडार का ओछापन झलक जाता है।

(८) एक शब्द को कई बार दुहराते रहने तथा एक ही भाव को कई वाक्यों में प्रगट करने से भाषा पुनरुक्ति-दोष से ग्रसित हो जाती है। इस दोष से भाषा को बचाना चाहिए। मगर कभी-कभी किसी के कथन को जोरदार बनाने के लिए तथा विषाद, हर्ष, विस्मय, शोक आदि मनोवेगों को व्यक्त करने के लिए वाक्यों और पदों को दुहरा कर लिखना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर भाषा में पुनरुक्ति दोप नहीं आता।

(६) निबंध-रचना की भाषा में विराम-चिह्नों के प्रयोग पर भी विशेप रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।

अनुच्छेद

निबंध के विषय को विभागों में बाँटकर एक अनुच्छेद की बातें दूसरे अनुच्छेद में नहीं जाने देनी चाहिए।

जिस प्रकार पदों के नियमबद्ध संगठन को, जिसमें एक पूरा भाव प्रगट करने की शक्ति हो, वाक्य कहते हैं, उसी प्रकार ऐसे वाक्य-समूह को, जिसमें एक ही भाव विकसित रूप मे प्रदर्शित हो, अनुच्छेद कहते है। संक्षेप मे, सापेक्ष वाक्य-समूह अनुच्छेद कहलाता है।

एक अनुच्छेद समाप्त होने पर नये भाव को लेकर दूसरी पंक्ति से दूसरे अनुच्छेद का लिखना प्रारंभ किया जाता है। अनुच्छेद-संस्थापन मे वाक्यों का संगठन इस प्रकार हो कि विचारों का तारतम्य नष्ट नहीं होने पावे और कथन का क्रमिक विकास तबतक होता जाय जब तक भाव का स्पष्टीकरण न हो जाय। एक भाव के स्पष्ट हो जाने पर सिलसिला तोड़ कर दूसरे अनुच्छेद का लिखना प्रारंभ करना चाहिए।

४. निबंध की शैली

लिखने के ढंग को शैली कहते हैं। कोई लेखक किस प्रकार अपने मानोभवों की अभिव्यक्त करता हैं, उसकी भाषा कैसी है, शब्दों की लेखन-प्रणाली कैसी है, ये ही बातें उसकी शैली में प्रतिध्वनित होती हैं। इस प्रकार शैली निबंध का सर्वस्व है।

भाषा की सैकड़ों शैलियाँ हो सकती है। भावो के विकास के साथ-साथ भाषा का विकास होता हैं। और भाषा के विकास के साथ-साथ भाषा की शक्तियों में भी परिवर्तन होता रहता है। आज से सौ वर्ष पहले हिंदी में गद्य लिखने की जितनी शैलियाँ प्रचलित थीं, वे सब आज बहुत पीछे पड़ गई हैं। उनकी जगह अनेकानेक नयी शैलियाँ प्रचलित हो गई हैं। अतएव, नवसिखुए लेखकों को चाहिए कि वे समझ-बूझकर किसी शैली का अनुसरण करें। जिन लेखकों की भाषा टकसाली होती हैं, जो अधिकार के साथ लिखने की क्षमता रखते हैं, वैसे ही लेखकों की शैलियाँ मान्य होती है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० रामचंद्र शुक्ल, श्री कामताप्रसाद गुरु, श्री शिवपूजन सहाय, स्वर्गीय प्रेमचंद्र आदि लेखकों की शैलियाँ इन दिनों सर्वथा मान्य हैं। विद्यार्थियों को ऐसे ही प्रशस्त लेखको की शैली का अध्ययन कर उससे लाभ उठाना चाहिए।

भाषा की शैली निर्धारित करते समय शब्दों की एकरूपता पर विशेष ध्यान देना चाहिए। प्रायः देखा जाता है कि एक ही लेखक एक ही निबंध में कहीं 'लिए' लिखते हैं तो कहीं 'लिये'; कहीं 'गये' लिखते हैं तो कहीं 'गए'; कहीं 'चाहिए' लिखते है तो कहीं 'चाहिये'; कहीं 'पृथ्वी' लिखते हैं तो कही 'पृथवी'; किसी शब्द में विभक्ति सटाकर लिखते हैं तो किसी में पृथक्। मगर शब्दों का अक्षर-विन्यास (हिज्जे) सर्वथा एक-सा ही होना चाहिए। यदि संस्कृत के ढंग से अनुस्वार के

स्थान में पंचम वर्ण का प्रयोग किया जाय तो वैसा ही सब स्थानों में करना उचित होगा।

परकीय भाषाओं के शब्दों के प्रयोग के संबंध में कुछ लोगों का कथन है कि दूसरी भाषा का एक भी शब्द लेने की आवश्यकता नहीं है। थर्मामीटर को तापमापक, फोटोग्राफी को छाया-चित्रण, रेलगाड़ी को धूम्रशटक, पसिंजर ट्रेन को यात्रवाहक धूम्रशटक, दावात को मसिपत्र आदि संस्कृत शब्दों से पुकारा जाय। इसके विपरीत कुछ लोग अँगरेजी, फारसी, अरबी आदि भाषाओं के शब्दों को बेधड़क प्रयोग में लाते हैं। मगर हमारी समझ में अन्य भाषाओं के जो शब्द सामान्य रूप से प्रचलित हो चुके है उनके स्थान में संस्कृत के अप्रचलित तत्सम शब्दों को रखना अधिक युक्तिसंगत नहीं है। कुछ लोग अँगरेजी, फारसी के शब्दो के तत्सम रूपों को ही रखने के पक्ष में है और ऐसे शब्दों के प्रयोग के समय उनके उच्चारण की दृष्टि से जहाँ जरूरत होती है, उनके नीचे बिंदी और ऊपर से ˘ यह चिह्न लगाते है। मगर इससे भाषा की जटिलता बढ़ती है। हमारी समझ में फारसी-अरबी के तत्सम शब्दों में, उनकी तत्समता निवाहने के लिए बिंदी आदि लगाना उचित नहीं है। साथ ही, उनमे विभक्तियाँ आदि भी हिंदी की ही लगनी चाहिए अर्थात् हिंदी व्याकरण के नियमों से ही उनका पद-विन्यास होना चाहिए।

५. अलंकार

जिस प्रकार शरीर की वाहरी सुंदरता लाने के लिए लोग अँगूठी, हार, कंकन आदि आभूषण पहनते है उसी प्रकार भाषा में वाक्य-सौंदर्य लाने के लिए अलंकारो का प्रयोग किया जाता है। जो वाक्य अलंकार-युत होते है वे अलंकृत वाक्य कहलाते है।

जहाँ शब्दो और अर्थ मे कोई चमत्कार आ जाता है, वहाँ अलंकार होता है। या यो कहिए कि भाव-प्रकाशन में सुबोध रीति का परिवर्तन

ही अलंकार है। जहाँ क्लिष्ट भावों को शब्दों में व्यक्त करना होता है, वहाँ उन्हें सुगमतापूर्वक दरसाने के लिए अलंकार का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए—'उनका मुख सुंदर है'—इस वाक्य को हम कई तरह के अलंकृत वाक्यो में लिख सकते है—मुख चंद्रमा के समान सुंदर है। अहा, मुख है या चंद्रमा! मुँह देखकर चंद्र लज्जित हो उठा! मुख है या पृथिवी पर चाँद उगा है। मुख को चंद्र समझ चकोर उसी ओर एकटक निहारता है इत्यादि।

मगर गद्य में अलंकारों का प्रयोग खूब सोच-समझकर करना चाहिए। अलंकारों का उचित प्रयोग नहीं होने से वाक्य का अर्थ भी उलट सकता है। जहाँ अलंकारों के कारण अर्थ में अस्पष्टता आ जाय वहाँ इनका प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए। अलंकारों के चलते भाषा के स्वाभाविक प्रवाह को कभी अवरुद्ध नहीं करना चाहिए।

जहाँ शब्दों में चमत्कार दिखाया जाता है वहाँ **शब्दालंकार** होता है। और जहाँ अर्थ में चमत्कार लाया जाता है वहाँ **अर्थालंकार** होता है। शब्दालंकार के मुख्य तीन भेद है—अनुप्रास, यमक और श्लेष।

जहाँ शब्दों के आरंभ में या अंत में एक वा अनेक वर्णों की आवृत्ति एक या अनेक बार हो वहाँ **अनुप्रास** होता है। जैसे—'बाकरगंज में बनवारीलाल नामक बनिया बास करता था'—इस वाक्य में कई शब्दों के आरंभ में 'ब' वर्ण की आवृत्ति कई बार हुई है। जहाँ वर्णों की ही नहीं, बल्कि संपूर्ण शब्दों की आवृत्ति एक या अनेक बार हो, मगर उनके अर्थ भिन्न-भिन्न हों वहाँ **यमक** होता है। जैसे—'कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय'। यहाँ 'कनक' शब्द की एक बार आवृत्ति हुई है और अर्थ मे भी भिन्नता आ गई है—एक 'कनक' का अर्थ है 'सोना' और दूसरे का 'धतूरा'।

जहाँ एक शब्द के एक से अधिक अर्थ ध्वनित हो वहाँ '**श्लेषालंकार**' होता है। जैसे;

'चरण' धरत काँपत हृदय, नहिं चाहत अति शोर।
'सुवरन' को खोजत फिरत, कवि व्यभिचारी चोर।

ऊपर के पद्य में 'सुवरन' और 'चरण' शब्द में श्लेष है। यहाँ 'सुवरन' के तीन अर्थ हैं—कवि के लिए सुन्दर वर्ण या अक्षर, व्यभिचारी के लिए उत्तम वर्ण की स्त्री और चोर के लिए सोना। चरण दो अर्थ में आया है—व्यभिचारी और चोर के लिए 'पैर' के अर्थ में और कवि के लिए छंदों के चरण के अर्थ में।

अर्थालंकार के सैकड़ों भेद हैं, जिनमें मुख्य हैं उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि। 'उपमा' का अर्थ है समता करना, सादृश्य बतलाना। सादृश्य दो पदार्थों में होता है। जिनमें सादृश्य दिखलाया जाता है उन्हें 'उपमान-उपमेय' कहते हैं। जिसका आश्रय लेकर दो पदार्थों में समता बताई जाती है उसे 'साधारण धर्म' कहते हैं। इसके अतिरिक्त उपमा के लिए 'सादृश्यवाचक' शब्द की जरूरत पड़ती है। इस तरह उपमा अलंकार के चार अंग हुए—उपमना, उपमेय, साधारण धर्म, और वाचक।

संक्षेप में, जिसकी समता बतलाई जाय, उसे **उपमेय**; जिस पदार्थ से समता बतलाई जाय उसे **उपमान**; उपमान के जिस गुण से उपमेय की समता बतलाई जाय, उसे **साधारण धर्म** और सादृश्य शब्द को **वाचक** कहते हैं। जैसे 'मुख चंद्रमा के समान सुन्दर है'—इस वाक्य में 'मुख' उपमेय, 'चंद्रमा' उपमान, 'सुन्दर' साधारण धर्म और 'के समान' वाचक हैं।

उपमेय को उपमान रूप में वर्णन करना **रूपक अलंकार** कहलाता है। इस अलंकार में उपमेय उपमान के रूप में बतलाया जाता है। इसलिए इसमें साधारण धर्म और वाचक नही रहते। संक्षेप में उपमान में उपमेय का आरोप होने से 'रूपक' होता है। जैसे; मुखकमल, चंद्रमुख, कमलनयन आदि।

जहाँ उपमान की संभावना उपमेय के रूप में की जाती है वहाँ 'उत्प्रेक्षा' अलंकार होता है। इस अलंकार के वाचक शब्द हैं जनु,

मनु, मानों, जान पड़ता हैं आदि। जैसे: बापू मानों अहिंसा की सजीव प्रतिमा थे।

६. निबंध के भेद

विषय अनंत है; अतः निबंध के भी अनेक भेद हो सकते है; फिर भी उनमें चार मुख्य हैं— (१) वर्णनात्मक, (२) विवरणात्मक, (३) विवेचनात्मक और (४)भावात्मक।

(१) **वर्णनात्मक**—इस प्रकार के लेखों में जीव-जन्तुओं, नगरों, गाँवों, नदियों, पहाड़ों, प्राकृतिक, दृश्यों, कारखानों, योजनाओं, वस्तुओ की निर्माण-विधि आदि का व्यौरेवार वर्णन रहता है।

(२) **विवरणात्मक**—इस प्रकार के लेखों में किसी काल में बीती हुई बात का विवरण रहता है। कथाओं का कहना; घटनाओ, लड़ाइयों, यात्राओं, सम्मेलनों, राजाओं के शासन-काल आदि का विवरण देना—ये सब इस प्रकार के निबंधों के मुख्य विषय है।

(३) **विवेचनात्मक**—इस प्रकार के लेखों में पक्ष-प्रतिपक्ष प्रतिपादन, किसी वस्तु या प्रथा के गुण-दोष का विवेचन, सिद्धांतों का स्पष्टीकरण, आलोचनाएँ आदि रहते है। इस प्रकार के लेखों के विषय गहन होते हैं और उनके प्रतिपादन में विकसित बुद्धि की आवश्यकता होती हैं।

(४) **भावात्मक**—इस प्रकार के लेख में भावों की प्रधानता रहती हैं, बुद्धि की अपेक्षा हृदय की भावुकता से अधिक काम लिया जाता है। ऐसे लेख प्रायः गद्य-काव्य के अंतर्गत आते हैं। श्री वियोगी हरि, राय कृष्णदास आदि भावात्मक लेखों के सिद्धहस्त लेखक है।

उपर्युक्त चारों प्रकार के निबंधों के भी अनेकानेक भेद, प्रभेद हो सकते है।

७. निबंध लेखन-विधि

निबंध लिखने में सबसे पहले विषय का चुनाव किया जाता है। फिर उसके संबंध की सारी मुख्य-मुख्य बातें समझ कर मन में बैठा लेनी

पड़ती है और तव वही वातें लिखनी होती है, जो विषय से संवंध में रखती है। निवंध में जहाँ आवश्यकता हो, वहाँ महत्त्व की बातें अपने मूल रूप में भी दी जा सकती है मगर उनके अंत में यह लिख देना चाहिए कि ये वातें किस पुस्तक की या किस लेखक की है।

क्रमवद्धता के लिए निवंध के विषय की मुख्य-मुख्य वातों को अलग-अलग विभागों में बाँट देना चाहिए और उनके शीर्षक बना लेना चाहिए। इससे एक लाभ यह है कि लेख में आवश्यक बातें छूटने नहीं पातीं। दूसरा लाभ यह है कि विपय के विभागों के वर्णन मे एकरूपता रहती है। ऐसा होने की कम संभावना रहती है कि किसी अंग पर तो वहुत-सी वातें लिखी जायें और किसी अंग पर बहुत ही थोड़ी; अथवा अनावश्यक अंग पर वहुत और आवश्यक अंग पर कम।

निवंध के मुख्यत: प्रधान अंग होते हैं—प्रारंभ, मध्य और अंत। आरंभ में वे वातें रहें जिनसे पढ़नेवाले को विपयं का साधारण परिचय हो जाय। आरंभ में ही लेख का उद्देश्य स्पष्ट हो जाना चाहिए। संक्षेप में, निवंध का प्रारंभ आकर्पक होना चाहिए।

निवंध का मध्य भाग सवसे अधिक महत्त्व का होता है। विषय की मुख्य-मुख्य वातें, अच्छे-अच्छे तथ्य, विचार तथा उदाहरण निवंध के मध्य में ही रहते है।

जव निवंध का प्रारंभ आकर्षक हो तथा मध्य का भी निर्वाह उचित रीति से हो जाय तव अंत निवाहना विशेष कठिन नहीं है। अंत में सब वातों का सारांश दो-चार वाक्यों में देना चाहिए।

द्वितीय परिच्छेद

[वर्णनात्मक निबंध]

१. लोहा

विषय-विभाग— (१) साधारण वर्णन, (२) आकृति, वर्ण, रूपादि, (३) पूर्व अवस्था (बनावटी रहने से आविष्कार का इतिहास), (४) लाभ, हानि और (५) उपसंहार।

साधारण वर्णन—लोहा खनिज धातु-विशेष एक अमिश्रित और ठोस पदार्थ है। मनुष्य जाति के लिए लोहा सब धातुओं की अपेक्षा अधिक आवश्यक धातु है। यह जल की अपेक्षा प्रायः आठगुना अधिक भारी होता है।

आकृति-वर्ण आदि—लोहा बहुत ही कठिन धातु है। यह देखने में काले रंग का होता है। जब लोहा खुले स्थान या जल में रहता है तब इसमें सहज में ही मोरचा लग जाता है। विशुद्ध लोहा सब जगह नहीं पाया जाता है। रासायनिक प्रयोगों के द्वारा जब यह विशुद्ध किया जाता है तब इससे बहुत-सी चीजें बनायी जाती हैं। विशुद्ध लोहा उजला होता है। लोहा अग्नि में तपाने से चमकने लगता है। इसे गलाकर तरल पदार्थ में परिणत करने के लिए पद्रह सौ डिग्री से भी अधिक ताप की आवश्यकता पड़ती है। लोहा चुंबक के द्वारा आकृष्ट होता है। विद्युत् अथवा चुंबक के सहयोग से इसमें क्षणिक चुंबकत्व आ जाता है। लोहा जल में बह नहीं सकता।

लोहे की पहली अवस्था—लोहा संसार के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। विशेष कर भारतवर्ष, इंगलैंड, स्वीडेन, जर्मनी, हालैंड स्पेन, यूरल पहाड़, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि स्थानों मे लोहे की खान

बहुतायत से पायी जाती है। प्राकृतिक अवस्था में विशुद्ध लोहा नहीं पाया जाता। इसके साथ ताँबा, गंधक आदि पदार्थ मिले रहते हैं। इस तरह के लोहे को अँगरेजी में पिग आयरन (Pig Iron) कहते है।

उपयोगी बनाने के उपाय—खान में गंधक आदि मिश्रित लोहा मिलता है। इसे व्यवहारोपयोगी बनाने के लिए अनेक तरह के उपायों का अवलंबन करना पड़ता है। अनेक प्रकार के रासायनिक प्रयोगों के द्वारा इसमें मिले हुए गंधकादि धातुओं को दूर कर जब इसे विशुद्ध बनाया जाता है, तब यह हमारे काम की चीज होती है। विशुद्ध लोहा तीन भागों में विभक्त किया गया है। पीटा हुआ लोहा (Wrought Iron), गलाया हुआ लोहा (Cast Iron) और इस्पात (Steel Iron)। रासायनिक प्रयोगों के द्वारा लोहे को इन तीन भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित कर सकते है। पीटे हुए लोहे में अग्नि का उत्ताप पहुँचाने से वह कोमल हो जाता है और वैसी अवस्था में उससे नाना प्रकार की चीजें बन सकती है। गले हुए लोहे में कार्बन का अंश सबसे अधिक और पीटे हुए लोहे में सबसे कम रहता है। कार्बन का अंश निकाल कर इस्पात बनाया जाता। इस्पात अन्य लोहों से कड़ा और मजबूत होता है।

लाभ—यद्यपि लोहा अन्य धातुओं की अपेक्षा कम मूल्यवान् धातु है तथापि सबसे अधिक उपयोगी और लाभदायक है। जिस देश में लोहे का जितना ही अधिक उपयोग किया जाता है वह देश वर्तमान समय में उतना ही अधिक सभ्य गिना जाता है इसलिए लोहा वर्तमान सभ्यता का एक चिह्न-स्वरूप है। अति प्राचीन काल में, जिसे इतिहास में प्रस्तरयुग कहा गया है, दुनियाँ के लोग लोहे का व्यवहार नहीं जानते थे और पत्थरों के ही अस्त्र-शस्त्र तथा खेती के औजार आदि बनाते थे। लेकिन ज्यो-ज्यों सभ्यता का विकास हुआ त्यों-त्यो लोगों ने लोहे का व्यवहार करना सीखा और लोहे के ही अस्त्र-शस्त्र, औजार आदि

बनाने लगे। आधुनिक काल में तो लोहे का व्यवहार इतना बढ़ गया है कि बिना इसके हमारा एक काम भी चलने को नहीं। लोहे के ही बने औजार द्वारा हमारी खेती होती है। लड़ाई में लोहे के ही बने अस्त्र-शस्त्र उपयोग में लाये जाते है। रेल, जहाज आदि लोहे के ही बनते है। लोहा घरों में लगाया जाता है। कहाँ तक गिनाया जाय; खाने, पीने, बैठने, उठने आदि की सभी चीजो की सामग्री बनाने में लोहे की ही आवश्यकता पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त छड़ी, छूरी, कैंची, बक्स, संदूक आदि हजारों तरह की संसारोपयोगी चीजें इससे बनायी जाती है। इस बीसवी सदी के वैज्ञानिक युग में तो लोहे ने संसार में एक प्रकार की क्रांति मचा दी है। दुनियाँ की औद्योगिक क्रांति में लोहे का सबसे अधिक भाग है। विश्व का सारा व्यापार इसी पर अवलंबित है क्योंकि आधुनिक काल मे कल-पुरजे, यंत्र, मशीनगन आदि जितनी नयी-नयी चीजों का आविष्कार हुआ है वे सभी लोहे की ही बनायी जाती है।

हानि—जहाँ लोहे से संसार का महान् उपकार हो रहा है वहाँ इससे हानि भी कम नहीं है। लोहे की अनेक प्रकार की विषैली मशीन आदि के आविष्कार से लोगों के हृदय में युद्ध करने की भयंकर प्रेरणा बराबर जगी रहती है जिससे संसार के रंग-मंच पर खून-खराबी की आशंका सर्वदा बनी रहती है। कहा जाता है कि गत योरोपीय महायुद्ध छिड़ने का एक कारण लोहा भी था।

उपसंहार—भगवान की लीला भी विचित्र है। यह उन्हीं की लीला है कि ऐसी उपयोगी चीजें संसार के प्रायः सभी हिस्सों में बहुतायत से पाई जाती हैं। लोहे का भस्म मूल्यवान औषधि है।

२. हिंदचीन का शिवधाम : अंगकोरवाट

जिस प्रकार सात समुद्र पार से अँगरेज यहाँ व्यापार करने आये और धीरे-धीरे अपना राज्य कायम कर लिया, उसी प्रकार आज से दो-ढाई हजार वर्ष पहले हमारे देश के व्यापारी भी नावों पर चढ़कर देश-

देशांतर में व्यापार करने के लिए जाते थे और अवसर देखकर जहाँ-तहाँ अपना राज्य भी कायम कर लेते थे।

हमारे देश के पूरब में श्याम, वर्मा, मलाया, हिंद-चीन, हिंदेशिया के द्वीप-समूह आदि अनेक छोटे-बड़े देश हैं। भारतीय व्यापारी इन्हीं देशों में व्यापार करने की गरज से जाया करते थे और ढेर-का-ढेर सोना लेकर वापस आते थे। वे व्यापारी उन देशों को स्वर्ण-द्वीप या स्वर्ण-भूमि या सोने का देश कहा करते थे, क्योंकि वहाँ इन्हें खूब सोना मिलता था। इन व्यापारियों के साथ-साथ यहाँ के क्षत्रिय राजकुमार भी वहाँ पहुँचने लगे और अपने राज्य का विस्तार करने लगे।

कहते हैं, आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व दक्षिण भारत का एक क्षत्रिय राजकुमार कौंडिन्य कंबोडिया पहुँचा। कंबोडिया हिंद-चीन का एक प्रदेश है। वहाँ पहुँच कर उसने नागपुत्री सोमा से विवाह किया और अपना राज्य कायम किया। वह कंबोज-राजवंश का राजकुमार था, इसलिए उसने अपने राज्य का नाम भी कंबोज-राज्य रखा। उसे महाभारत के सुप्रसिद्ध योद्धा द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने एक भाला दिया था। उसी भाले को उसने अपने राज्य के एक मैदान में गाड़ दिया और वहीं अपनी राजधानी बसाई। उसने अपने देश के एक हजार से भी अधिक ब्राह्मणों को बुलवाकर कंबोज-राज्य में बसा दिया। इन ब्राह्मणों ने वहाँ के निवासियों को हिंदू-धर्म की दीक्षा दी और उनकी पुत्रियों से विवाह कर वहीं बस भी गये।

छठी शती से कंबोज-राज्य का विस्तार प्रारंभ हुआ। धीरे-धीरे कोचीन-चीन, लाओस, श्याम, उत्तरी वर्मा तथा मलय देश भी इस राज्य के अंदर आ गये। इस तरह कंबोज एक विशाल राज्य बन गया और लगभग आठ-नौ सौ वर्षों तक कायम रहा। जयवर्मन, यशोवर्मन, सूर्य-वर्मन आदि महाप्रतापी राजाओं ने अपनी वीरता और पराक्रम से राज्य का खूब विस्तार किया। अंत में १५ वी शती के आसपास पूरब से अना-

मियों ने और पश्चिम से थाइयों ने इस राज्य पर अनेक हमले किये और सारे राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया।

कंबोज-राजाओं में से जयवर्मन ने अंगकोर नामक स्थान में एक शानदार नगर का निर्माण कर वहीं अपनी राजधानी बनाई थी। जब नगर-निर्माण का काम अधूरा ही था तभी जयवर्मन का देहांत हो गया। उसके बाद उसका लड़का यशोवर्मन सम्राट् हुआ। उसने नगर-निर्माण का शेष काम पूरा किया और उसका नाम भी अपने नाम पर यशोधरपुर रखा।

यशोधरपुर अपने युग में संसार का सबसे अधिक शानदार नगर था। यह वर्गाकार विशाल नगर दो मील से भी ज्यादा लंबा और इतना ही चौड़ा भी था। नगर के चारों ओर पत्थर की ऊँची दीवारें थीं और दीवारों के बाद ३३० फुट चौड़ी और पानी से लबालब भरी गहरी खाई थी। नगर में प्रवेश करने के लिए पाँच शानदार प्रवेश-द्वार थे और इन द्वारों से नगर के मध्य में जाने के लिए लगभग एक-एक मील तक लंबे तथा सौ-सौ फुट चौड़े राजपथ बने हुए थे। राजपथ के दोनों ओर सघन वृक्षों की कतारें लगी हुई थीं। नगर के भीतर जहाँ-तहाँ अनेक सरोवर सुशोभित थे जिनके घाट बँधे हुए थे।

राजमहल नगर के ठीक मध्य-भाग में था, जो १२०० फुट लंबे और १३ फुट ऊँचे पत्थर के चबूतरे पर बना हुआ था। सारे महल में ४० ऊँचे-ऊँचे गुंबज बने हुए थे जिनमें बीच का गुंबज १५० फुट ऊँचा था। सभी गुंबजों की दीवारों में चारों ओर ध्यानमग्न मुद्रा में महादेव की मूर्तियाँ जड़ी थीं। नगर के कुछ ही दूर पर एक विशाल शिवधाम बनाया गया था जो आज भी अंगकोरवाट के नाम से विख्यात है। यह शिवधाम दुनियाँ का एक आश्चर्य ही है। सारा धाम ही चबूतरानुमा है। एक चबूतरे पर दूसरा और दूसरे पर तीसरा चबूतरा बना हुआ है—ये चबूतरे पत्थरों की ईंटों से बहुत मजबूत बने हुए हैं। एक चबूतरे पर से

दूसरे पर जाने के लिए पत्थर की चौड़ी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। सीढ़ियों के दोनों किनारों में शुरू से अंत तक कलापूर्ण मूर्तियाँ जड़ी हुई हैं। प्रत्येक चबूतरे पर अनेक ऊँचे-ऊँचे गुंबज बने हुए हैं। तीसरे चबूतरे के चारों कोनों पर आठ गुंबज हैं और मध्य में शिवजी का एक विशाल मंदिर है जो पृथिवी की सतह से २१३ फुट की ऊँचाई पर है। तीसरे चबूतरे के गुंबज की ऊँचाई १८० फुट है और उन पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ भी बनी हुई है।

यह अद्भुत शिवधाम चारों ओर से पत्थर की दीवारों से घिरा हुआ है जिनमें अनेक फाटक और दरवाजे हैं। घेरे की दीवारें पूरब से पश्चिम लगभग पौन मिल और उत्तर से दक्षिण आध मील तक लम्बी हैं। दीवारों के बाद ७०० फुट की चौड़ी खाई खुदी हुई है। शिवधाम तक आने के लिए खाई पर एक ३६ फुट चौड़ा पत्थर का सुदृढ़ पुल है। पुल के बाद इतनी ही चौड़ी और चौथाई मील तक लंबी पक्की सड़क पहले चबूतरे के प्रवेश-द्वार तक चली गई है। इतने घेरे का तथा इस तरह का शानदार शिवधाम तो हमारे अपने देश में भी कहीं नहीं है। तभी तो हमारे ही देशवासियों द्वारा बनाया गया यह शिवधाम संसार का एक महान् आश्चर्यमय पदार्थ माना जाता है।

यशोधरपुर या अंगकोर नगर आज मिट्टी में मिल गया। कही उसका नाम-निशान भी नहीं है; मगर, उसी जगह जंगल के बीच, अंगकोरवाट का गगनचुंबी शिवालय ज्यों-का-त्यों स्थिर रहकर दूसरे देश में भी हमारी संस्कृति के गौरव का बखान कर रहा है।

३—फूल

फूल किसको प्यारे नहीं लगते? उन्हें देखते ही किसकी हृदय-कली नहीं खिल उठती? उनकी रंग-बिरंगी श्वेत, नीली, पीली, लाल, पंखुड़ियों को देखकर किसका हृदय गद्गद नहीं हो उठता? उनकी सुवास किसके मन में नहीं बस जाती? तभी तो कवियों को जितना मसाला फूलों

से मिला है, और मिलता है, उतना शायद ही और कहीं से मिला हो, या मिलता हो। संस्कृत की कविता और तदनुरूपी हिंदी की कविता कमल की उपमाओं से भरी है। पद पद्म-पराग, कर-कमल, पुंडरीकाक्ष, नीलोत्पल-दलश्याम, मुखाब्ज, हृत्पंकज आदि की भरमार तो है ही, कुमुदिनी, चंपक, केतकी, कुंद, जपा, किंशुक आदि की उपमाएँ भी स्थल-स्थल पर अत्यंत हृदयग्राहिणी हैं। फारसी-उर्दू वालों ने भी 'गुलो-बुल-बुल, से अपनी भाषा को और भी सरल बना दिया है। अँगरेजी में भी इस बात की कमी नहीं है।

फूलों की प्रतिष्ठा का प्रत्यक्ष कारण तो यही कहा जा सकता है कि उसकी सुषमा से नयनेंद्रिय की तृप्ति होती है; उनकी सुवास से घ्राणेंद्रिय की परम तुष्टि होती है; उनके कोमल, स्निग्ध स्पर्श से त्वचा को सुख मिलता है और उनके सुस्वादु मकरंद से रसेंद्रिय को हर्ष होता है। चार-चार इंद्रियों को एक साथ मुग्ध करनेवाला गुण पुष्प से अधिक और कहाँ मिलता है?

साधारण रीति से हम कह सकते हैं कि परमात्मा ने फूल हमारे लिए या अपने लिए बनाये हैं; क्योंकि फूलों को हम सूँघते हैं, उनकी गुलकंद आदि दवाएँ बनाते हैं, उनका अर्क और इतर निकालते है, अगस्त, गोभी आदि को खाने के काम में लाते हैं और देवों पर चढ़ाते हैं। परंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो फूल प्रधानतः उन पौधों की भलाई के लिए हैं, जिनमें वे लगते है। फूल फल का पूर्वरूप है; फल का गर्भ फूल में रहता है। जैसे कोई अमूल्य, कोमल पदार्थ रूई या रेशम में लपेट कर पेटी के भीतर रखा जाता है, वैसे ही पौधे का अत्यंत आवश्यक भाग अर्थात् भावी फल का गर्भ, कोमल पँखुड़ियों में लिपट कर 'ढोंढ़ी' के भीतर सुरक्षित रहता है।

आइए, प्रथमावस्था से लेकर फूल की परीक्षा करें। पहले नन्हीं-सी हरे रंग की कुछ गोलाकार, ढोंढ़ी, हर तरह से ढँकी निकलती है। इस

[illegible] की बाली पौधे की चोटी पर लगती है। कुकड़ी के चारों ओर जो [illegible] होते हैं, वे ही पौधे के गर्भ-केसर हैं। इस प्रकार [illegible] का अंत नहीं होता।

[illegible] सेवा-भाव से प्रेरित होकर फूलों में नही जातीं बल्कि [illegible]—[illegible] पीने के लिए, शहद इकट्ठा करने के लिए—जाती हैं [illegible] पौधों का बड़ा काम निकलता है। एक बात यह भी देखने [illegible] कि श्वेत पुष्प प्रायः रात्रि को खिलते हैं। कवियों ने चंद्रमा का [illegible] है; क्योंकि रात्रि को चंद्रमा का उत्कर्ष होता है, और [illegible] फूलती है। बेला, चमेली आदि अन्य श्वेत पुष्प [illegible] में ही खिलते हैं। रात्रि में रंगदार फूलों का रंग नहीं [illegible], परन्तु श्वेत पुष्प दिखलाई देते हैं।

[illegible] जहाँ तक निरीक्षण और विचार करते हैं, [illegible] कारीगरी ही देखते हैं और उस कारीगरी का [illegible] मानने के लिए विवश हो जाते हैं कि "पर-[illegible] कला-कौशल की अनंतता और किसमें हो सकती है !"

—श्री चंद्रमौलि सुकुल, एम० ए०

८. दीपावली

[illegible] सांस्कृतिक विकास और आर्थिक कल्याण—[illegible] संयोग के रूप में भारतीय संस्कृति [illegible] में, पूर्ण मानव जाति के आध्यात्मिक [illegible] पर ही हमारी संस्कृति का विकास [illegible] संकुचित है और न भौतिक [illegible] स्वार्थों पर आधारभूत [illegible] आध्यात्मिक प्रगति के साथ-[illegible] गया है। धर्म और संस्कृति [illegible] है हमारी दीपावली का त्योहार।

दीपावली का अर्थ है दीपकों की पंक्तियाँ—प्रकाश का पुंज! कार्तिक की अमावस्या की रात हम लक्ष्मी-पूजा के निमित्त अपने-अपने घरों का दीपकों की ज्योति से जगमगा देते हैं। इसलिए इस त्यौहार का नाम पड़ गया है दीपावली या दीवाली। और चूँकि इस त्यौहार में हम सामूहिक रूप से श्री, समृद्धि और सौंदर्य की देवी का आवाहन करते हैं, इसी हेतु यह हमारा एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय त्यौहार भी है।

कार्तिक मास वर्षा और शीत—इन दोनों ऋतुओं का संक्रांति-काल है। मानव पावस की प्रचंडता से त्राण पाकर शीत की भीषणता से संघर्ष करने के लिए अग्रसर होने चला है। अतः इसे कुछ समय के लिए विश्राम चाहिए, शांति चाहिए। यही कार्तिक मास उसे शांति और विश्राम की सुविधा प्रदान करता है। तभी तो जन-साधरण और कवि समाज इस शांतिदायिनी शरत ऋतु के माधुर्य और सौंदर्य की प्रशंसा में एक दूसरे से होड़ ले रहा है तथा प्रसन्नता और कृतज्ञता-प्रकाश की भव्य भावनाओं से ओत-प्रोत होकर अनेकानेक पर्वों, त्यौहारों और उत्सवों के द्वारा उस ऋतु की महत्ता का प्रदर्शन कर फूले नहीं समाते। मानव-हृदय के ये ही आनंद-स्रोत दीपावली के शुभावसर पर एक साथ मिलकर ज्योति-शिखाओं में परिणत हो सारे विश्व को अमा-निशा में भी प्रकाशमय कर देते हैं, और उस स्वर्गीय प्रकाश में मानवों की समृद्धि की आशा सहसा ज्यतित हो उठती है। गंदगी और रोग का मूलोच्छेद करनेवाला, शांति और स्वास्थ्य का प्रदाता तथा मानव-हृदय मे नवजीवन का संचारक दीपावली का यह शुभ्र प्रकाश-पुंज राजाओं और पूँजीपतियों के गगनचुंबी राजप्रासादों और अट्टालिकाओं से लेकर निर्धन किसानों और श्रमजीवियो की झोपड़ियो तक में समान भाव से श्री-समृद्धि और सौंदर्य का नव-संदेश बिखेर देता है।

आर्थिक दृष्टिकोण से हमारे देश में पावसांत, वर्षांत का भी द्योतक है और दीपावली में लक्ष्मीपूजा के बाद से ही नव वर्षारंभ माना जाता है।

उसी दिन से आय-व्यय के नये खाते भी चालू किये जाते हैं। वर्षा ऋतु में लोगों के घर-द्वार जीर्णप्रायः हो जाते हैं। मिट्टी के घर तो जहाँ-तहाँ चू कर नष्टप्रायः भी हो जाते हैं। सर्वत्र कूड़े-कर्कट का ढेर लग जाता है। असंख्य कीट-पतंग उत्पन्न होकर मानव-समाज के कष्ट के कारण बन जाते है। अत्यधिक गंदगी रोग के विस्तार में सहायक बन जाती है। मानवों का आवास गंदगी का अखाड़ा बन जाता है। फलतः श्री और समृद्धि की देवी महालक्ष्मी की बड़ी बहन दरिद्रा देवी को मानवों के घर में घुसकर उन्हें रोग, शोक और निर्धनता का शिकार बनाने का अवसर मिल जाता है; क्योंकि भारतीय धर्म-शास्त्र के कथनानुसार दरिद्रा का वास वहीं संभव है जहाँ गंदगी का राज्य हो।

कार्तिक मास के प्रवेश से ही लोग निश्चित-से हो जाते है कि अब पावस का अंत हो गया। अतः तमाम झाड़-बुहार प्रारंभ हो जाती है। दरिद्रा देवी को बाहर निकाल कर महालक्ष्मी की प्रतिष्ठा के लिए स्वच्छता आवश्यक है। जहाँ निर्मलता नहीं, स्वच्छता नहीं, वहाँ श्री और समृद्धि की देवी का वास नहीं—इसी विश्वास से अनुप्राणित होकर क्या धनी, क्या निर्धन, सभी अपने-अपने घरों को साफ-सुथरा करने में तल्लीन हो जाते हैं। धनी अपनी अट्टालिकाओं के जीर्णांश को दुरुस्त कर उनमें चूना पोतते हैं, उन्हें हर तरह से सजाते हैं और निर्धन अपने झोपड़ों को मिट्टी के गारों से ही लेप-मूँद कर संतुष्ट रहते हैं। इस प्रकार क्या धनी, क्या निर्धन, सभी अपने-अपने घर-द्वार दीपावली तक परिष्कृत कर लेते है। इसके बाद कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी अर्थात् धनतेरस के दिन काँसे, पीतल आदि के बर्तनों के विक्रेता सारा दिन अपनी-अपनी दूकान के बर्तनों के बरसाती जंग को छुड़ा कर उनमें चमचमाहट लाते हैं और उन्हें दूकान में एक सिलसिले से सजाते हैं। रात्रि के प्रवेश करते ही उनकी दूकानों में खरीददारों भी झुकी लग जाती है। पिछले वर्ष महालक्ष्मी की पूजा के अवसर पर वणिक या गृहस्थ परिवार जो द्रव्य अपने-अपने गल्ले या तहबील में रख

छोड़ते हैं उसी द्रव्य से नवीन पूजापात्र खरीद कर वे अपनी-अपनी समृद्धि की देवी की पूजा का प्रसाद तथा अन्य पूजन-सामग्री उसी नव-पात्र में सजाते हैं। पूजा-पात्र के अतिरिक्त अन्य आवश्यक वर्तनों का क्रय भी उसी दिन शुभ समझा जाता है। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी यमराज की चतुर्दशी मानी जाती है। उस दिन सूर्य्यास्तोपरांत प्रत्येक हिंदू परिवार अपने-अपने घर के बाहर रास्ते पर गीले गोबर का दीपक जला कर यमराज को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते है।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन दीपावली का महोत्सव प्रारंभ हो जाता है। अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार प्रत्येक हिंदू परिवार घरबाहर की सजावट कर माधुर्य और सौंदर्य, धन और ऐश्वर्य की महादेवी के स्वागत के निमित्त दीपकों की पंक्तियों से वायुमंडल को जगमगा देता है। प्रत्येक घर मे विभिन्न आकृतियों की महालक्ष्मी की धवल प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की जाती है। पूर्ण विकसित अष्टदल कमल पर आसीन महालक्ष्मी के भव्य वेश का ध्यान निम्नांकित मंत्र से किया जाता हैः—

पद्मासनां पद्महस्तां पद्मां पद्मदलैर्वृताम्
दिग्गजैः सेव्यमानां च कांचनैः कलशोत्तमैः।
अमितः सिच्यमानां च श्वेतच्छत्रविराजिताम्
सर्वालंकार संयुक्तां महालक्ष्मीं विचिंतये॥

विधिवत् लक्ष्मी-पूजा के उपरांत परिवार के स्त्री-पुरुष प्रतिमा के सामने विनम्र भाव से खड़े होकर निम्नांकित श्लोकोच्चारण के साथ महादेवी की प्रार्थना करते हैंः—

सरसिजनिलये सरोज—हस्ते
धवलतरांकुश—गंध—माल्य-शोभे।
भगवति हरिवल्लभ मनोज्ञे
त्रिभुवन—भूतिकरि! प्रसीदमह्यम्।

महालक्ष्मी की पूजा के पश्चात् दरिद्रा देवी को घर से निकालने का उपक्रम किया जाता है। परिवार के पुरुष सदस्य अपने-अपने हाथ में

सनई की डंटियों की वनी उक्कापाती लेकर तथा उसे प्रधान प्रदीप की शिखा में प्रज्ज्वलित कर गृहस्वामी के नेतृत्व में निम्नलिखित वाक्योच्चारण के साथ अपने-अपने घर से वाहर निकल कर गाँव के चौराहे पर जुटते हैं।

उक्कापती धू-धू! लक्ष्मी घर दरिद्रा वाहर !!

इस प्रकार उक्काओं के सहारे घर में घुसी हुई दरिद्रा देवी को खदेड़ कर वाहर निकाला जाता है। गाँव भर के छोटे-वड़े सभी चौराहे पर एकत्र होकर अपनी-अपनी उक्काओं को एक साथ जला कर यह समझ लेते है कि गॉव से दरिद्रा देवी को खदेड़ दिया गया। वच्चे आनंद से किलकारियाँ भरते हैं और अपने-अपने घर लौट कर महालक्ष्मी का प्रसाद पाते है। वड़े-वूढ़े उक्काओं की अधजली काठियाँ घर लाकर इष्टदेवी के सम्मुख धर देते हैं। नवान्न के दिन इन्ही डंठलों की आग में नये अन्न की आहुति दी जाती है।

दीपावली की प्रकाशमयी रजनी को मोहरात्रि भी कहते है। लोगों का ऐसा विश्वास हैं कि मोह-निशा में महालक्ष्मी प्रत्येक निवास का निरीक्षण करती हैं। अतः प्रत्येक गृहवासी महादेवी के शाही स्वागत के निमित्त रात भर जाग्रतावस्था में रहता है। रात्रि जागरण का महालक्ष्मी पूजा से विशेप संवंध रहता है। रात्रि-जागरण के लिए ही दीपावली की रात में चौसर, शतरज, यहाँ तक कि द्यूत-क्रीड़ा भी शास्त्रानुमोदित है। रात भर जागने के बाद रात्रि के अंतिम प्रहर में गृहस्थ परिवार की बड़ी वूढ़ी औरतें जीर्ण सूप या खड़सूप को बजाती तथा दरिद्रा देवी को खदेड़ती हुई वाहर निकलती है और गाँव भर की औरतें एक साथ मिल-कर उन पुराने सूपों को निकट के जलाशय में बहा देती है। वे समझती हैं कि पुराने सूप निकल गये, घर की दरिद्रता भाग गई। नये सूप से नये अन्न वटोर कर वे लक्ष्मी को प्रतिष्ठित करने में समर्थ हो सकेंगी।

प्रदीप-पंक्तियाँ भी रात भर जलती रहती हैं। दीप-शिखाओं पर लाखों-करोड़ों वरसाती पतंग टूटते रहते हैं। इस प्रकार रात भर में ही रोगों को फैलानेवाले कीट-पतंग आप से आप भस्मीभूत हो जाते है।

महालक्ष्मी की पूजा के अवसर पर दीपकों के जलाने के रूप में यही रहस्य छिपा हुआ है। सब तरह के वायुमंडल को प्रशस्त, स्वस्थ और परिष्कृत बनाकर ही मानव श्री, समृद्धि और स्वास्थ्य की मंगल-कामना में सफलता प्राप्त कर सकता है। भारतीय धर्मशास्त्र में श्री, समृद्धि की प्रतिनिधि-शक्ति को महालक्ष्मी कहा गया है जो श्वेत पद्म पर आसीन रहती हैं। भारतीय कला की दृष्टि से कमल सौंदर्य और माधुर्य का द्योतक है और सौंदर्य ही संपत्ति और समृद्धि की महादेवी का शुभ्रासन हो सकता है। कुरूपता, गंदगी और विकार दारिद्र्य का सूचक है। निर्मलता की प्रतिमा को ही महालक्ष्मी की संज्ञा दी गई है, इसीलिए मन, वचन और कर्म से निर्मलता का उपासक ही महालक्ष्मी का कृपापात्र बन सकता है। महालक्ष्मी का अंग-प्रत्यंग, उनकी वेश-भूषा सभी श्वेत ही है, बिलकुल विकार-रहित। उनके वस्त्र भी श्वेत, गले का हार भी श्वेत, शरत् ऋतु के चंद्र की तरह उनके वदन-मंडल भी श्वेत तथा उनके छत्र भी श्वेत ही है। श्वेत सत्त्वगुण को संकेत करता है। विश्व के पालनकर्त्ता नारायण या विष्णु की महाशक्ति होने के कारण महालक्ष्मी ही सारे विश्व का पालन करने की उत्तरदायिनी हैं, जिनके दोनो बगल दो दिग्गज अपनी सूँड़ से स्वर्ण-कलश उठाकर उन्हें अभिषिक्त करते रहते है। ये दिग्गज विश्व की संपन्नता की पराकाष्ठा के और जलपूर्ण कलश उर्वरता और प्रचुरता के परिचायक हैं। इस महादेवी का वाहन उल्लू समझा गया है। उलूक दिन के प्रकाश में अन्धा बना रहता है। अतः वह ऐसे लक्ष्मीपात्रों का प्रतिनिधित्व करता है, जिनके आत्म-संयम को भौतिक ऐश्वर्य की चमचमाहट पल भर के लिए भी नहीं डिगा सकती, अर्थात जो धन-मद तथा बाह्य चमत्कार से दूर रह कर सदा-सचेत रहते है, मोहनिशा में भी जाग्रतावस्था में रहते है। इस प्रकार दीवाली का त्यौहार हमारा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय त्यौहार हैं। यह हमें यही संदेश देता है कि मानव-मात्र समृद्धिशाली बने; मगर समृद्धि के उपभोग का आधार त्याग हो, भोग नहीं!

तृतीय परिच्छेद

[विवरणात्मक लेख]

१. हल्दीघाट की लड़ाई

विषय विभाग—(१) भूमिका—समय, स्थान इत्यादि। (२) घटना के कारण—मुख्य और गौण। (३) विस्तृत विवरण (४) फलाफल और (५) विशेष मंतव्य।

भूमिका—दिल्ली के मुगल सम्राट् अकबर के पुत्र सलीम और चित्तौड़ के महाराणा प्रतापसिंह के बीच सन् १५७६ ई० में अर्वली या आबू पहाड़ के निकट-स्थित हल्दीघाटी में घनघोर युद्ध छिड़ा था जो भारतवर्ष के इतिहास में हल्दीघाट की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है।

कारण—सम्राट् अकबर ने अपनी चतुराई से राजपूताने के प्रायः अधिकांश राजपूत राजाओं को अपने वश में कर लिया। सब ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली और उन्हें अपना-अपना डोला भी भेजा; परंतु चित्तौड़ के महाराणा प्रतापसिंह ने अधीनता स्वीकार करना अपने धर्म और प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझा। अकबर की अनुपम नीति-चातुरी प्रतापी प्रताप के सामने व्यर्थ सिद्ध हुई और अंत में प्रताप को वश में करने के लिए उन्हें युद्ध-घोषणा करनी पड़ी। सम्राट् ने अपने पुत्र सलीम तथा सेनापति मानसिंह को एक लाख सेना के साथ प्रताप से लोहा लेने के लिए भेजा। महाराणा प्रताप भी पीछे हटनेवाले नहीं थे। वे भी बाईस हजार वीर क्षत्रिय-सैनिकों को लेकर हल्दीघाट के मैदान में मुगलों की सेना का सामना करने के लिए आ डटे। यह तो हल्दीघाट की लड़ाई का प्रधान कारण हुआ। इस लड़ाई का एक दूसरा गौण कारण यह भी है कि एक बार मानसिंह चित्तौड़ पधारे। वहाँ महाराणा प्रताप की ओर

से उनका भरपूर स्वागत हुआ। परंतु खाने के समय प्रतापसिंह ने उनकी मेहमानदारी करने के लिए स्वयं नही आकर अपने पुत्र अमरसिंह को भेज दिया। जब मानसिंह को यह मालूम हुआ कि मैंने अकबर की अधीनता स्वीकार कर सम्राट् क जो डोला दिया है उसीसे महाराणा ने मुझसे मिलना अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझा तब वे मन ही मन बड़े क्रुद्ध हुए और इसी भारी अपमान का बदला लेने के लिए उन्होंने सम्राट् अकबर को महाराणा से युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित किया।

विस्तृत वर्णन—जिस समय आबू पहाड़ की चोटीपर बालरवि की सुनहरी किरणें पड़ीं उसी समय हल्दीघाट के प्रसिद्ध रणसंग्राम में दोनों ओर की सेनाओं की मुठभेड़ हुई। मुगलों की सेना के सेनापति शाहजादा सलीम हाथी पर सवार थे और क्षत्रिय-वीर महाराणा प्रताप-सिंह अपने प्रसिद्ध चेतक घोड़े पर। महाराणा का चेतक भी अद्वितीय घोड़ा था। एक ओर एक लाख सेना थी और दूसरी ओर केवल बाईस हजार वीर थे परंतु इन वीरों में अपूर्व उत्साह था। धर्म और गौरव की रक्षा करने की एकांत प्रेरणा ने इन वीरों को मतवाला बना दिया था। दोनों ओर से मारकाट प्रारंभ हुई। एक से एक वीर धराशायी होने लगे। चारों ओर खून की नदियाँ बह चलीं। सारा मैदान रक्तप्लावित हो गया। स्वयं महराणा चेतक पर सवार होकर मुगलों की सेना में तीर की नाईं घुस पड़े और अपनी दुधारी तलवार से अपने चारों ओर घिरे हुए मुगलों की सेना का संहार करते हुए सलीम के निकट तक पहुँच गये। चेतक ने अपने दोनों पैर हाथी के मस्तक पर रख दिये और महाराणा ने सलीम को अपने भाले का निशाना बनाना चाहा। उस समय का दृश्य बड़ा ही लोमहर्षक था। मालूम पड़ता था, अब सलीम के प्राण बचना दुर्लभ है। मुगलों की सेना में चारों ओर हाहाकार मच गया परंतु दैवयोग से भाला हौदे के बीच बैठे हुए सलीम को न लगकर महावत को जा लगा। सलीम बच गया। वार चूक जाने पर महाराणा मुगलों की सेना से घिर गये। इनके प्राण संकट में पड़ गये। उस समय

तक इन्हें अस्सी घाव लग चुके थे। चेतक भी थककर शिथिल हो चुका था। परंतु इस भीषण परिस्थिति में स्वामिभक्त झालामानसिंह ने बड़ी बहादुरी से अपने स्वामी के प्राण बचा लिये। उस स्वामिभक्त वीर ने झट प्रताप के सिर की पगड़ी अपने सिर पहन ली। मुगलों की मदांध सेना उसे ही महाराणा समझ उस पर टूट पड़ी। झाला सरदार के प्राण तो नहीं बच पाये। परंतु महाराणा बेदाग बच निकले। इस प्रकार बड़ी देर तक घमासान लड़ाई होती रही परंतु लाख सेना के आगे मुट्ठी भर राजपूत वीर कब तक ठहर सकते थे! सभी तितर-बितर हो गये! निराश होकर महाराणा ने जंगल की राह ली। रास्ते में ही उनके प्यारे चेतक ने भी उनका साथ छोड़ परलोक की यात्रा की। इस प्रकार हल्दीघाट की लाड़ाई का अंत हुआ।

फलाफल—हल्दीघाट की लड़ाई का अंत तो हुआ परंतु महाराणा मुगलों के हाथ नहीं आये और न चित्तौड़ की प्रजा ने ही अकबर की अधीनता स्वीकार की। मुगलों ने सारे चित्तौड़ को उजाड़ दिया। महाराणा अपने परिवार के सहित अपने धर्म और गौरव के रक्षार्थ जंगलों में भटकते रहे। लाखो तरह की कठिनाइयों का सामना किया। बड़ी-बड़ी मुसीबतें झेलीं परंतु अकबर के अधीन नहीं हुए।

विशेष मंतव्य—वर्षों तक कष्ट झेलने के बाद महाराणा ने अंत में पहाड़ी प्रदेश में अपने पिता के स्मारक-स्वरूप उदयपुर नामक नगर बसाया और चितौड़ छोड़कर वहीं रहने लगे। चितौड़ की सारी प्रजा ने उनका साथ दिया। सभी चितौड़ छोड़ उदयपुर में जा बसे। अकबर की एक न चली।

२. महात्मा गाँधी

महात्मा गाँधी का जन्म २ अक्टूबर, १८६९ ईसवी (आश्विन कृ० १२, संवत् १९२५) को काठियावाड़ के एक वैश्यकुल में हुआ। उनके पिता पोरबंदर, राजकोट के एक तेजस्वी दीवान थे। बचपन में एक सत्यनिष्ठा को छोड़कर गाँधीजी में ऐसी कोई विशेषता नहीं थी जिससे

लोगों को उनके महापुरुष होने का कोई संकेत मिलता। विद्यार्थी-जीवन में लुक-छिपकर माँस खाने व उसके खर्च के लिए सोने के कड़े का टुकड़ा वेंचने की घटना उनकी सत्यनिष्ठा का परिचय देती है। माँस खा तो लिया परंतु उन्हें ऐसा प्रतीत होता था मानों बकरा पेट में बें-बें कर रहा है। अंत को पत्र लिखकर सारी कथा अपने पिताजी को सुना दी और क्षमा माँगी। तब जाकर उन्हे शांति प्राप्त हुई। इसी सत्यनिष्ठा ने आगे चलकर दक्षिण अफ्रिका में सत्याग्रह को जन्म दिया! गाँधीजी इसे अपने जीवन का परम सिद्धांत मानते थे। प्रेमपूर्वक सत्य की एकाग्र साधना से जो बल उत्पन्न होता है, उसे उन्होंने सत्याग्रह कहा है।

हाईस्कूल तक की पढ़ाई काठियावाड़ में पढ़कर वे बैरिस्टरी के लिए इंगलैंड गये। माता उनकी बड़ी धर्मनिष्ठ थीं। उन्होंने इनसे तीन प्रतिज्ञाएँ कराईं, तब इंगलैंड जाने की अनुमति दी—(१)शराब न पीना, (२) माँस न खाना और (३) पर-स्त्री को माता के समान समझना। गाँधीजी की सत्यनिष्ठा का इस बात से भी पूरा प्रमाण मिलता है कि वहाँ उन्होंने इन बातों का अक्षरशः पालन किया। पश्चिमी सभ्यता की कुछ बातों—गाने-नाचने—के चक्कर में वे थोड़े-बहुत जरूर आये, परंतु उनकी जाग्रत सत्य-प्रियता ने उन्हें वहाँ की अन्य बुराइयों से बाल-बाल बचाया। यहाँ तक कि जब एक युवती उनसे प्रेम-संबंध बाँधने लगी तब उन्होंने उसकी माता से साफ कह दिया कि मैं विवाहित हूँ, जब कि और हिंदुस्तानी युवक अपने विवाह की बात छिपाकर वहाँ विवाह कर लिया करते थे।

बैरिस्टरी पास करके वे हिंदुस्तान में आये, पर बैरिस्टरी चली नहीं। एक बार अदालत में खड़े हुए तो चक्कर आ गया; काठियावाड़ में एक गोरे साहब से मिलने गये तो उसने चपरासी से निकलवा देने का हुक्म दिया। इस अपमान ने गाँधीजी की आत्मा को कुछ जाग्रत किया। बाद में वे एक दीवानी के मुकदमे के सिलसिले में १८९३ ईसवी में दक्षिणी अफ्रिका गये तो वहाँ के निवासी भारतीयों के अपमानपूर्ण जीवन

को देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। खुद भी रेल में, गाड़ी में, होटल में, अदालत में तरह-तरह के अपमान सहे; तब उनसे न रहा गया और वकील का जीवन छोड़कर एक सेवक का जीवन अंगीकार किया। वहाँ के भारतीयों को नागरिकता के समान अधिकार दिलाने के हेतु गोरों की पक्षपातपूर्ण नीति का विरोध करने के लिए एशिया-विरोधक कानून, गिरमिटिया-प्रथा, तीन पौंड का कर और अंगूठे का निशान देने के कानून के खिलाफ भिन्न-भिन्न अवसरों पर सत्याग्रह की लड़ाई ठानी और उनमें उस समय बहुत-कुछ सफलता भी प्राप्त की। तब वे कर्मवीर गाँधी के नाम से संसार में विख्यात हुए। टालस्टाय, रस्किन, रूसो, थोरो के विचारों का उनके जीवन पर बड़ा असर हुआ था, जिससे अहिंसामय, सादा और क्षमापूर्ण जीवन के आदर्शों के प्रति उनका बहुत झुकाव हो गया। इन्हीं से शांतिमय प्रतिकार या 'सत्याग्रह' की पद्धति का जन्म हुआ।

भारत में आते ही उन्होंने अपने नवीन 'सत्याग्रह' नामक शस्त्र का प्रयोग यहाँ की समस्याओं को हल करने में किया। वह सीधे एकाएक राजनीतिक क्षेत्र में नहीं आये। समस्याएँ व परिस्थितियाँ जैसे-जैसे उन्हें उसकी ओर स्वाभाविक रूप से खींचती जाती थीं वैसे ही-वैसे वे उसकी तरफ आगे बढ़ते जाते थे। सत्याग्रही किसी के सिर पर ज़बरदस्ती चढ़कर नहीं बैठता। जब परिस्थिति की आवश्यकता और कर्तव्य का तकाजा होता है तब वह बड़े-से-बड़े साहस और जोखिम उठाने में भी नहीं हिचकिचाता।

गाँधीजी अपने विचारों और सिद्धांतों के बड़े ही दृढ़ आदमी थे। जहाँ कोई बात जँची नहीं कि उसको अमल में लाये बिना उन्हें चैन नहीं पड़ती। कोई काम आधे दिल से नहीं करते। वे अहिंसा के पुजारी थे, अतः उन्होंने आतंकवादियों के हिंसात्मक कार्यों की जब तब निंदा करने में कसर नहीं की; पर साथ ही उनका यह भी सिद्धांत है कि 'पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।' अतः हिंसात्मक प्रवृत्तियों की निंदा

करते हुए भी हिंसक व्यक्तियों से उन्होंने सदा ही प्रेम का व्यवहार किया है। वह कूटनीति को बुरा समझते थे और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में—राजनीति में भी—सत्य-सरल नीति को ही श्रेष्ठ मानते थे। अतः भारत में आते ही उन्होंने तरह-तरह से संभव अहिंसात्मक रीति-नीति का प्रचार आरंभ किया।

अपने देश में चंपारण और खेड़ा में सर्वप्रथम उनके सत्याग्रह के प्रयोग हुए। उस समय तक गाँधीजी ब्रिटिश साम्राज्य के भक्त थे। दक्षिण अफ्रिका के बोअर-युद्ध में तथा पिछले अँग्रेज-जर्मन युद्ध में उन्होंने सरकार का साथ दिया था। परंतु जलियाँवाला बाग के गोलीकांड ने उनकी राजभक्ति की जड़ हिला दी। यों अँग्रेज जाति के वे परम हितैषी थे, उसके गुणों पर मुग्ध थे, परंतु उनकी साम्राज्य-पद्धति के अब वे कट्टर विरोधी हो गये।

गाँधीजी ने १९२० में असहयोग शुरू किया, जिसका मुख्य उद्देश्य था हिंदुस्तान में स्वराज्य की स्थापना। इसमें एक ओर जहाँ कई सरकारी संस्थाओं से असहयोग की घोषणा की गई वहाँ दूसरी ओर स्वदेशी, खादी, अस्पृश्यता निवारण, राष्ट्रीय एकता, शिक्षा-प्रचार आदि रचनात्मक कार्यों पर भी जोर दिया गया। यद्यपि गाँधीजी ने ब्रिटिश शासन के बहुत से दोष बताये, तो भी वे यही मानते थे कि हिंदुस्तानियों के पराधीन होने में मुख्य दोष खुद उन्हींका है। जबतक वे अपने उन दोषों और कमियों को दूर नहीं करते तबतक उन्हें स्वराज्य नही मिल सकता, न उसे टिक ही सकता है। शुरू में जो रचनात्मक-कार्यक्रम चतुर्मुखी था उसे बाद में उन्होंने अनुभव से बहुमुखी बना लिया है, जिसके अंग इस प्रकार है—(१) खादी, (२) ग्रामोद्योग, (३) नई तालीम, (४) किसान सेवा, (५) मजदूर-संगठन, (६) राष्ट्रीय-एकता, (७) अस्पृश्यता निवारण, (८) हिंदुस्तानी-प्रचार, (९) गो-सेवा, (१०) आदिनिवासी-सेवा, (११) स्त्री-सेवा, (१२) स्वच्छता

और आरोग्य, (१३) रोग-निवारण, (१४) मद्यपान-निषेध और (१५) विद्यार्थी-संगठन।

असहयोग के इस प्रारंभिक काल में १९१८ की कलकत्ता कांग्रेस के समय से गाँधीजी का सीधा प्रभाव कांग्रेस पर पड़ने लगा। और १९२०-२१ की नागपुर और अहमदाबाद कांग्रेस को गाँधी-काँग्रेस ही कहना चाहिए। इस बीच उन्होंने गुजराती और हिंदी में 'नवजीवन' तथा 'हिन्दी-नवजीवन' और अँग्रेजी में 'यंगइंडिया' नामक तीन साप्ताहिक पत्र निकाल दिये थे। लेखक के नाते भी गाँधीजी का बड़ा ऊँचा स्थान है। बड़े-बड़े अँग्रेजीदाँ सुलेखक भी उनकी प्रशंसा करते है। सरलता, सुबोधता और संक्षिप्तता उनकी भाषा के प्रधान गुण है। उनकी भाषा सीधे हृदय में बैठ जाती है।

अनशन या उपवास का गाँधीजी के सिद्धांत तथा जीवन मे बड़ा स्थान है। अपना दोष मालूम होने पर आत्मशुद्धि के लिए अथवा अपने साथियों, मित्रों, कुटुम्बियों के दोषों का अपने को जिम्मेदार मानकर उन्होंने कई बार छोटे-बड़े उपवास किये थे। वे मानते थे कि जिन कामों और आंदोलनों को मै चलाता हूँ उनमें यदि दोष और बुराई पैठ जाती है तो उसमे मेरी जिम्मेदारी है।

अहमदाबाद कांग्रेस के बाद गाँधीजी ने वायसराय को अंतिम सूचना दी कि एक वर्ष में स्वराज्य की घोषणा करो नहीं तो मैं बारडोली से सामूहिक सत्याग्रह करूँगा। उसी सिलसिले में चौरीचौरा में जनता की ओर से हत्याकांड हो जाने से सत्याग्रह स्थगित कर दिया। सरकार ने उनपर मुकदमा चलाया। छः साल की सजा दी। उस समय गाँधीजी ने एक सच्चे सत्याग्रही की भाँति कहा—"सरकारी वकील ने जो इल्जाम मुझपर लगाये हैं उन सबको मै मानता हूँ। मैं मंजूर करता हूँ कि चौरी-चौरा और बंबई के हत्याकांडों की जिम्मेदारी से मैं अपने को अलग नहीं कर सकता।" जज ने भी अपने फैसले में लिखा, "अबतक आपके जैसे आदमी के मुकदमे सुनने का काम न मुझे पड़ा, न आगे पड़ने की संभावना

है। आप औरों से निराले ही आदमी हैं। यह सच है कि आप अपने करोड़ों देशवासियों की आँखों में एक बड़े देशभक्त और महान् नेता हैं। जो राजनीति में आपसे मतभेद रखते है वे भी आपको उच्च आदर्श रखनेवाला और भद्र-पुरुष ही नहीं, एक संत मानते है और यदि कभी सरकार ने आपको छोड़ दिया तो सबसे ज्यादा खुशी मुझे होगी।" उन्हें छः साल की सजा दी गई थी लेकिन अपेंडिसाइटिस के आपरेशन के कारण दो साल में ही छोड़ दिये गये। छूटने के बाद जगह-जगह सांप्रदायिक प्रचार के कारण दंगे हुए और गाँधीजी ने हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए २१ दिन का उपवास किया। १९२९ तक खादी-प्रचार, अस्पृश्यता-निवारण, राष्ट्रीय एकता आदि रचनात्मक कामों में व्यस्त रहे। १९२९ में लाहौर-कांग्रेस का ध्येय 'पूर्ण-स्वराज्य' कर दिया गया। उसकी प्राप्ति के उद्देश्य से नमक-सत्याग्रह का नेतृत्व किया। दिल्ली में फिर गाँधी-इरविन समझौते के द्वारा अस्थायी सुलह हुई और वे दूसरी गोलमेज परिषद् में सारे भारत के एकमात्र प्रतिनिधि बनकर इंगलैंड गये। उसके बाद फिर सत्याग्रह शुरू हुआ और १९३४ में बंबई-कांग्रेस में ही, वे कांग्रेस से अलग हो गये। फिर भी, वे अंत तक कांग्रेस के सर्वोपरि नेता का स्थान प्राप्त किये रहे।

१९४१ में 'भारत छोड़ो' आंदोलन छेड़ा, जिसके फलस्वरूप भारत को 'आजादी' नसीब हुई। लेकिन यह बहुत मँहगी पड़ी। उसकी ज्वाला में खुद गाँधीजी को भी अपनी आहुति दे देनी पड़ी! ३० जनवरी, १९४८ को एक सिरफिरे हिंदू ने उन्हें अपनी गोली का निशाना बनाया। 'हे राम' कहकर उनका शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा, पर वे सीधे अमरलोक को चले गये।

हिंसा, कलह, पारस्परिक द्वेष तथा शोषण से पीड़ित मनुष्य जाति के लिए अहिंसा और सत्याग्रह उनकी अमूल्य देन है। भारत के इस महा-पुरुष को कई बार उपवास और अनशन की तपस्या में अपने को तपाना पड़ा है। मानव-जीवन का कोई अंग ऐसा नहीं है जिसको उन्होंने स्पर्श

न किया हो। भारतीय जीवन का कोई ऐसा भाग नहीं है जिसको सुधारने का उन्होंने यत्न न किया हो।

उनके जीवन का उद्देश्य अपनी आत्मा को विश्व की आत्मा में मिला देना था, जिसको वह आत्म-साक्षात्कार या ईश्वर-दर्शन कहा करते थे। उनसे मतभेद और विरोध रखनेवाले आदमी भी उनके महान् चारित्र्य-बल की प्रशंसा करते हैं। उनकी सरलता से बड़े-बड़े नीति-कुशल भी प्रभावित हो जाते थे। उनकी हँसी में ऐसी मोहिनी थी कि मनुष्य उनके सामने जाते ही आधा पराजित हो जाता था। उनके इस अद्भुत आकर्षण का रहस्य था उनकी अहिंसा की साधना। सत्य का ऐसा साहसी साधक संसार में शायद यह पहला ही हुआ। सत्य के पथ पर चलते हुए बड़ी से बड़ी जोखिम भी उन्हें भयभीत नही कर पाती थी। भावना, विचार और कर्म तीनों में सत्य की साधना का ही दूसरा नाम सत्याग्रह है। हमारा बड़ा भाग्य है कि ऐसे महान् सत्याग्रही के समय में हम जीवित रहे।

—श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री चंद्रगुप्त वार्ष्णेय]

३. ताजमहल की आत्मकहानी

अपने विधाता को मै अपने अंक में लिये बैठा हूँ। जिसने मुझे खड़ा किया वही मेरी गोद में सो रहा है। जिसके लिए मैं खड़ा किया गया वह भी मेरी गोद में सो रही है। उनके इस अप्रतिम स्नेह को पाकर मैं गर्व से फूला नहीं समाता। शताब्दियाँ बीत गईं पर उनके स्नेह का वैभव आज भी मुझमें सुरक्षित है। इस वैभव को संसार जाने कब से विस्मय-विमुग्ध होकर देख रहा है। 'दुनियाँ के महान् आश्चर्यों में मेरी गणना की जाती है।

सम्राट् शाहजहाँ और सम्राज्ञी मुमताज की मै प्रेम-समाधि हूँ। प्रेम की पवित्रता और तल्लीनता का मैं स्मारक हूँ। भेद-भावों में पड़े मनुष्यों को मै यह संकेत कर रहा हूँ कि प्रेम ईश्वरीय सृष्टि की सबसे

बड़ी विभूति है। दो विछुड़े हुए हृदय मेरी गोद में जड़े हुए हैं। अत्याचारियों ने समय-समय पर आक्रमण किया—मुझे भी लूटा गया। मेरे आभूषणों, रत्नों और जवाहरों को लोग ले गये। मेरे शरीर को उन्होंने नग्न कर दिया; पर मेरे अंदर जो वैभव छिपा पड़ा है—जो दो हृदय जुड़े पड़े हैं—उन्हें लूटने का साहस नृशंस से नृशंस अत्याचारी को भी नहीं हो सका। प्रेम की लौ के सामने उनकी आँखें खुली नहीं रह सकीं। मैं भौतिक ऐश्वर्य का स्मारक नहीं, प्रेम का स्मारक हूँ। मेरी नींव में उस वियोगी सम्राट् के दो बूँद आँसू चू पड़े थे। कहते है, आकाश का हृदय भी उन आँसुओं की स्मृति में द्रवीभूत हो उठता है और दो बूँद आँसुओं से वह मेरे हृदय को खींचने का प्रतिवर्ष प्रयत्न करता है। पर मेरे हृदय तक उसके सभी आँसू पहुँच जाते हैं—कल्पना जगत् के विश्वासों पर मै विश्वास नहीं करता। उसके आँसुओं से तो मेरा कलेवर भी निखर उठता है।

यमुना के किनारे पर मै खड़ा हूँ। आगरे के स्नेह को मै भूल नहीं सकता। उसे छोड़कर मैं कही जा नहीं सकता। योगी की समाधि की तरह मैं आगरे में यमुना के किनारे अपनी स्मृतियों को सजाने का प्रयास करता हूँ। वावली यमुना भी मेरे अतीत वैभव के स्वर्गीय दिनों को याद कर दुख से सूख रही है। वह श्यामा हो गई है। मुझे उस पर स्वाभाविक रूप से स्नेह है। हम पुराने साथी है। वह हिलोरें लेकर मुझे प्यार करती है। अपनी सुनाती है, मेरी सुनती है।

कहते है, मै वास्तविकता का अद्वितीय उदाहरण हूँ। श्वेत संगमैरमर से मेरा निर्माण हुआ है। मेरे निर्माण में करोड़ों रुपय व्यय हुए। हजारों आदमियों का पेट भरा। एक युग में भी मेरा निर्माण-कार्य समाप्त न हो सका।

मृत्यु-शय्या पर अंतिम साँसें गिनती हुई मुमताज की यही तो अंतिम इच्छा थी। उस स्वर्गीय देवी की बात शाहजहाँ कैसे टाल सकता था? इसीलिए तो उसके इच्छानुसार उसकी यह बेजोड़ कब्र अस्तित्व में आई।

कब्र ? पर यह कब्र अभागी नहीं। रात-दिन इसे देखने न जाने कितने लोग आते हैं। सुदूर विदेशों से यात्री आकर मुझे देखकर अपना आना सार्थक समझते हैं। मेरे पास आकर उन्हें श्रद्धा से झुक जाना पड़ता है। उनके मनोभावों को पढ़ने का मुझे भी अवसर मिलता है। अपने संबंध मे उनकी धारणाओं को देखकर मै मुसकरा उठता हूँ।……उसने अपने पति से कहा—'प्रिय! अगर मेरी मृत्यु के पश्चात् तुम कोई अनुपम स्मारक बनाने का वचन दो तो अभी मै इस ताज के उस बुर्ज से कूद कर अपने प्राण त्याग दूँ।'…क्या कल्पना है! मुझे भय है, कोई सचमुच मेरे प्रांगण में प्राणों का विसर्जन न कर दे। मानव समाज की बर्बरता को देख कर आज मेरा पाषाणहृदय भी क्षुब्ध हो उठा है। मुझ-सा स्मारक अब और किसी को अपने अंतर में स्थान देने में अपने को असमर्थ पा रहा है।

मुगल सम्राज्य के ऐश्वर्य के दिन बीत गये। भारत की इस असहाय अवस्था को देख कर आज मुझे दुख होता है। सिनेमा के पट पर मेरी छवि अंकित करने के लिए लोग यहाँ सदैव आते हैं, मेरे चित्र उतारते हैं। चित्रकार अपनी तूलिका से मुझे अमर करना चाहता है। कवि अपनी रचना में मुझे चिरंजीवी बनाने का प्रयत्न करता है। पर मेरा हृदय विदीर्ण होता जा रहा है। सम्राट् और सम्राज्ञी भी अपने भारत की इस दुरवस्था को देखकर म्लान हो रहे हैं। अगर यही अवस्था रही तो दुख के बोझ से मैं ढह जाऊँगा—आज नही, कल सही। मै चाहता हूँ, मुझसे प्रेम का पाठ लेकर भारतवासी एक सूत्र में बँध जाँय और अपने देश का कल्याण करे।

मुझे किसी से प्रतिद्वंद्विता नही। आगा खाँ महल आज इस युग मे मेरा एक सच्चा साथी हुआ है। कस्तूरबा उसकी गोद में है। मेरी गोद में प्रेम की देवी है। उसकी गोद में कर्त्तव्य की देवी है। हमें विश्वास है, इस प्रेम और कर्त्तव्य के संदेश को लेकर मानवता अपना कल्याण करेगी।

[श्री गुलाबराय, एम० ए०]

४. ग्राम-सुधार

'गाँवों और ग्रामीणों की सेवा का कार्य
परम पिता परमात्मा का कार्य है।'

—महामना मालवीय जी

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। इस देश के प्रायः पचहत्तर प्रतिशत निवासियों का जीवन खेती पर अवलंबित है। वे लोग तो गाँवों मे रहते ही हैं, इनके अतिरिक्त उनके दैनिक जीवन में सहायता देनेवाले बढ़ई, लोहार, चमार आदि मजदूरी पेशा के लोग तथा इन पर शासन करने-वाले जमींदार और कुछ वनिये, ब्राह्मण भी इन्हीं गाँवों की जनसंख्या को बढ़ाते हैं। गाँव शहरों से प्राचीनतर हैं। कृषि-कार्य निपुण आर्यों के प्रथम उपनिवेश ग्राम ही बने होंगे। कृषि की प्राणस्वरूपा वर्षा से संबंध रखने के कारण ही इंद्रदेव सुरराज कहलाये होंगे। ग्रामों से ही भारतीय सभ्यता का उदय हुआ है। भारत-माता के गौरव-गान में जो 'शस्य-श्यामला' तथा 'देश विदेशे वितरछि अन्न' कहा जाता है, वह ग्रामों की ही बदौलत है। ग्राम-निवासी ही हमारे अन्नदाता हैं।

झोपड़ियों में रहकर महलों के स्वप्न देखनेवाली बात चाहे हास्यास्पद समझी जाय, परंतु यह ध्रुव सत्य है कि अलकापुरी की स्पर्धा करने-वाले मणि-माणिक्य-मंडित महलों की महिमा और गरिमा झोंपड़ियों की ही आधार-शिला पर स्थित है। ग्राम ही सच्चे देवमंदिर है, क्योंकि कविसम्राट् रवि बाबू के शब्दों में हम कह सकते हैंकि—"यदि तुझे ईश्वर के दर्शन करने हैं तो वहाँ चल, जहाँ किसान जेठ की दुपहरी में हल जोतकर चोटी का पसीना एड़ी तक बह रहा है?"

ग्रामों की गौरव-महिमा के चाहे जितने गीत गाये जायँ, ग्रामवासी हमारे पालक-पोषक होने के नाते चाहे विष्णु के पद पर ही क्यों न प्रति-ष्ठित कर दिये जायँ किंतु उनकी दशा ऐसी नहीं जिसकी कोई भी स्पर्धा करने की इच्छा रखे। ग्रामवासी दरिद्रता-दानव के चंगुल मे पड़कर

अस्थिपंजरावशेष होते जा रहे हैं। वे सदा अतिवृष्टि, अनावृष्टि तथा शलभ-शुक-मूषकादि ईतियों के भय से पनपने नहीं पाते। इन शास्त्र-प्रसिद्ध ईतियों के अतिरिक्त बनिया, जमींदार, हाकिम, अफसरों के दौरे आदि और भी बहुत-सी ईतियाँ उनकी जान की बवाल बनी रहती हैं। गाँव कीचड़ और गंदगी के केंद्र बने रहते हैं; उसके फलस्वरूप उनके निवासी रोग और मृत्यु के शिकार होते हैं।

बेचारा किसान आपादमस्तक ऋणग्रस्त रहने के कारण अपने घर के घी दूध का भी पूरा लाभ नहीं उठा पाता। गोचर भूमि की न्यूनता के कारण बेचारा अधिक जानवर नही रख सकता और जो दो-एक रखता भी है, पैसे की चाह में उनका सार दूध ट्रकों पर लद कर शहरों में पहुँचा जाता है। भोला किसान चाहे जिस कागज पर अँगूठा लगा देता है। सोते-जागते दिन-दूने रात-चौगुने बढ़नेवाले ब्याज से पुष्ट होकर ऋण उसकी संपत्ति का शोषण कर लेता है। बीज के लिए अन्न घर में न रहने से बीज उधार लेना पड़ता है। वह अपने अज्ञान के कारण सहकारी-समितियों और तकावी का भी पूरा लाभ नहीं उठाने पाता। यदि महाजन से बचता है तो छोटे-छटे पदाधिकारियों के लालच का शिकार बनता है। भेड़ जहाँ जाती है वहीं मुड़ती है। दूसरों का अन्नदाता स्वयं भूखों मरता है, इससे बढ़कर विधि की विडंबना और क्या हो सकती है! अन्न की तेजी के कारण किसानों की आर्थिक दशा अवश्य सुधरी है और जमीदार का भी शासन और अत्याँचार उठनेवाला है, किंतु अभी उनकी शिक्षा-दीक्षा में विशेष उन्नति नहीं हुई है।

ग्रामों का ऋण स्वीकर करते हुए सरकार तथा लोकसेवी देश-भक्तों का ध्यान ग्रामों की दशा सुधारने की ओर गया है। कृषि-संबंधी शाही कमीशन तथा कृषि-विभाग इस बात के द्योतक है कि सरकार ने कृषकों की दशा सुधारना अपना कर्त्तव्य समझा है। प्राचीन काल में भी राजा जनक आदि प्रजा-हितैषी शासक स्वयं हल लेकर खेत में जाते थे। ये उपाख्यान किसान और राजा के घनिष्ठ संबंध के परिचायक हैं।

प्रत्येक प्रांत में किसी न किसी रूप में ग्रामोत्थान का कार्य सरकार की ओर से और कहीं-कहीं जनता के उद्योग से जारी है। पंजाब में गुड़गाँवाँ के डिप्टी कमिश्नर मिस्टर ब्रेन का नाम कृतज्ञता से लिया जाता है। उन्होंने सन् १६२० से २८ तक सरकार की सारी शक्तियों को केंद्रस्थ कर ग्राम-सुधार का कार्य-क्रम जारी रक्खा। उन्होंने अपने समय में छः फुट गहरे चालीस हजार खाद के गढ़े खुदवाये। जिलों में कम्युनिटी कौंसिल और सूबे में कम्युनिटी बोर्ड कायम हुए। ग्राम-सुधार-शिक्षा-केंद्र भी स्थापित हुए। अन्य प्रदेशों में ग्रामोत्थान-समितियाँ हैं। इनके द्वारा बहुत कुछ लाभदायक प्रकाशन का कार्य हुआ है। मैजिक लालटेनों, सिनेमा और रेडियो द्वारा स्वास्थ्यप्रद जीवन तथा देश के उद्योग-धंधों और कृषि-संबंधी उन्नति के साधनों पर प्रकाश डाला जाता है।

ग्रामोत्थान-कार्य में जानता और सरकार दोनों के ही सहयोग की आवश्यकता है। ग्रामोत्थान-कार्य, चाहे सरकार द्वारा हो और चाहे निजी उद्योग से हो, तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) **सफाई और स्वास्थ्य**—यद्यपि धनाभाव के कारण गाँव में शहर की-सी सफाई नहीं रक्खी जा सकती तथापि उद्योग से बहुत-कुछ कार्य किया जा सकता है। घरों के पास के गढ़े मिट्टी से भरे जा सकते हैं। तालावों और पोखरों पर मिट्टी का तेल डालकर मच्छड़ों का पैदा होना या बढ़ना बंद करने में विशेष कठिनाई न होगी। मैले के दबाने के लिए खाइयाँ खुदवाई जा सकती है। गोबर और कूड़ा भी गढ़ों में दवाया जा सकता है। उत्तर प्रदेश की गोरखपुर कमिश्नरी में छः महीने में ७६७ गढ़े भरवाये गये; २०० से ऊपर खाद के गढ़े खुदवाये, गये, ६००० से अधिक घूरे साफ किये गये। गाँव की सफाई के लिए ऐसे कार्य वड़े उपयोगी हैं। कुँओं का पानी पोटाशियम परमैंगनेट यानी लाल दवा से शुद्ध कराया जा सकता है। मकान अधिक हवादार बनाये जा सकते हैं। ऐसे बहुत से काम है, जिनके करने से थोड़े पैसे मे बहुत कुछ लाभ होने की संभावना रहती है। गाँव के लोगों को चेचक और हैजे

के टीकों के लिए तैयार कराना, मलेरिया के दिनों में कुनैन बाँटना आदि ऐसे काम है जिनमें जनता सरकार का हाथ बँटा सकती है। यथा-संभव प्रत्येक तीन या चार गाँवों के वर्ग के लिए एक छोटा अस्पताल खुलवाना चाहिए और आवश्यक दवाइयाँ तो प्रत्येक गाँव के सरपंच, जमींदार या पटवारी के पास रक्खी जानी वांछनीय हैं। गाँव की दाइयों को प्रसूति काम की शिक्षा दिलाना एक आवश्यक कार्य हैं। गाँववालों को शरीर और कपड़ों की सफाई के संबंध में मैजिक-लैंटर्न से साधारण व्याख्यानों द्वारा शिक्षा देना बहुत लाभप्रद सिद्ध होगा।

(२) आर्थिक—यह समस्या बहुत बड़ी है। परंतु सदुद्योग के आगे कोई कठिनाई नहीं रह जाती। कृषि-सुधार के लिए उत्तम-भूमि, उत्तम खाद, उत्तम बीज और सिंचाई का सुभीता आवश्यक उपकरण हैं। इन बातों में कुछ का सरकार से प्रबंध कराकर और कुछ के लिए अच्छी सलाह देकर किसानों को कृषि-कार्य में द्विगुणित उत्साह के साथ प्रवृत्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक लोक-सेवी का यह भी कर्त्तव्य है कि वह किसान को अपनी उपज बाजार में अच्छे भाव से बेंचने में सहायता दे।

पशुधन की उन्नति के लिए सरकार को गोचर-भूमियों का प्रबंध करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अच्छी नसल के साँड़ों का भी प्रबंध होना आवश्यक हैं। जहाँ तक हो, पशु-धन बाहर न जाने दिया जाय। पशुओं को बीमारियों से सुरक्षित रख कर उनको मरने से बचाया जाय। ग्रामवासियों को बतलाया जाय कि पशु-सेवा एक धर्म है।

यद्यपि किसान लोग बड़े मेहनती होते है, तथापि वे सारा वर्ष कृषि-कार्य में नहीं लगे रहते। किसान को साल में छः महीने फुर्सत रहती हैं। रस्सी बाँटना, डलिया बनाना, शहद पैदा करना, रूई ओटना, चरखा कातना, कपड़ा बुनना, लाख पैदा करना, गुड़ बनाना, साबुन बनाना, ईटें पाथना इत्यादि कामों को करके किसान अपनी फुर्सत के समय का सदुपयोग कर सकता हैं।

कर्ज की समस्या सहयोग-समितियों द्वारा बहुत कुछ हल की जा सकती है। किंतु सहयोग-समिसियों से लाभ उठाना सहज कार्य नहीं। उसके लिए भी शिक्षा की आवश्यकता है। सहयोग-समितियों में भी बहुत कुछ कागजी घोड़ों का काम रहता है। भेंट-पूजा भी चलती है। सुधारकों का काम है कि वे किसान को इनसे पूरा-पूरा लाभ उठाने में सहायता दें और यदि किसान का हिसाब बनिये से हो तो वे देखें कि बनिया किसान को लूटता तो नहीं है।

ग्रामीणों का बहुत-सा धन मुकदमेबाजी में भी व्यर्थ नष्ट होता है। अब सरकार की ओर से पंचायत राज्य की आयोजना बन गई है और उसका विधान भी बन गया है। इसके लिए ग्राम-पंचायतों को खुलवाना तथा उनको सफल बनाने का उद्योग करना ग्राम-सुधार का आवश्यक अंग है।

(३) शिक्षा संबंधी—शिक्षा का प्रश्न बड़े महत्त्व का है। ग्रामीण लोगों को उच्च शिक्षा की आवश्यकता नहीं; परंतु उनके लिए प्रारंभिक शिक्षा का होना विशेष लाभदायक होगा। ऐसे स्कूल खोले जाने चाहिए जिनमें कि बच्चों को दिन में तथा प्रौढ़ों को रात में शिक्षा दी जाय। प्रौढ़ों की शिक्षा का समय ऐसा रहे कि उनके दैनिक कार्य में बाधा न पड़े। गाँवों में पुस्तकालयों और वचनालयों के खुलवाने से भी जनता की जानकारी बढ़ सकती है।

ग्रामीण लोगों के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह रहता है कि यदि वे अपने बच्चों को शिक्षा प्राप्त कराएँ तो उनकी मजदूरी और खेती-बाड़ी में हानि न हो। वर्धा की शिक्षा-संबंधी योजना में इस ओर ध्यान दिया गया है। खेती के साथ उन्हें कुछ ऐसे उपयोगी धंधे सिखाये जायँ जिनसे वे अपने अवकाश के समय मे कुछ धन-उपार्ज्जन कर सकें। संक्षेप में, ग्रामीणो की शिक्षा में विदग्धता की अपेक्षा उपयोगिता का अधिक ध्यान रखना चाहिए।

[श्री गुलाबराय, एम० ए०]

५. ग्रंथ की आत्मकथा

सत्य अनंत है, ज्ञान अनंत है और ब्रह्म अनंत है। उसी तरह मेरा भी अंत नहीं है। पर जो असीम है, वह किसी सीमा में आबद्ध होकर प्रत्यक्ष होता है, वह क्षुद्रता को स्वेच्छा से स्वीकर कर लीलामय हो जाता है। जो अंतहीन ज्ञान है, वह भी मेरा ही क्षुद्र रूप धारण कर आनंद-रूप और रस-रूप हो जाता है। मैं ग्रंथ हूँ, ज्ञान का आगार हूँ, विद्या की निधि हूँ, रस का भंडार हूँ। मुझसे संसार ज्ञान प्राप्त कर सकता है। मेरे ही कारण मनुष्यों की उन्नति हुई है। यदि मै न होता, तो मनुष्य और पशु में क्या भेद रहता। जिन लोगों में मेरा प्रचार नहीं है उनको जाकर देखो। वे अभी तक वन्य मनुष्यों की तरह जंगलों में भटकते फिरते हैं। उन्हें केवल उदरपूर्त्ति की चिंता रहती है। ज्ञान का गौरव वे क्या समझें, साहित्य की महिमा वे क्या जानें, विज्ञान की शक्ति का उन्हें क्या पता?

परंतु तुम मुझे कागजों का बंडल मत समझो। यह मत समझो कि प्रेस ने मुझे दबा-दबा कर तैयार किया है। प्रेस, कागज और स्याही तो जड़ वस्तु हैं, उनमें ज्ञान कहाँ? इसी प्रकार अक्षरों को जोड़नेवाले या प्रेस को चलानेवाले या दूकान में बैठकर मुझे बेंचनेवाले मेरे जन्मदाता नहीं हैं। तुम उन्हें भले ही मेरा प्रकाशक मानकर उनकी प्रशंसा करो; पर मुझे तो यथार्थ प्रकाश मिलता है किसी की अंतर्ज्योति से। मुझे बेंचकर जो लोग संपत्तिशाली हो गये हैं, वे अपने वैभव का गर्व भले ही करें और तुमलोगों से प्रतिष्ठा और आदर पाकर गौरव के उच्च शिखर पर भले ही बैठ जायँ, पर मैं तो किसी तपस्वी की तपस्या का फल हूँ, मैं तो किसी ज्ञानी की अनवरत साधना का परिणाम हूँ, मैं तो किसी कवि की उदात्त कल्पना की सृष्टि हूँ, मै तो किसी यज्ञ के अध्यवसाय की रचना हूँ। मुझमें किसी दूसरे की आत्मा निवास करती है।

देश और काल को अतिक्रमण कर वही आत्मा मुझमें निविष्ट होकर, तुमलोगों को अपना दिव्य संदेश सुनाती है। न जाने, कब कुरुक्षेत्र में

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया था पर पुस्तक के रूप में आज भी उनकी वाणी सुन सकते हो। न जाने किस आषाढ़ के प्रथम दिवस में मेघ के दर्शन कर कालिदास की चित्तवृत्ति अन्यथा हो गई पर प्रेम और वियोग का जो गान उस दिन उनके अंतःकरण में उद्भूत हुआ, वह तुम मेरे ही समान ग्रंथ में पाओगे। अतीत और वर्त्तमान युग के कितने ही महात्माओं, ज्ञानियों और कवियों के उद्गार तुम हम में सुन लोगे।

मैं आनंद की सृष्टि हूँ। संसार में जो सुख, जो सौंदर्य, जो शौर्य, जो वेदना, जो उल्लास, जो आतंक और जो विस्मय है, वही जब किसी के अंतर्जगत् में आकर रस-रूप में परिणत हो जाते हैं तभी मेरी रचना होती है। विश्व की वेदना से करुणार्द्र, संसार के अत्याचार और अन्याय से क्षुब्ध, ज्ञान की महिमा से विस्मित तथा जीवन की सुषमा से पुलकित किसी भी द्रष्टा या स्रष्टा की कृति मैं हूँ। तुम मेरे पृष्ठ पर जो मूल्य देखते हो, वह मेरा मूल्य नहीं है, यह तो किसी व्यवसायी के लाभ और लोभ का सूचक है। यह सच है कि मेरे कितने ही निर्माताओं को अपनी कृतियों के लिए अपरिमित संपत्ति प्राप्त हुई है पर कुछ ऐसे भी हुए हैं जो जीवन भर कष्ट सह कर संसार को अमूल्य निधि के रूप में अपनी रचना दे गये हैं। यदि आज आरनाल्ड बेनेट को प्रत्येक शब्द के लिए १६) रुपये मिलते हैं तो कभी गोल्डस्मिथ को आजीवन दरिद्रता में ही बराबर साहित्य की सेवा करनी पड़ी है। प्रकाशकों के लिए मैं अवश्य अर्थ-सिद्धि का साधन हूँ, पर अपने कर्त्ताओं के लिए मैं आनंद का ही साधन हूँ। दुःख में, कष्ट में, विपत्ति में मुझी से उन्हें सांत्वना मिली है। मेरे ही लिए उन्होंने गर्व किया है। इसीलिए मै उनके गौरव की स्मृति हूँ, मै उनकी वेदना का सहचर हूँ, मेरे इस पृष्ठांकित मूल्य में अन्य व्यवसायों की तरह धूर्तता है, छल है, कपट है, स्वार्थसिद्धि है। मेरा यथार्थ मूल्य है कवि की कीर्ति में, ग्रंथकर्त्ता के चिरंतन गौरव में और उस अलौकिक आनंद में जिसका उपयोग तुम कर रहे हो।

पर मेरे बांधव मेरी तरह यही दृढ़तापूर्वक नहीं कह सकते। अधिकांश का जीवन अत्यंत क्षणिक होता है। खद्योत की ज्योति की तरह उनमें ज्ञान की अत्यंत अल्प ज्योति रहती है। पर उनकी क्षण-भंगुरता मे ही उनकी उपयोगिता है। प्रातःकालीन शीत बिंदुओं की तरह उनमें यह शक्ति नहीं रहती कि ज्ञान के तीव्र उत्पात में वे रह सकें। परंतु क्षुद्र होने पर भी उनमें रस की तरलता रहती है, उनमें भी प्राणों का आवेग रहता है। आनंद का उच्छ्वास रहता है, अनंत स्वर्ग की आभा रहती है। वे भी ज्योतिर्मय की ज्योति से उद्भासित रहते हैं, वे भी क्षण भर कुछ के हृदय को शीतल कर जाते है, कुछ को घड़ी भर आर्द्र कर जाते हैं। अपने ही समान क्षुद्र, पददलित, तृणवत् जनों की वे सेवा कर ही जाते हैं। ऐसों के निर्माता विश्व से अनादृत, तिरस्कृत और विताड़ित भले ही हों, पर यह समझ रखो कि सभी स्थितियों में उनसे तुमलोगों का उपकार ही होगा, अपकार नहीं।

जब ज्ञान आनंद का रूप धारण करता है तभी उसमें सत्साहित्य की रचना होती हैं। जब वह व्यवसाय का रूप धारण करता है, लेन-देन, लाभ-हानि का साधन बन जाता है, तब वह साहित्य तड़ाग में कमल के रूप में विकसित न होकर मत्स्यों के रूप में परिणत हो जाता है। तब जो मत्स्यजीवी हैं, वे उन्हें बाजार में बेंचकर उदर-पूर्त्ति करते हैं। वहाँ छोटी-बड़ी सभी मछलियों के लिए ग्राहक मिल जाते है। उसमें लोक-रुचि की प्रधानता रहती है। उसीसे उनका मूल्य निर्दिष्ट होता है, उसी मूल्य में मत्स्यजीवी की सफलता है। संसार में सफलता की यही कसौटी है। जो व्यक्ति जिस इच्छा से कोई काम करता है, उसकी उस इच्छा की पूर्त्ति हो जाने पर ही वह अपने को सफल अवश्य समझेगा। संसार में धन की महत्ता है, कीर्ति का गौरव है, पद की प्रतिष्ठा है। कुछ काम धन के लिए किये जाते हैं, कुछ कीर्ति के लिए और कुछ पद के लिए। इसके अतिरिक्त कुछ काम ऐसे भी हैं, जो आनंद के लिए किये जाते है। धन के लिए जब कोई व्यक्ति प्रयत्न करता है, तब उसे कीर्ति, पद या

आनंद की चाह नहीं होती। अर्थ-कष्ट में पड़कर कितने ही बड़े लोगों को ऐसे काम करने पड़ते हैं जो न उनके गौरव के वर्द्धक है और न उनकी कीर्ति के। इसी प्रकार जो लोग एकमात्र अर्थ-सिद्ध मे ही अपने जीवन की सफलता समझते हैं उनके लिए कीर्ति या महिमा भी वाधक हो जाती है।

सच पूछो तो मेरे लिए न कीर्ति का महत्त्व है, न पद का और न धन का। आज जो कीर्ति, पद और धन का उपयोग कर रहे हैं, वे नहीं रह जायेंगे, पर मै रह जाऊँगा। कालिदास के आश्रयदाता नरेश कहाँ हैं? तुलसीदास के समय का मुगल वैभव कहाँ है? पर मेरे रूप में "मेघ-दूत" और "रामचरित मानस" तो अब भी हैं। आज तो छोटे-बड़े लोग संपत्ति और प्रभुता के अधिकारी हैं और जिनकी सेवा, प्रशंसा और यशोगान में मेरे ही निर्माता संलग्न हैं वे सभी अपनी सारी प्रभुता और धर्म को लेकर न जाने कहाँ विलीन हो जायँगे। रह जाऊँगा मैं; क्योंकि मुझी में चिरंतन आनंद और गौरव है। तो भी यह सच है कि जीवन-निर्वाह के लिए धन की आवश्यकता होती है। इसीलिए किसी न किसी रूप में प्रायः सबको अर्थसिद्ध के लिए कोई काम करना पड़ता है। मेरे निर्माताओं की साहित्य-सेवा में अर्थसिद्धि की भावना है ही नहीं, यह कहना सच नहीं है। पर यह बात भी सच है कि साहित्य द्वारा आनंद के रूप में मेरे निर्माता स्वयं जो कुछ पा जाते हैं, वही उनका यथार्थ पुरस्कार है। विहारी अपने सात सौ दोहों के लिए सात सौ मोहरें पाकर संतुष्ठ हो गये। पद्माकर अपने एक-एक अक्षर के लिए लाखों की संपत्ति पा गये। फिर भी यह पुरस्कार दूसरों की कृपा पर निर्भर है। इसी प्रकार प्रतिष्ठा और गौरव भी दूसरे की ही कृपा पर है। कोई किसी का मान करे या अपमान, उसे अपनी कृतियों से जो मनस्तुष्टि होती है वही यथार्थ में साहित्य कार्य के लिए प्रेरित करती है। संसार में अपनी विशेष स्थिति से ही कोई मान या गौरव पाता है। और विशेष स्थिति में पड़कर उसे अपमान भी सहना पड़ता है और कष्ट भी सहना पड़ता है। मेरे साहित्य

के क्षेत्र में यह कोई चिंतनीय बात नहीं है। मेरी यथार्थ हत्या तो तब होती है, जब तुम स्वयं साहित्य के उच्च आदर्श को छोड़कर उसे क्षणिक मनोविनोद, क्षणिक उपयोगिता अथवा क्षणिक प्रभुता का साधन बना डालते हो, या तुम मिथ्या प्रशंसा, मिथ्या गौरव, मिथ्या अभिमान से प्रेरित हो साहित्य के क्षेत्र को अपनी स्वार्थसिद्धि का एक उपाय समझकर उसी के लिए दल बना कर, परस्पर एक दूसरे की प्रशंसा कर, अपने-अपने विपत्तियों की निंदा कर व्यर्थ उछल-कूद करते रहते हो। साहित्य के सरोवर में भ्रमर हैं, बक है और भैंसे भी हैं, जो उसके निर्मल जल को गदला करते रहते हैं। पर मुझे इसकी चिंता नहीं है। तुम मेरा आदर करो या मत करो; पर यह जान लो Comrade, this is no book, who touches this touches a man.

बंधुवर, मैं एक निष्प्राण ग्रंथ नहीं, मुझमें एक मनुष्य की आत्मा विद्यमान है। जीवन सागर का मंथन कर उसमें वेदना और कष्ट के रूप में जो विष उसने प्राप्त किया, उसे वह स्वयं पी गया और अमृत के रूप में जो कुछ मिला, वही मुझमें विद्यमान है।

—श्री पदुमलाल पुन्नालाल

६. कर्ण और अर्जुन

[कथोपकथन]

[अर्जुन के बाणों से बिद्धकर जब कर्ण युद्धक्षेत्र में गिर पड़ा तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बतलाया कि कर्ण उसका ज्येष्ठ भ्राता है। अतः शोक-विह्वल होकर अर्जुन ने कर्ण के मस्तक को अपनी गोद में रख लिया और उसकी सेवा करने लगा। कर्ण अर्जुन की गोद में सिर रखकर विलाप कर रहा है।]

कर्ण—यह कौन है? किसका स्पर्श है? दुर्योधन! हाँ, दुर्योधन ही जान पड़ता है। आओ भाई, कर्ण ने शक्ति भर तुम्हारे लिए युद्ध किया। आओ मित्र, अब उसे अंतिम विदा दो!

अर्जुन—दुर्योधन नहीं हूँ, भाई! मैं पार्थ हूँ, तुम्हारा अर्जुन, तुम्हारा छोटा भाई!

कर्ण—कौन? पार्थ? हाँ, सचमुच यह तो पार्थ है। यह क्या बात है? तुम्हारा चिर-शत्रु मृत-प्राय हो रहा है, शस्त्रहीन, आहत, पराभूत पड़ा हुआ है। अब और क्या चाहिए?

अर्जुन—मुझे क्षमा करो, भाई! मैंने बड़ा अपराध किया है। तुम मेरे सहोदर हो, मेरे ज्येष्ठ भ्राता हो। यह मैंने अभी जाना है।

कर्ण—सहोदर! ज्येष्ठ भ्राता! शत्रुओं के प्रति यह कैसा संभाषण! मैं तुम्हारा शत्रु हूँ, तुम मेरे शत्रु हो! हमलोगों में यही संबंध है। क्या मैं तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता हूँ? हाँ सचमुच, तुम्हारा बड़ा भाई हूँ। आज प्रातःकाल मैंने सुना कि तुम मेरे अनुज हो, मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ। आज ही यह सुना—इसके पहले किसी ने आकर यह नहीं कहा कि मेरी जननी तुम्हारी माता है। चिरद्वेषी, चिरद्वंद्वी, चिरशत्रु सर्प और नकुल एक ही गर्भ से उत्पन्न हुए! भाई, यह भूल है; यह विधाता की भूल है। कर्ण तुम्हारा चिरद्वेषी शत्रु तुम्हारा ज्येष्ठ भाई हो, यह विधात की भूल नहीं तो क्या है? कर्ण अधिरथ का पुत्र है, यह ठीक है, यही अच्छा है? शत्रु के हाथ मारा गया हूँ, यही सोचकर पीड़ा हो रही है। बड़ा व्यथा है; बड़ा क्लेश है। पद्मावती! वृषकेतु! कोई नहीं है?

अर्जुन—शोक मत करो! धैर्य रक्खो! शांत हो!

कर्ण—शांत होऊँगा! चिंता मत करो, यह देखो मेरे चिर आराध्य, मेरे पिता सूर्य अस्त हो रहे है। पिता, मैं अब जा रहा हूँ। मैं शांत हो जाऊँगा। भाई, सदा के लिए चला जाऊँगा, पृथिवी पर तुम्हारा कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं रहेगा। तुम्हारा दर्प, तुम्हारा शौर्य, तुम्हारा यश अक्षुण्ण बना रहेगा। तुम अद्वितीय वीर रहोगे। पर—नहीं, मैं अब क्रोध नहीं करूँगा, द्वेष नहीं करूँगा। हिंसा का भाव भी मुझमें नहीं है। मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ, तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारी कल्याणकामना करता हूँ। मृत्यु आ रही है, चिरशांति आ रही है। जान पड़ता है, अब

मै अधिक देर तक नहीं रहूँगा। दो बातें कह देना चाहता हूँ, सिर्फ दो बातें, अपने हृदय की वेदना।

अर्जुन—सुनूँगा, तुम्हारी सभी बातें सुनूँगा। कौन जानता था कि अंतकाल में यह वेदना, यह व्यथा सहनी पड़ेगी।

कर्ण—हाँ, भाई, सचमुच बड़ी वेदना है, बड़ा दुःख! आजतक मैं इसे अपने हृदय मे छिपाता आया हूँ। पार्थ, भाई, मै आज तुम्हीं से अपने दुःख की यह बात कहता हूँ। आजतक मैने और किसी से यह बात नही कही। पार्थ, सोचकर देखो, बाल्य-काल से मै कितना अपमान, अवज्ञा, अवहेलना, तिरस्कार सहता आया हूँ। संसार से मैंने अपमान छोड़कर और कुछ नहीं पाया। पद-पद पर मुझे लज्जित होना पड़ा, क्षण-क्षण मे मुझे अपनी व्यर्थता का अनुभव हुआ। मेरे जन्म से मेरी जननी को लज्जा हुई। उसनें मुझे फेंक दिया। जन्मकाल में ही मुझे माता का तिरस्कार सहना पड़ा। किशोरावस्था में जब मेरे हृदय में वीरत्व जागरित हुआ, आकांक्षा हुई, तब मैंने अस्त्रगुरु द्रोण से अस्त्र-शिक्षा के लिए प्रार्थना की। गुरु ने राधा-सुत को अवज्ञापूर्वक लौटा दिया। फिर मै जामदग्न्य के पास गया, उनकी सेवा की, उनसे अस्त्र-शिक्षा प्राप्त की। परंतु मै क्षत्रिय हूँ—यह जानते ही उन्होंने शाप दे दिया, और शाप भी कैसा? प्रतिद्वंद्वी के सम्मुख तेरा यह बाण-बल व्यर्थ हो जायगा। उस दिन की तुम्हें सुध है, जब तुम अपनी अस्त्र-परीक्षा दे रहे थे, मैं तुम्हारा प्रतिद्वंद्वी होकर आया। मै भी अपनी अस्त्रकुशलता दिखलाना चाहता था, परंतु लोगों ने अधिरथ-सुत कहकर मेरा उपहास किया। दुर्योधन ने उस समय अपने गुणों से मुझे गौरवान्वित अवश्य कर दिया। परंतु ज्योंही अस्त्र-कौशल दिखाने के लिए उद्यत हुआ, त्योंही खबर आई कि कुंती के अकस्मात पीड़ा होने लगी और सभा भंग हो गई। मेरी शिक्षा व्यर्थ हो गई। हृदय की अभिलाषा हृदय में ही रह गई। सारी आशा नष्ट हो गई। बड़ा क्षोभ हुआ, बड़ी व्यथा हुई। आज भी समाज के उस अविचार और अन्याय का स्मरण कर मै जल जता हूँ।

अर्जुन—भाई, गत दुःख का स्मरण मत करो। मैं स्वयं लज्जित हो रहा हूँ।

कर्ण—गत दुःख तो गत हो ही गया। परंतु हृदय की व्यथा बनी रहेगी। मैंने सदैव अपने भाग्य से ही युद्ध किया और अंत में व्यर्थता ने मुझे पराजित कर दिया। अभी और भी सुनो! इतने में ही मेरी व्यथा समाप्त नहीं हुई। मुझे और भी अपमान सहना पड़ा, अपनी व्यर्थता का और भी अनुभव करना पड़ा। जब द्रौपदी का स्वयंवर हुआ और कोई भी क्षत्रिय लक्ष्य-भेद करने में समर्थ नहीं हुआ तब मैं दर्प से उठकर लक्ष्य-भेद करने को खड़ा हुआ। उस समय द्रौपदी ने कहा—मैं अधिरथ सुत को नहीं वरूँगी। अपमान और लांछन से मैं मस्तक नत कर चला आया। मेरी शक्ति व्यर्थ हुई; आशा व्यर्थ हुई, कामना व्यर्थ हुई; परंतु जैसे सिंह मनुष्य को अपने सम्मुख देखकर एक मात्र बंधन के कारण कुछ भी नही कर सकता वैसे ही मैंने भी अपने अपमान को सह लिया।

अर्जुन—भाई, मनुष्य भाग्य का खिलौना है, उसकी क्रीड़ा का साधक मात्र है।

कर्ण—आज प्रातःकाल ही मैंने मन ही मन दृढ़ प्रतिज्ञा की कि आज मैं अपने चिर-शत्रु पार्थ का दंभ नष्ट कर दूँगा। आज उसे अवश्य ही मारूँगा, आज अपने पथ को निष्कंटक करूँगा, आज कर्ण के जयघोष से सारी पृथिवी मुखरित होगी। उसी समय देखा, कुंती खड़ी है। उसने सर नीचा कर, व्यथित हृदय से, मुझे बतलाया कि मैं उसका पुत्र हूँ। क्षण भर में अंधकार नष्ट हो गया, हृदय में हर्ष भी हुआ और विषाद भी। परंतु मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा शिथिल हो गई। मंत्र-बद्ध सर्प के समान मैं स्तंभित होकर रणभूमि की ओर चला। उसी समय एक ब्राह्मण ने आकर भिक्षा माँगी। और जब मैंने भिक्षा देना स्वीकार कर लिया तब उसने मेरे जीवन के रक्षक कवच और कुंडल को माँग लिया। मैंने चुपचाप कवच और कुंडल दे दिये और उसी के साथ मेरे जीवन की अंतिम

आशा भी चली गयी। तो भी मेरी शक्ति प्रचंड थी। तुमने स्वयं मेरा प्रताप देखा। मेरी शक्ति कितनी दुर्धर्ष थी, परंतु हाय, रथ ता चक्र पृथिवी में धँस गया। सिंह वंधन में फँस गया। जन्मकाल से ही मै यही व्यर्थता देखता आया हूँ। मै विधाता का शापरूप हूँ। मेरा जीवन कीर्ति-हीन और निष्फल रहा। पुत्र होकर माता से त्यक्त हुआ, शिष्य होकर गुरु से तिरस्कृत हुआ। वीर होकर ख्याति नहीं प्राप्त की, विजय का लाभ नहीं किया। आकाश में धूमकेतु की तरह प्रकाश पाकर व्यर्थ ही हुआ। भाई, तुम्हें अपने वंश का गर्व है, माता के स्नेह पर अधिकार है, तुमने सर्वत्र यश प्राप्त किया, सर्वत्र जय-प्राप्त की। मैं ज्येष्ठ हूँ, पर श्रेष्ठ नहीं। मेरा नाम लुप्त हो जायगा, परंतु मुझे खेद नहीं है। तुमसे मेरा यही अनुरोध है कि मन में तुम मेरी लांछना, मेरी यह अपमान-व्यथा मत भूलना। भाई समझकर मन में स्थान देना। पृथिवी पर जो नहीं हुआ, वही स्वर्ग में होगा। हमलोग भाई-भाई होकर रहेंगे। और कुछ नहीं। अब जाता हूँ, भाई, तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, तुम सदैव सुखी रहो।

—श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

चतुर्थ परिच्छेद

[विवेचनात्मक निबंध]

१. विद्यार्थियों के कर्त्तव्य

कर्त्तव्य का दूसरा नाम कर्म है। मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है—यही विचार सर्वथा मुख्य है। मनुष्य के कर्त्तव्य के विषय में प्राचीन काल से आज तक बराबर विचार होता चला आया है। बड़े-बड़े देव, देवर्षि एवं सभी विचारशील विद्वान इसी विषय पर विचार किया करते थे और आज भी विद्वान् इस विषय को विचार करना अपना कर्त्तव्य समझते है।

इस विषय पर प्राचीन काल से अब तक कुछ विचार होने पर भी यह निश्चित नहीं हो सका कि मनुष्य का यही कर्त्तव्य है। इस विषय में अभी तक संदेह बना हुआ है। यह संदेह कभी मिटनेवाला नहीं। कारण यह है कि मनुष्य का कर्त्तव्य अवस्था-भेद से, काल-भेद से, देश-भेद से बदलता रहता है। यही कारण है कि इस विषय में नाना विद्वानों के नाना मत पाये जाते हैं।

परंतु भाग्यवश विद्यार्थियों के कर्त्तव्य के विषय में इस प्रकार का कोई मत नही पाया जाता। ऋषि-प्रणीत ग्रंथों मे जैसा विद्यार्थियो का कर्त्तव्य कहा गया है वही आजकल भी मान्य समझा जाता है। ब्रह्मचारी का चरित्र और उसकी दिनचर्या जैसी हमारे धर्म-शास्त्र में वर्णित है उसी के अनुसार विद्यार्थी अपना कार्य कर सकता है। वही उसका कर्त्तव्य है।

जो विद्यार्थी अपने ऋषि-प्रणीत ग्रंथो के आदेश को मान करके तदनुसार अपना व्यवहार रखते है वे ही अपने कर्त्तव्य का पालन करनेवाले समझे जाते है। जो विद्यार्थी ऐसा नही करते, जो अपने कर्त्तव्यों में उपरति रखते है, वे न केवल अपने कार्य में सिद्धि को प्राप्त नही होते, बल्कि उनका बहुत कुछ अनिष्टभी हो जाता

हैं। यह विद्यार्थीयों के लिए बड़े सौभाग्य की बात समझनी चाहिए कि अपने कर्त्तव्य-ज्ञान के लिए उनको वृद्धों के समान भटकना नहीं पड़ेगा। यदि विद्यार्थी एक घंटा भी प्राचीन ग्रंथों का अवलोकन करेंगे तो उनको अपने कर्त्तव्य का ज्ञान अच्छी तरह हो जायगा। उन कर्त्तव्यों में से हम कुछ कर्त्तव्यों का वर्णन संक्षिप्त रूप से यहाँ करते हैं:—

१. गुरु के समीप रहकर विद्याध्ययन करना।

२. गुरु के आज्ञानुसार कार्य करना।

३. गुरु की सेवा करना।

४. जीवन-निर्वाह-मात्र के लिए आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करना।

५. सौख्य, विलास के पदार्थों से अलग रहना।

६. भोजन-वस्त्र आदि का उपयोग आवश्यकतानुसार ही करना।

७. गप्पबाजी से बचना।

८. ब्रह्मचर्य-व्रत का पूर्ण रीति से पालन करना।

९. बुरी संगति से बचना।

१०. विद्याध्ययन में ही सदा लगे रहना और अन्य कोई ऐसा काम न करना जिससे विद्याध्ययन में बाधा पड़ने की आशंका हो।

११. सदा मृदु, शांत, दांत, लज्जाशील, धैर्यवान्, क्रोध-रहित, उत्साही, ईर्ष्या-शून्य और कर्त्तव्यपरायण होना।

सारांश यह कि गुरु-सेवापूर्वक शास्त्र पढ़ना ही एक मुख्य कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त और कोई काम उतना ही करना जितने से शरीर की रक्षा हो।

[महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा]

---

२. सहयोग और सहकारिता

शामिल में, पीर में, शरीर में न भेद राखैं,
हिम्मत-कपाट को उघारैं तो उघरि जाय।
ऐसी ठान ठानैं तो विनाहू जंत्र-मंत्र किये,
साँप के जहर को उतारैं तो उतरि जाय॥
ठाकुर कहत कछू कठिन न जानौ अब,
हिम्मत किये ते कहो कहा न सुधरि जाय।
चार जने चारहू दिशा तें चार कोने गहि,
मेरु को हिलायकै उखारैं तो उखरि जाय॥

—ठाकुर कवि

मनुष्य कितना ही समर्थ क्यों न हो, यह वात वहुत ही कठिन है, कि वह अकेला ही अपने संपूर्ण सांसारिक कार्य सफलता-पूर्वक संपादित कर लेवें। मनुष्य की वाचा-शक्ति की सच्ची सार्थकता तभी हैं, जब वह दूसरों से बातचीत करे। और, दूसरों से संभाषण करने के अवसर उसे जीवन में पल-पल पर प्राप्त होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है और उसे दूसरो से मिलकर बातचीत और काम करने की आवश्यकता सदा होती रहती है। निजी काम-काज में और विशेषकर सामाजिक कार्यों में इस प्रकार के मेल-जोल को "सहयोग" कहते हैं, जो एक प्रकार का मित्र-भाव है।

जिस प्रकार मित्रता के लिए मनुष्य में निष्कपटता होना परम आवश्यक है, उसी प्रकार सहयोग में भी यह गुण नितांत आवश्यक है। निष्कपटता के अभाव में सहयोग केवल एक समय-साधक उपाय कहा जा सकता है और उसमें वह नैतिक उच्चता नहीं रहती जिसका समावेश मनुष्यत्व मे होता है। इसके अतिरिक्त असत्यता के आधार पर स्थित किया हुआ सहयोग वहुधा सफल नहीं होता। यह एक दूसरी बात है कि मनुष्य दूसरे से मिलकर येन-केन प्रकारेण अपना कार्य सिद्ध कर लेवे और दूसरे का काम पड़ने पर उसके साथ प्रत्यक्ष वा परोक्ष असहयोग कर

देवे। सांसारिक सफलता की दृष्टि से इस प्रकार का क्षणिक सहयोग भले ही चातुरी की योजना अथवा सुंदर कूटनीति मान ली जाय; परंतु सदाचार के शुद्ध दृष्टि-कोण से वह गर्हित ही कहा जायगा।

सहयोग से उपयोगिता और चरित्र-गठन के साथ-साथ उत्तरदायित्व की भी शिक्षा प्राप्त होती है। इससे आत्म-विश्वास और परस्पर-प्रतीति की भावनाएँ जाग्रत होती हैं जो क्रमशः स्वावलंबन और सामाजिक एकता के लिए परम आवश्यक हैं। सहयोग मे थोड़ा-बहुत श्रम-विभाग भी हो जाता है जिसके कारण अज्ञानता अथवा आलस्य से उत्पन्न हुई कार्य की कई-एक कठिनाइयाँ दूर हो जाती है। सभा-समितियों के सुचारु संचालन और गुरु कार्यों की सफलता के लिए सहयोग एक उपयोगी और प्रमुख साधन है।

कई लोगों की ऐसी धारणा है कि सहयोग में स्वभावभिन्नता और स्वार्थ-परता के कारण बहुधा व्यवधान उत्पन्न होता है जिससे कार्य में यथेष्ट सफलता नही प्राप्त होती। सहयोग से मनुष्य की स्वावलंबन-प्रवृत्ति को दूसरे पर अवलंबित रहना पड़ता है। लोग यह भी समझते हैं कि जहाँ एक के बदले अनेक व्यक्तियों पर उत्तरदायित्व रहता है वहाँ "सौ सयानों के एक मत" की कहावत चरितार्थ होती है—अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति यह समझता है कि जो काम मैं न करूँगा वह मेरा सहयोगी कर लेगा। यदि किसी काम में कुछ निश्चय करना हो तो वह शीघ्र नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसमें सभी सहयोगियों की सम्मति लेना आवश्यक होता है। इसके सिवा सहयोग से जो उन्नति होती है वही कभी-कभी मत-भेद और पृथक्ता का कारण बन जाती है।

लाभ-हानि का विचार करने पर युक्तियों की अधिकता सहयोग ही के पक्ष में पाई जाती है। हम भारतवासियों के लिए इस साधन की विशेष आवश्यकता है; क्योंकि लगातार विदेशी शासनों के अधीन रहने से हमलोगों में निजत्व के भाव शिथिल हो गये हैं। हमलोग अपने बहुत से सामाजिक और राजनीतिक कर्त्तव्य भूल गये हैं और जिन कर्त्तव्यों का हमे थोड़ा-बहुत ज्ञान हुआ है उनकी ओर हम बहुधा उदासीन रहते हैं। हममें अपने देश-भाइयों के प्रति बहुत कम

श्रद्धा है और उनके अधिकार-तले कार्य करना तो हमलोग प्रायः अपमान-जनक समझते है।

"सहकारिता" एक दूसरे प्रकार का सहयोग है। यद्यपि इस शब्द का अर्थ "सहयोग" के समान ही है तथापि यह 'साझा', 'संघ' या 'एका' के अर्थ मे रूढ हो गया है। वर्तमान शताब्दि के प्रथम दशक में हमारे देश मे जिन 'सहकारी-सभाओं' और 'साख-समितियों' की स्थापना हुई हैं, उनका मुख्य उद्देश्य 'सहकारिकता' अर्थात् मिलकर ऐसा व्यापार करना है जिससे संघ के सदस्यों अथवा साझेदारों को परस्पर सहायता मिले। "सहकारिता" को हम "समुद्योग" भी कह सकते हैं।

सहकारिता की स्थापना पूँजी और परिश्रम के संघर्ष से हुई है। विचारवान् लोगों ने सोचा कि यदि व्यापार के ये दोनों तत्त्व एक दूसरे मे लीन हो जायँ अथवा दोनों में सहयोग हो जाय तो कार्य में सफलता के साथ-साथ पूँजीवालों और श्रमजीवियों को उचित परिमाण मे लाभ हो। इस योजना मे बहुधा श्रमजीवी ही मिलकर पूँजी लगाते है और वे ही संस्था का प्रबंध करते है। वे ही थोक या फुटकर माल का क्रय-विक्रय करते है। सहकारी सभाओं के द्वारा उद्योग-धंधे करने से मध्यस्थ अथवा दलाल के पास व्यर्थ द्रव्य नही जाता। सहकारिता से आत्म-शासन, आत्म-संयमन और आत्म-निर्देश की शिक्षा मिलती है; क्योंकि इसमें योग देनेवाले जो परिश्रम करते है वह संघ के प्रत्येक सदस्य के लाभ की दृष्टि से किया जाता है।

सहकारिता से और कई लाभ है। पूँजीवालों और श्रमजीवियों के स्वार्थों में भिन्नता होने के कारण दूसरे प्रकार के व्यापारों में बहुधा हड़तालें हो जाती हैं; पर सहकारिता की योजना में यह अवस्था नही आती; क्योंकि यहाँ पूँजी और परिश्रम मे कोई भिन्नता नही है। इससे परिश्रम को उत्तेजना मिलती है और असावधानी या काम-चोरी का अवसर बहुत कम आता है; क्योंकि प्रत्येक सदस्य की दृष्टि पूरी संस्था के लाभ की ओर रहती है। सहकारिता में मितव्यय (किफ़ायत) से काम होता है और इसमें देख-रेख के लिए विशेष परिश्रम करने

की आवश्यकता नहीं होती। इसके द्वारा तैयार किया गया माल बहुधा मँहगा नहीं पड़ता। सहकारिता से लोग शासन और व्यापार के साधारण तत्वों की भी शिक्षा प्राप्त करते है।

सहयोग के समान सहकारिता मे भी लोग कई दोषों की उद्भावना करते हैं। वे कहते है कि सहकारिता में अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग रहता है अथवा "बारह मुँह, बारह बातें" होती है। फिर सदस्यों के अपकर्मो से संस्था की सफलता मे बाधा पड़ती है। इसके सिवा श्रमजीवी लोग इस बात को कठिनाई से समझ सकते हैं कि संस्था के निरीक्षण और प्रबंध के लिए उच्च कोटि की बुद्धि की आवश्यकता होती है। सहकारिता से बहुत थोड़े लोगों को लाभ हुआ है और भविष्यत मे भी थोड़े ही लोगो को लाभ होने की संभावना है; क्योंकि देश की पूँजी अधिकांश में बड़े-बड़े व्यापारो मे लगी रहती है और पूँजीवाले बड़े-बड़े गुणी लोगों को ऊँचे वेतनों पर नौकर रखकर उनसे सहायता लेते हैं।

गुण-दोषों को देखते हुए सहकारिता देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिए एक उपयोगी योजना है। इससे थोड़ी पूँजीवालों को साधारण व्यापार करने का साहस होता है और थोड़ी पूँजी के व्यापार बहुधा सफल भी होते हैं। कृषि-बैंकों की स्थापना से किसानों को कम व्याज पर रुपया मिलने में सरलता होने लगी है और उनकी चल और अचल संपत्ति महाजनों के यहाँ जाने से बचने लगी है। बीमा और विदेशी व्यापार तक सहकारिता की सहायता से होता है। इसके संबंध में यहाँ तक भी कह सकते है कि जीवन के प्रायः सभी कार्यों मे सहकारिता का उपयोग हो सकता है। यह आर्थिक समता स्थापित कर प्रजा में संतोष और स्वतंत्रता उत्पन्न कर सकती है और इस प्रकार सहकारिता देशोद्धार का एक उपयोगी एवं उपकारी साधन है।

[श्री कामताप्रसाद गुरु]

---

३. सैनिक-शिक्षा

सदाचारी, तत्त्वज्ञानी, राजनीतिज्ञ और धर्माधिकारी पुरुषों तथा कवियों और लेखकों के लाख प्रयत्न करने पर भी संसार से युद्ध की आशंका कभी दूर नहीं हो सकती; क्योंकि "वसुधैव कुटुँवकम्" का मंत्र जपनेवाले भी परस्पर लड़ते हुए देखे और सुने जाते हैं। स्वयं श्रीकृष्ण महाराज ने भयानक परिस्थिति उपस्थित होने पर, गीता में अर्जुन को युद्ध की उत्तेजना दी है। यदि कर्त्तव्य-पालन के लिए युद्ध की आवश्यकता होती है, तो वह क्षंतव्य हो सकती है, परन्तु संसार के अनेक युद्ध बहुधा मिथ्याभिमान के संतोष के लिए, दूसरे को अपने वशीभूत करने की प्रवृत्ति से अथवा औरों की संपत्ति वा भूमि हड़पने की इच्छा के कारण हुए है और हो रहे हैं। युद्ध में भाग लेने अथवा उसके लिए तैयार रहने के निमित्त देश के प्रत्येक वयःप्राप्त और स्वस्थ व्यक्ति को सैनिक-शिक्षा अवश्य ग्रहण करनी चाहिए। समय पड़ने पर डाकुओं से लड़ने अथवा बलवा रोकने के लिए भी इस शिक्षा की आवश्यकता है।

सैनिक-शिक्षा से व्यक्तिगत लाभ भी है। आत्म-रक्षा के साधन प्राप्त होने के अतिरिक्त इससे व्यायाम के प्रायः सभी गुणों की—स्वास्थ्य, साहस, संतोष, शांति और सहानुभूति की प्राप्ति होती है। आज्ञा-पालन, सहिष्णुता, चंचलता और उत्साह भी इस शिक्षा के परिणाम हैं। देश-रक्षा और देशोद्धार की घोषणा करनेवाले नवयुवकों को सैनिक-शिक्षा की बहुत बड़ी आवश्यकता है। विद्वानों मे इस शिक्षा से "सोने में सुगंध" की लोकोक्ति चरितार्थ होती है। शस्त्र और शास्त्र का सम्मेलन बहुत कम देखा जाता है; पर इससे प्रभाव और प्रतिष्ठा की मात्रा दूनी हो जाती है।

कई लोगों का अनुमान है कि भारतवर्ष में सब जातियों की प्रवृत्ति सैनिक-शिक्षा अथवा युद्ध-प्रियता की ओर नहीं है। राजपूत (क्षत्रिय), तिलंगे, सिक्ख, गोरखे, मराठे और पठान ही अधिकांश में सैनिक-जाति के माने जाते है और यही विशेष-करके सरकारी तथा रजवाड़ी सेना में भरती किये जाते हैं। यद्यपि गुसाईं

जी ने रामायण में ब्राह्मणों को युद्ध के अयोग्य ठहराया है। ("मिले न कबहुँ सुभट रण गाढ़े। द्विज देवता घर ही के बाढ़े।") तथापि आजकल ब्राह्मण—विशेषतया कान्यकुब्ज ब्राह्मण—पुलिस और सेना में भरती होकर सफ़लतापूर्वक सैनिक-कार्य करते देखे और सुने गये हैं। मुगलों की बढ़ती हुई श्री के दिनों में प्रतापी अकबर के साथ जिस इतिहास-प्रसिद्ध हेमू (हेमराज) ने युद्ध किया था, वह जाति का बनिया और मुहम्मदशाह आदिल का सेनापति तथा मंत्री था। पिछले मुग़ल बादशाहों के साथ मराठों के जो युद्ध हुए उनमें महाराष्ट्री ब्राह्मण बहुधा सेनापति होते थे। इससे जाना जाता है कि अवसर मिलने पर या परिस्थिति उपस्थित होने पर सभी जातियाँ सैनिक-शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं।

कुछ स्वार्थ-साधक सांप्रदायिक नेता भारतवर्ष के नूतन सेना-प्रबंध में अपने संप्रदाय के व्यक्तियों को भरती कराने अथवा उनको उच्च पद दिलाने के उद्देश्य से सैनिक और असैनिक जातियों का भेद-भाव उपस्थित करते हैं; पर वे इस बात को कदाचित् जानकर भी भूलते हैं कि जो जातियाँ आजकल सैनिक समझी जाती हैं, वे भी किसी समय असैनिक थीं; केवल परिस्थिति ने उन्हें सैनिक बनाया। क्षत्रियों को प्राचीन श्रम-विभाग ने, सिक्खों और मराठों को बादशाहों के के अत्याचारों ने, पठानों और गोरखों को पर्वती प्रकृति ने और मुसलमानों को उनके धर्म ने सैनिक बनाया है। प्राचीन काल में जब भारत की स्त्रियाँ सेना-संचालन करती थीं, तब पुरुष क्योंकर कायर हो सकते थे?

सैनिक-शिक्षा पाठशालाओं में कुछ, विद्यालयों में बहुत-कुछ और महाविद्यालयों में अधिक दी जा सकती है। कई-एक सरकारी महाविद्यालयों मे इसका प्रबंध हो गया है। देहरादून में एक महाविद्यालय विशेषकर इसी शिक्षा के लिए सरकार की ओर से स्वतंत्र रूप में खोला गया है।

संसार के अनेक देशों में प्रजा की अनिवार्य सैनिक-शिक्षा तथा सेवा का विधान है, पर यह एक विवाद-ग्रस्त विषय है। इसके पक्ष-वालों का मत है कि इस प्रबंध मे युद्ध या विप्लव उपस्थित होने पर अतिरिक्त अभ्यस्त सेना की सहायता प्राप्त हो सकती है। अस्थायी नागरिक सेना को समय पर शिक्षा नहीं मिल सकती

और वह आवश्यकता के लिए पर्याप्त भी नही हो सकती। प्रत्येक राष्ट्र को चुनी हुई जातियों के बदले अपनी संपूर्ण प्रजा की शक्ति पर अवलंबित होना चाहिए और प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को अपने देश की रक्षा के निमत्ति प्रस्तुत रहना चाहिए। दूसरे पक्षवालों का कहना है कि आवश्यकता से अधिक सेना रखने मे राष्ट्र की युद्ध-प्रियता बढ जाती है और प्रजा पर व्यर्थ कर की वृद्धि होती है। इससे अंतर्राष्ट्रीय वैमनस्य की भी उत्पत्ति होती है जो संसार की अशांति को बढाता है। अधिक सेना के आधार पर निरंकुश राजा वा शासक प्रजा की मॉगों को पूरा करने अथवा उसे संतुष्ठ रखने के बदले उसे पशु-बल से दबाने का प्रयत्न करते हैं। अनिवार्य सैनिक-शिक्षा वा सेवा में बहुधा निर्बल लोग छूट जाते है, और बेकार लोग भरती किये जाते है। सेनागारो में भिन्न-भिन्न प्रकृति और रुचि के लोगों के एकत्र होने से अनेक दुर्व्यसनों की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। कभी-कभी बढी हुई सेना बलवा या ग़दर कर बैठती है। अनिवार्य सैनिक-शिक्षा देना और सेवा लेना नीति के भी विरुद्ध हैं; क्योंकि उनसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण होता है।

इच्छानुसार (न कि अनिवार्य) सैनिक-शिक्षा व्यक्ति के लाभ का एक उपयुक्त और उपयोगी साधन है। इससे निर्बलों और बेकारों को भी लाभ होता है। कायर, लजालू और आलसी मनुष्यों को इस शिक्षा से पुरुष-पदवी प्राप्त होती है। केवल पुरुष ही नहीं, स्त्रियॉ भी इससे अनेक लाभ उठा सकती है। उनकी सुंदरता और सुकुमारता इससे द्विगुणित वृद्धि प्राप्त कर सकती है।

सारांश यह है कि अशांति के वर्तमान युग मे प्रत्येक वयस्क व्यक्ति के लिए अपनी, अपनों की, राष्ट्र की तथा देश की रक्षा के हेतु सैनिक-शिक्षा और सेवा ग्रहण करना परम आवश्यक है।

[श्री कामताप्रसाद गुरु]

---

४. शिष्टाचार

जिसने आदर सहित गुणी को नहीं बिठाया;
दीन प्रणाम विलोक, हाथ कुछ भी न उठाया;
मधुर वचन सुन मधुर वचन जो कभी न बोला;
विधि ने किया अनर्थ, दिया उसको नर चोला।

जिस प्रकार उच्च नैतिक आदर्श का पालन करने के लिए मनुष्य को सदाचारी होना आव्यश्यक है, उसी प्रकार उसे दूसरों के साथ सद्-व्यवहार करने के लिए शिष्टाचार का पालन करने की आवश्यकता है। यद्यपि शिष्टाचार सदाचार का एक अंग है तथापि दोनों मे कई वातों का अंतर है। सदाचार का धर्म से प्रत्यक्ष संबंध है और उसकी अवहेलना करना पाप समझा जाता है; पर शिष्टाचार का संबंध व्यक्ति अथवा समाज के सुभीते तथा संतोष से है और उसकी अवज्ञा से दूसरों को अप्रसन्नता होती है जो बहुधा वैमनस्य का कारण हो जाती है। सदाचार मन, वचन और कर्म की एकता के रूप मे पाला जाता है; पर शिष्टाचार बहुधा वचन और कर्म ही से संबंध रखता है। सदाचार की अवहेलना से भयंकर आत्मिक परिणाम उपस्थित हो सकते हैं; पर शिष्टाचार के अभाव में बहुधा वैसा भविष्य में नहीं होता।

शिष्टाचार शिष्ट लोगों का आचार है। इसमें उन सब आचरणों का समावेश होता है जो शिक्षित जनों के योग्य समझे जाते है और जिनके व्यवहार से किसी समाज वा व्यक्ति को अपना काम-काज स्वतंत्रता और संतोष के साथ करने का सुभीता रहता है। शिष्टाचार से मनुष्य की शिक्षा, सुरुचि और सभ्यता का पता लगता है। शिष्टाचारी व्यक्ति अपने कुल, जाति और देश की शोभा है। शिष्टाचार से अधिकांश में मनुष्य के स्वभाव की भी जाँच हो जाती है। इस गुण का पालन करनेवाले के प्रति लोगों को श्रद्धा, विश्वास और आदर होता है, और वह अपने गुणों से दूसरों में भी वैसे ही गुण उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। विनय और नम्रता में ऐसा प्रभाव है कि

यदि मनुष्य इनका उपयोग आत्म-गौरव के साथ कर ले, तो अशिष्ट मनुष्य भी उसके साथ सहसा अशिष्ट व्यवहार करने का साहस न करेगा। शिष्टाचार से अनेक अवसरों और स्थानों पर शांति की स्थापना होती है और लड़ाई-झगड़े तथा कड़ी बातचीत का परिहार होता है।

बहुधा नवयुवक, चाहे वे शिक्षित भी हों, शिष्टाचार को स्वतंत्रता का बाधक समझते हैं। उनके मन में स्वतंत्रता की कदाचित् यह कल्पना रहती है कि मनमाना काम करना ही सच्ची स्वतंत्रता है, चाहे उसमें दूसरों की अथवा स्वयं उन्हीं की कैसी ही हानि क्यों न हो। इस मिथ्या भावना के वशीभूत होकर नवयुवक शिष्टाचार को यहाँ तक भुला देते है कि वे बहुधा बड़ों को प्रणाम करने में भी अपना अपमान समझते हैं। सयानों की हँसी उड़ाने अथवा अकारण ही उनके मत का खंडन करने में अनेक नवयुवक अपना गौरव मानते हैं, और उनके साथ स्वच्छंदता का व्यवहार करने में भी नहीं हिचकते। आजकल की उच्च शिक्षा भी अधिकांश में नवयुवकों की पूर्वोक्त मनोवृत्ति को उत्तेजना देती है। कभी-कभी यहाँ तक देखा गया है कि कोई बात पूछने पर वे पूरा और स्पष्ट उत्तर देने की भी आवश्यकता नहीं समझते और जब उन्हे मौनी वा मितभाषी होना चाहिए, तब वे वाचालता की धारा प्रवाहित करते है। वे इस बात को बहुधा भूल जाते हैं कि सयानों को संसार की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का जो ज्ञान और अनुभव अनेक वर्षों के अवलोकन और परीक्षा से प्राप्त हुआ है, वह उन्हें—(नवयुवकों को) विश्वविद्यालय की उपाधि के साथ नहीं मिल सकता।

सहयोग, सहकारिता, मित्रता, परिचय, सामाजिक व्यवहार आदि में शिष्टाचार की बड़ी आवश्यकता है। इसके अभाव में पहले वैमनस्य और फिर विरोध अथवा वैर उत्पन्न होता है, जिसके कारण अनेक प्रकार की अनिष्ट घटनाएँ घटती हैं। जिस संघ-शक्ति से समाज और राज के बहुत से कार्य संपादित होते है, वह कभी-कभी केवल शिष्टाचार की अवहेलना से भग्न हो जाती है। अशिष्टता की प्रवृत्ति बहुधा वर्द्धन-शील होती है, इसलिए इसे रोकना बहुत

आवश्यक है; नहीं तो यह दुष्प्रवृत्ति मनुष्य को बहुधा असभ्यता, उद्दंडता, उच्छृंखलता आदि दुर्गुणों के पंक में निमग्न कर देती है। इतिहास साक्षी है कि कभी-कभी शिष्टाचार के पालन से शांतिदायक और उसकी अवहेलना से भयंकर राजनीतिक परिणाम उपस्थित हुए हैं।

शिष्टाचार की थोड़ी-बहुत प्रवृत्ति लोगों में स्वाभाविक होती है। जो लोग शिष्टाचार को केवल कृत्रिम और दिखाऊ आचरण समझकर उसकी अवहेलना करते हैं, वे भी दूसरों के द्वारा किये गये उचित अथवा अनुचित व्यवहार की प्रशंसा व निंदा करते हैं। यथार्थ में शिष्टाचार की उत्पत्ति सभ्य समाज में आवश्यकता और अनुकरण से आप-ही-आप होती है। इनके साथ-साथ पुस्तकावलोकन, प्रवास, सार्वजनिक जीवन, आदि से शिष्टाचार के भावों की वृद्धि होती है।

शिष्टाचार के अवसर और स्थान प्रायः असंख्य हैं तथा मनुष्य को पग-पग पर उसके पालन की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ जब कोई हमारे घर आता है तब हमें उसे देखते ही "आइए, बैठिए" कहना चाहिए। यदि वह सम्मानित व्यक्ति है, तो उसके आने और जाने के समय हमें अपने स्थान से उठने की आवश्यकता है। फिर हमें अपना काम छोड़कर उससे कुशल-प्रश्न पूछना, पान-सुपारी से उसका आदर करना, प्रसन्न मुद्रा से उसकी बातचीत सुनना आदि आवश्यक हैं। इस प्रकार थोड़े-थोड़े ही समय में शिष्टाचार के कई कार्य करने की आवश्यकता होती है।

देश, काल और पात्र का ध्यान रखते हुए शिष्टाचार के मुख्य तीन विभाग किये जा सकते हैं—(१) वचन-संबंधी, (२) चेष्टा-संबंधी, और (३) कर्म-संबंधी। आगे प्रत्येक का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

वचनात्मक शिष्टाचार में इस बात ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि श्रोता की मर्यादा के अनुकूल आदर-सूचक शब्दों का उपयोग किया जावे। बातचीत में आत्म-प्रशंसा करने और "अपने मुंह मियाँ मिट्ठू" बनने की प्रवृत्ति को रोकना चाहिए और यथा-संभव परनिंदा से विरत रहना चाहिए। किसी की

बात काटना और उसकी भाषा की भूलें बताना भी शिष्टाचार के विरुद्ध है। शिष्ट वार्त्तालाप में आवश्यकता से अधिक विनोद अशिष्ट समझा जाता है। मंडली में लगातार किसी एक ही विषय पर और एक व्यक्ति के साथ संभाषण करने मे अशिष्टता सूचित होती है। शिक्षित लोगों को शब्दों के शुद्ध उच्चारण और सरल वाक्य-रचना पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। कई लोगों को बोलते समय बीच-बीच में "जो है सो"। "इसका क्या नाम" आदि पाद-पूरक शब्द वा वाक्यांश कहने की आदत होती है, पर यह अनावश्यक शब्द-योजना बहुधा दूसरों को अप्रिय लगती है।

चेष्टात्मक शिष्टाचार मनुष्य के मुख की मुद्रा तथा शरीर के अन्यान्य अवयवों के संचालन वा व्यापार से संबंध रखता है। चेहरे पर सदैव गंभीरता का भाव धारण करने से मनुष्य का मिथ्याभिमान भासित होता है; इसलिए किसीसे मिलने पर उसे थोडी-बहुत मुस्कराहट प्रदर्शित करनी चाहिए। शोक में खिन्नता और श्रद्धा में नम्रता का भाव प्रकट करने की आवश्यकता है। किसी के प्रश्न का उत्तर शब्दों के बदले सिर हिलाकर देना असभ्यता का चिह्न है। जब तक बहुत भारी आवश्यकता न हो, तब तक किसी को—विशेषकर स्त्रियों को—सिर वा हाथ के संकेत से न बुलाना चाहिए।

क्रियात्मक शिष्टाचार में उन सब कार्यों का समावेश होता है जो एक मनुष्य किसी व्यक्ति वा समाज के सुभीते के लिए करता है। मनुष्य को प्रत्येक कार्य में अपने पडोसी के सुभीते का सदैव ध्यान रखना चाहिए। सडक पर बाईं ओर चलना चाहिए और वृद्धों और स्त्रियों को रास्ता दे देना चाहिए। किसी के घर के पास या उसके द्वार के सामने खडे होकर जोर-जोर-से बातचीत करना, अशिष्टता है। जब तक विशेष आवश्यकता न हो, तब तक किसी को बुलाने के लिए उसके घर के किवाड खटखटाना अशिष्टता का चिह्न है। अपने घर आये हुए पाहुनों का शक्ति भर आदर-सत्कार करने में हमें कोई बात उठा न रखना चाहिए।

[श्री कामताप्रसाद गुरु]

५. नई शिक्षा का निरूपण

हमारे देश में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का मूल-स्रोत विदेश मे है; इसकी प्रेरणा पाश्चात्य शिक्षा-जगत से मिली है। इसका परिष्कार और परिपोषण एक अप्रिय राजनीतिक परिस्थिति में हुआ है और वह भी एक विशेष प्रयोजन से। यह गाथा अब इतना सर्व-गम्य एवं जन-विज्ञापित है कि इसकी पुनरावृत्ति निरर्थक है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह आलोच्य शिक्षा-प्रणाली विजातीय है, हमारी राष्ट्रीय निधि और मर्यादा से इसका कोई संपर्क, साहचर्य या समन्वय नहीं है। होता ही क्यों? हमारे सत्ताप्राप्त विदेशी अधिकारियों को इसकी चिंता तो थी नहीं। उन्हें तो हमारे लिए एक शिकंजा तैयार करना था। यद्यपि अंग्रेजों की यह शिक्षा-प्रणाली शिक्षा की शास्त्रानुमोदित व्याख्या तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का समर्थन करती है, फिर भी व्यावहारिकता के दृष्टिकोण से वह हमारे देश के लिए उपयुक्त नहीं जँचती।

किसी भी देश की शिक्षा-योजना का संबंध उस देश की भूमि, उसकी परंपरा, उसके प्रतिवंश से रहना चाहिए, यह साधारण-सी बात जान-बूझकर भुला दी गई थी। हम भारतीय अपने विकास के सही रास्ते से अलग कर गलत राह पर एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार ढकेल दिये गये और इस तरह हमारी बुनियाद ही धीरे-धीरे नष्ट होने लगी। हमने एक गलत दृष्टिकोण अपना लिया। सभ्यता को हमने एक उधार आवरण दिया और उसकी परख के लिए एक दोष-पूर्ण, भ्रममूलक मापदंड बना लिया। फलतः तथा-कथित शिक्षितों का एक अलग वर्ग-सा बन गया जो अपने को साधारण जन-वर्ग से भिन्न समझने लगा। हमारे ग्रामीण जीवन की समष्टि भंग होने लगी। हम अपनी नासमझी से अपने धर्म और संस्कृति की उपेक्षा करने लगे। सच्ची शिक्षा तो परदेशीय योजना और दासता की परिधि में संभव थी ही नहीं, हमने कुछ शब्दावली और शब्द-विन्यास के बल पर बाह्य आडंबर को ही ज्ञान समझ लिया। हमारा सर्वांगीण विकास तो हुआ नहीं, हम अपने मानस को केवल पारिभाषिक या अक्षरमय अभिज्ञता (Conceptional or Verbal

.nformation) से आवेष्टित कर वाहरी आडंवर को ही प्रश्रय देने लगे। विदेशियों द्वारा निर्धारित वौद्धिक मात्रा से हमे मानसिक आरोग्य तो मिला नही, क्योंकि उस विजातीय द्रव्य को हम आत्मसात कर नहीं सकते ; अपितु हमारे पावों-तले से आध्यात्मिकता का आधार भी जाता रहा। इस तरह हमारे व्यक्तित्त्व का विकास कुंठित हो गया और तव वह शिक्षा ही क्या जिससे व्यक्ति का सर्वतोमुखी सुसामंजस्यपूर्ण विकास नहीं हो।

शिक्षा वस्तुतः वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव-समुदाय, अपना जातीय आचरण अक्षुण्ण वनाये रखता है और आगे आनेवाली पीढ़ी को एक सचित धरोहर सौंप जाता है। इससे प्रतिकूल जानेवाली शिक्षा-पद्धति आखिर कव तक टिकती ? विचार-धारा का जो स्वाभाविक प्रवाह वरवस अवरुद्ध कर दिया गया था, वह धीरे-धीरे वाँध तोड़ने लगा। अँग्रेजी शिक्षा-पद्धति की शास्त्रीय आलोचना होने लगी और यह घोषित किया जाने लगा कि हमारी शिक्षा अभारतीय है, अपूर्ण है, अनुपयुक्त है और है अराष्ट्रीय। आगे चलकर इस वैधानिक प्रतिवाद ने विरोध का रूप धारण कर लिया। राजनीतिक दासता से मुक्ति के प्रयास को सर्वोपरि मान देते हुए भी विश्व-वंद्य महात्मा गाँधी ने शिक्षा-सुधार के आंदोलन का नेतृत्व भी अपने हाथों में लिया। महात्माजी के सामने हमारे राष्ट्रीय जीवन का सर्वांगीण चित्र था। समस्या राजनीतिक हो, शिक्षा-संवंधी हो, नैतिक हो या औद्योगिक—सव के सब एक ही नत्थी के कागज है। राष्ट्रीय जीवन में कोई कृत्रिम और कठोर विभाजन तो संभव नही और फिर सच्ची शिक्षा ही तो पीढियों के लज्जास्पद जीवन के ऊपर विजय प्राप्त कर सकती है। लोक-तंत्र की भित्ति भी ऐसे ही सच्चे नागरिकों पर सुदृढ़ रह सकती है जो सही तालीम या सच्ची शिक्षा में पलते है, जिनका जीवन-निर्माण सच्ची शिक्षा की सफल व्यवस्था के द्वारा हो सकता है। इसी उद्देश्य और आशय की शिक्षा का नाम ही तो आधार-शिक्षा या बुनियादी तालीम है।

गाँधीजी ने इस दिशा मे सन् १९३७ ई० की 'वर्धा-परिषद्' में 'आगे का कदम' उठाया और उसी सभा में संगठित डा० जाकिर हुसैन कमिटी ने राष्ट्रीय शिक्षा की एक योजना देश के सामने रक्खी। प्रारंभ में लोग इसे वर्धा-शिक्षा योजना कहकर

पुकारने लगे। कुछ प्रयोग भी हुए और बिहार इसमें सबसे आगे रहा। इसी शिक्षा का निखरा हुआ रूप 'नवीन शिक्षा या बुनियादी तालीम' है जिसे अब केंद्रीय-शिक्षा परामर्श-दातृ-समिति ने भी मुख्य मानकर बेसिक एजुकेशन के प्रसार का खाका तैयार किया है।

मोटी-मोटी बुनियादी तालीम या आधार शिक्षा को हम पढ़ाई का एक तरीका भर समझते हैं। कुछ लोग इसे हस्तकर्म और गृह-उद्योग-कला पर जोर देनेवाली शिक्षा-योजना समझते है। पर ऐसी धारणा रखनेवाले लोग एक भयानक भ्रांत में हैं। बुनियादी तालीम की यह परिभाषा एकांगीय ही नहीं दोषपूर्ण भी है।

नवीन-शिक्षा की इस पद्धति का महत्त्व इन बातों में है कि इसमें मानवीय और सामाजिक आदर्श पर जोर दिया गया है। विश्व-कल्याण की विशुद्ध भावना से यह शिक्षा-पद्धति अनुप्राणित है और इसलिए इसका लक्ष्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण है, जिसके आधार में न्याय और सहकारिता है। पटु और कार्यशील नागरिक उत्पन्न करना इसका प्रधान उद्देश्य है। दस्तकारी और अन्य उत्पादक श्रम के द्वारा बच्चों के हृदय में श्रमजीवियों के प्रति आदर तथा अपना कुटुंब समझने की भावना उत्पन्न की जाती है, साथ ही स्वावलंबन को भी प्रोत्साहन दिया जाता है।

बुनियादी तालीम शिक्षा-प्रणाली तो है ही साथ ही जीवन-निर्वाह की मार्ग-प्रदर्शिका भी है। यह शिक्षा जीवन से संबद्ध है, हमारे जीवनानुगत अवसरों के अनुकूल दी जाती है और इसका माध्यम या वाहक भी हमारा जीवन ही है। [illegible] की एक सजीव पद्धति है।

इस स्थान पर बुनियादी तालीम की वर्तमान रूपरेखा को अंकित कर देना समीचीन होगा। बुनियादी तालीम, आधार-शिक्षा या बेसिक एजुकेशन ६ से १४ वर्ष के लड़के और लड़कियों की सार्वत्रिकशिक्षा की एक योजना है जो निःशुल्क और अनिवार्य होगी। इसके अंतर्गत वास्तविक जीवन को नये साँचे में ढालने का स्पष्ट संकेत और आयोजन प्रारंभ से ही चुने हुए कार्यों के द्वारा मिलेगा। बच्चों की पढ़ाई का माध्यम हिंदुस्तानी है और पाठ्य-विषयों का

मध्य बिंदु कोई एक उपयोगी उत्पादक देहाती कारीगरी है। धंधा या दस्तकारी का चुनाव स्थानीय परिस्थिति के अनुसार वांछनीय है। उद्योग को निश्चित करने में इस बात का ख्याल रखना होता है कि उसमे शिक्षा की पर्याप्त संभावनाएँ हैं, साथ ही वह विद्यार्थी को स्वावलंबी बनाने में सहायक है। ऐसी आशा की गई है कि स्कूल में चलाये गये उद्योग से शाला का चालू खर्च प्रायः निकल आयेगा।

आठ वर्ष की अवधि पूरा करने के बाद शाला से निकले हुए छात्रों की योग्यता आज के मैट्रिक पास के समीप रहेगी। पर इस मान (Stage) तक अँग्रेजी की जानकारी अनावश्यक समझी गई है। इसके स्थान पर उन्हें सामान्य विज्ञान और समाज-शास्त्र का बोध कराया जायगा।

यह योजना आचरण-प्रधान है और इसमें हस्तकर्म जैसे शारीरिक श्रम को पूरा मान दिया गया है। ब्रिटिश सरकार के आश्रय और तत्त्वावधान में दी जानेवाली शिक्षा तो अब दम तोड़ चुकी है। यह पुस्तकों तक ही केंद्रीभूत थी, पर बुनियादी शिक्षा में कला और उद्योग को केंद्र रखकर उसकी परिधि में बच्चों का शिक्षण तथा उनके व्यक्तित्व का विकास अपेक्षित हैं।

नई तालीम के शिक्षा-शास्त्रियों का दावा है कि काम करते-करते अपनी कार्य-परिकल्पना (Project) के क्रम-विकास में ही विद्यार्थी उसमें निहित ज्ञान को ग्रहण कर लेगा, उसे आत्मसात कर लेगा। यह शिक्षक का दायित्व है कि चुने हुए कार्य-खंडों को पूरा करने में प्राप्त अनुभवों को एक संगठित रूप दिया जाय। जिज्ञासा और पूछ-ताछ की प्रवृत्ति को जाग्रत कर शिक्षक लड़कों को स्वाध्याय और अनुसंधान की ओर ले जॉय।

आठ वर्षों की उद्योग-प्रधान शिक्षा समाप्त करने के बाद विद्यार्थी उत्तर बुनियादी-शाला में दाखिल होगा। पर यदि वह आगे पढना जारी नही भी रख सके तो भी उसकी योग्यता ऐसी होगी, उसका व्यक्तित्व ऐसा होगा कि वह अपने समाज में, अपने गॉव में एक कुशल, कार्यशील और उत्तरदायी सदस्य का स्थान ले सकेगा। राष्ट्र का कल्याण और उत्कर्ष भी तो इसी में हैं कि इसका प्रत्येक सदस्य कुशल नागरिक बनकर अपना अंशदान समाज और देश की उन्नति मे दे सके।

उत्तर-बुनियादी-शाला (Post-Basic School) का कोर्स पूरा कर विद्यार्थी विश्वविद्यालय के क्षेत्र में उतरेगा जहाँ उसे विशेष अध्ययन और अन्वेषण की सुविधा मिलेगी। बुनियादी तालीम के उद्देश्य और पाठ्यक्रम को सामने रखकर विश्वविद्यालय की शिक्षा-पद्धति में भी तदनुरूप आवश्यक परिवर्तन होनेवाला ही है। लेकिन यह तो आगे के चित्र का संकेत भर है। आलोच्य विषय तो बुनियादी तालीम है जो अभी मुख्यतः ६ से १४ वर्षों के बच्चों के लिए चालू की जा रही है। सवप्रथम यह स्पष्ट कर देना अप्रासंगिक न होगा कि बुनियादी तालीम प्राथमिक शिक्षा में परिणत होते हुए भी वर्तमान प्रायमरी शिक्षा का रूपांतर नहीं है। यह एक मौलिक योजना है। और इसकी विशेषता न केवल इसकी प्रणाली में है, वल्कि इसके लक्ष्य, विस्तार और इसके साधन में भी है। मौजूदा प्रायमरी शिक्षा कुछ 'लिखना, पढना और हिसाब' को ही एकमात्र उद्देश्य समझती है। उसका कोई निश्चित मान (Marked Stage) नही है जहाँ पहुँचकर विद्यार्थी एक सच्चे नागरिक के रूप मे समाज में स्थान पा सकें। तो क्या, मौजूदा उच्च शिक्षा में भी यह खूबी नहीं है कि कालेजों से निकले विद्यार्थी, कार्यशील, उद्यम-प्रिय, जागरूक और उत्तरदायी व्यक्ति के रूप में समाज के सामने आवें ? इन्हें डिग्रियाँ क्या मिलती हैं, नौकरी का पास-पोर्ट मिलता है जिसके बूते पर किसी फर्म, संस्था या दफ्तर में जीविका भर मिल सकती है। बुनियादी तालीम ऐसे उपजीवियों का नही, वल्कि स्वाश्रयी और स्वाभिमानी व्यक्तियों का निर्माण सोचती है। इस शिक्षा को पाकर छात्र ऐसे नागरिक में परिणत होंगे जिनको अपनी बुनियाद, अपना ठौर, अपना आधार प्राप्त रहेगा जिसके वल पर वे संसार के कार्य-क्षेत्र में सफल हो सकेंगे।

यह शिक्षा सर्व-सुलभ, निःशुल्क और अनिवार्य इसलिए है कि जाति और संप्रदाय के भेद-भाव और विषमता की जड खोद दी जाय और सबको समान अवसर प्राप्त हो। इसकी अवधि या मियाद आठ साल की इसलिए है कि इससे कम अर्से में उद्योग में कुशलता और वौद्धिक उपलब्धि मे स्थायित्व नही आ सकेगा। कला या कारीगरी में कुशलता प्राप्त करने के लिए शारीरिक विकास और मानसिक

प्रौढ़ता दोनों ही एक हद तक आवश्यक है। हिंदी माध्यम के संबंध में जो विचार-धारा है उससे हम भलीभाँति परिचित हैं। एक ऐसी राष्ट्रभाषा हमें चाहिए ही जो साधरण जन-वर्ग के लिए आसान हो। हाँ, उसके शब्द-चयन तथा सौष्ठव पर भले ही मत स्थिर करना पडे।

बुनियादी तालीम की जो चर्चा ऊपर की गई है वहाँ तक आम तौर से विरोध नहीं हो सकता है। कुछ लोग 'बुनियादी' नाम से चौंकते अवश्य है। पर इसमे चौंकने की कोई बात नही है। मैंने शुरू में ही जिक्र किया है कि अँग्रेजों द्वारा प्रचलित शिक्षा ने हमारी बुनियादी, हमारी जड ही बिगाड़ दी थी। हम अब इस बुनियादी तालीम के सहारे उस धरोहर को लौटा लाना चाहते है। हम अपनी भूल सुधारना चाहते हैं, अपनी राष्ट्रीय पुनर्निर्माण करना चाहते हैं।

शिक्षा में दस्तकारी का स्थान भी मान्य रहा है, पर बेसिक एजुकेशन की नवीनता उसके प्रयोग और प्रयोजन में है। नई तालीम में निहित उद्योग बच्चों को अनुभव प्राप्त करने का अवसर देता है जिससे उनका व्यक्तित्व प्रस्फुटित हो जाता हैं। काम करने में, चीजें तैयार करने मे रचना का आनंद है जो शिक्षा और संवर्द्धन के लिए नितांत आवश्यक है।

दस्तकारी को अपनाकर विद्यार्थी उपार्जन करनेवाला व्यक्ति तैयार होगा; वह कदापि निकम्मा नही रहेगा। इस तरीके से आर्थिक लाभ के साथ-साथ नैतिक उत्कर्ष भी उसे प्राप्त होगा।

स्वावलंबी नागरिकों की सृष्टि तो बुनियादी तालीम में अभीष्ट है ही, साथ ही, इस विचार का भी प्रतिपादन किया गया है कि बुनियादी स्कूलों का चालू खर्च भी वहाँ के उत्पादन और तैयार माल से निकल आवे। यह शर्त्त कड़ी जरूर हैं, पर दुष्प्राप्य या असंभव नही है। यदि हम अपनी शिक्षा-संस्थाओं से आलस्य निकम्मापन दूर करना चाहते है और शिक्षा का अधिकाधिक प्रसार चाहते हैं तो बुनियादी तालीम का गठबंधन स्वाश्रयिता से करना ही होगा। शिक्षक-समाज की उन्नति की समस्या का समाधान भी इसीमें है। हमारे देश के लिए यह नुस्खा

वहुत ही कारगर है। मैं यहाँ पर श्री मनु सूबेदार की जँचती हुई उक्ति का उल्लेख करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता :—

"गरीव देश में शिक्षा और उद्योग को एक दूसरे से अलग रखना लाभदायक नहीं है। जव हमारी चादर छोटी है, तव तन को अच्छी तरह ढँकने के लिए हमें थोडा सिकुड कर सोना चाहिए।"

स्वाश्रयी शिक्षा के प्रवर्त्तक पूज्य गाँधीजी तो यहाँ तक कह चुके है कि "अगर नयी तालीम स्वाश्रयी नहीं हो सकती तो हमें यह मानना पड़ेगा कि हम सात लाख गाँवों में यह नई चीज नहीं फैला सकते।"

भौतिकवाद की चकाचौंध में भले ही हम इस सिद्धांत का मखौल उडावें पर वात सही है। गाँधीजी ने अहिंसा की नीति से भारतीय राष्ट्र को वंधन से मुक्त किया और इसी अहिंसक और स्वाश्रयी शिक्षा से व्यक्ति की मुक्ति मिलेगी। शिक्षा की इस कल्पना में नैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक धाराओं का समन्वय है।

—प्रिंसिपल भगवानप्रसाद]

६. पाई का लेखा, रुपये की भूल

मनुष्य समाज में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं, जो पद-पद पर जीवन में उपर्युक्त कहावत चरितार्थ करते हैं। उनकी दृष्टि ही क्षुद्रता की ओर सतर्क रहती है। महत्त्व को देखने में उनके चर्मचक्षु अकृतकार्य रहते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि मानव-जीवन किसी महान् उद्देश्य के लिए है। यदि कोई, छोटे-छोटे कार्यों का लेखा तैयार करने में अपने अमूल्य समय और अपूर्व शक्ति का अपव्यय करेगा तो उससे महान् कार्यों में त्रुटि होना अनिवार्य होगा। पाई का लेखा करते-करते वह रुपये की भूल कर वैठेगा। इसलिए विद्वानों का कहना है कि छोटी-छोटी वातों की चिन्ता में अपने मस्तिष्क को मत खपाओ। इन्हे जीवन की पगडंडियों में उलझने के लिए, छोड़कर तुम तो राजमार्ग का अनुसरण करने चले। उनकी जटिलता में उलझ जाने पर फ़िर कहीं न रहोगे। इस छोटे जीवन मे इतना

समय और सुयोग ही कहाँ है कि तुम फूँक-फूँककर पैर रखते हुए निकल जाओगे? छोटी से छोटी बात के विषय में सतर्क रह सकोगे?

अपने पवित्रतम सर्वस्व को उत्सर्ग कर देने के महिमामय भाव की ओर विरत होकर लोग वैदिक कर्मकांड की जटिलता के समय, यज्ञों में पशुबलि की ओर स्वभावतः प्रवृत्त हो गये थे, हिंसा की धूम मच गई थी। उसी को लोगों ने धर्म मान लिया था। क्या यह रुपये की भूल न थी। अंत मे प्रतिक्रिया होकर हिंसा के स्थान पर अहिंसा की प्रस्थापना हुई। पर धीरे-धीरे पाई की जटिलता में पड गई। फलस्वरूप यहाँ तक प्रयत्न किया जाने लगा कि श्वास लेते समय जो वायु अंदर जाती है उसमें असंख्य क्षुद्रकाय जीव होते हैं। पेट में पहुँच कर उनकी हत्या हो जाती है। इसलिए उनकी रक्षा की जाय।

जहाँ इस प्रकार सूक्ष्म-विचार-प्रणाली को व्यावहारिक जीवन मे स्थान मिलने लगा, वहाँ समझ लेना चाहिए कि मनुष्य अपने महान् उद्देश्य से पथभ्रष्ट होकर जटिलता के बंधन मे अपने आपको कस रहा है। क्षुद्रता के अंश-अंश का हिसाव रख कर भला किसी ने कोई महान् कार्य किया है? माली यदि व्यर्थ झाड़-झंखाड़ों और कूस को उपेक्षापूर्वक उखाड़-उखाड़ कर फेंकता न जाय तो उपवन के सौंदर्य का अपूर्व दर्शन हमे कैसे हो? घास-फूस का लेखा रखने से माली का महान् उद्देश्य पूर्ण नही हो सकता। यदि कोई उसे निर्दयता के दोष से कलंकित करे तो अनुचित होगा। घास-फूस और झाड-झंखाडों के प्रति उसकी थोडी-सी निर्दयता उसके कार्य के महत्त्व को देखते हुए अवश्य क्षम्य है।

इस प्रकार हम इस निर्णय पर पहुँच जाते है कि कार्य कितना ही महान् हो, इसके प्रति हमें उतना ही अधिक ध्यान देना चाहिए और उसकी पूर्त्ति में उतनी ही तत्परता से प्रयत्नशील होना चाहिए। उसकी प्राप्ति मे यदि कोई क्षुद्र महत्त्ववाले कार्यों की उपेक्षा भी करनी पड़े तो अनुचित नहीं। यदि हम इसके विपरीत करेंगे तो हमारी दृष्टि में दोष है कि हम उस कार्य के वास्तविक महत्त्व का अंदाज नहीं लगा सकते, क्षुद्र वस्तुओं को महान् और महान् वस्तुओं को क्षुद्रतम

देखने का हमें अभ्यास पड़ गया है, अथवा हम रुपये की परवाह नहीं करते, हमारा सारा ध्यान तो पाई के लेखे पर है।

अब एक साधारण उदाहरण देकर हम अपने कथन को और भी स्पष्ट करना चाहते हैं। एक सज्जन ने, जो इसी श्रेणी के थे, सौ डेढ सौ रुपया खर्च करना उचित न समझा और इसलिए अपने मुकदमे के सबूत के कुछ जरूरी कागजात तलब नहीं कराये। इसके कारण वे अपना कई हजार का मुकदमा हार गये। बाद को उसी मुकदमे के लिए उन्होंने ऊँची अदालत में पाँच-छः सौ रुपये खर्च किये। अब देखिए, यदि वे उनमें से केवल सौ रुपये पहले ही खर्च कर देते, तो मुकदमा भी जीत लेते और खर्च भी बचा लेते। लेकिन ऐसा वे क्यों करते? उनका ध्यान तो पाई के हिसाब की तरफ था।

बहुत से ऐसे लोग देखने में आते हैं जो बाजार मे सौदा खरीदने के समय आने दो आने के फायदे के लिए सारी दूकानें छान डालते है। उन्हे यह ध्यान भी नहीं आता कि वे अपना जो समय खो रहे हैं उसकी कीमत उस लाभ से कहीं अधिक है, जिसके लिए वे इतना परिश्रम कर रहे हैं। यदि वे इसी समय को किसी उपयोगी कार्य में लगाते तो निश्चय ही आने-दो-आने से कहीं अधिक का फायदा कर लेते। ऐसे लोगों के लिए किसी का उपदेश हैं कि "दुअन्नी को अपनी आँख के इतने पास मत ले जाओ कि उसकी ओट मे का रुपया भी तुम्हें दिखलाई न पड़े।" अर्थात् जहाँ दो आने खर्च करने से एक रुपये का लाभ होता हो वहाँ दो आने का मुँह मत देखो।

सफल दूकानदार इस प्रकार के मनोविज्ञान से खूब परिचित होते हैं। वे चार पैसे के पान या इलाची आदि से ग्राहक की खातिर करके उसे सदा के लिए अपना चेला बना लेते हैं। फिर बराबर लाभ उठाते हैं। यदि पहले कुछ छोटा खाना पसंद न करते तो वे ग्राहक का मन अपनी ओर कैसे आकर्षित कर पाते? कैसे उनको उससे आगे चलकर लाभ होता?

कहने का प्रयोजन इतना ही है कि जीवन के किसी भी क्षेत्र मे सफलता संपादन करने के लिए पाई के लेखों पर ध्यान न देना ही ठीक होगा। यदि

हम पाई के लेखे का विचार अपने मस्तिक से निकाल नही देते तो निश्चय ही रुपये की भूल कर बैठेंगे—अर्थात् हम कभी अपने कार्य में सफल नही होंगे। उपन्यासकार जो उपन्यास लिखने बैठता है, वह भी हर एक बात यथावत् नही लिखता। बहुत-सी बातें भुलाकर केवल उन्ही का वह जिक्र करता है जो उसके उद्देश्य को प्रभावशाली बनानेवाली हैं। यदि वह ऐसा न करे तो उसका उपन्यास भानुमती का पिटारा बन जाय। उससे आनन्द उठाने के बदले पाठक उसके इंद्रजाल में भटकता ही रह जाय।

भला, हमारी आँखे क्या केवल उन्ही पदार्थों को देखती है जिनका हमें ज्ञान होता है? कदपि नहीं। हम चलते-चलते असंख्य वस्तुएँ देखते जाते है; पर हमारे ध्यान में केवल कुछ ही रह जाती हैं। ये कुछ वे ही होती हैं जो विशेष प्रयोजनीय होती है। अप्रयोजनीय वस्तुओं पर दृष्टिपात करके भी हमारी आँखें उनको ध्यान में नही लाती।

ऐसी हालत मे यदि हम पाई का लेखा रखने और रुपये की भूल करने की कहावत अपने जीवन में चरितार्थ करेंगे तो अवश्य ही हमारा आचरण अनैसर्गिक होगा। वह हमारी सफलता में बाधक होगा। हम कभी उन्नति और विजय का महत्त्व अपने जीवन में अनुभव न कर सकेंगे।

—श्री शंभूदयाल सक्सेना]

७. मानव जीवन में वनों का महत्त्व

वृक्षों की नीली छटा के लिए हमारे पूर्वजों मे जो प्रेम था, वह हममें भी होना चाहिए। हमें अपनी वन-प्रधान संस्कृति की ओर अभिमुख होना चाहिए। वनों की छाया में जन्म लिया। वृक्षों के पत्तों पर प्रभात-कालीन जलकण का जलपान किया। समीर मे डोलती हुई पत्रावलियों में आती हुई चंद्रकिरण के साथ नृत्यकला के प्रथम पाठ पढ़े। इस संस्कृति के मौलिक सिद्धांतों को अर्वाचीन जीवन में हम ला सकते है। हर एक युग में अपनी संस्कृति की प्रेरणा से हमने अपने संस्कारों की मूलभूत भावनाओं को सुदृढ़ बनाया है। इतना ही नहीं,

विभिन्न युगों में जो क्लिष्टताएँ उपस्थित हुईं, भारत-वासियों ने उन्हें भेदने के लिए इन मूल्यों को शक्ति और व्यापकता प्रदान की।

एक समय ऐसा भी था, जब हमारी संस्कृति सर्वांग जीवन को समरस बनाती थी। आर्थिक जीवन पर भी उसका प्रभाव पड़ता था। लेकिन आज हमने इन प्रश्नों को एक दूसरे से बिलकुल पृथक् कर दिया है। सच तो यह है कि समस्त जीवन एक है, अभेद्य है। इस सत्य को देखने की कला हमारे हाथों से निकल गई है। लेकिन मुझे तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि जब तक समस्त जीवन को एक रूप में देखने की कला हम फिर से नही सीखेंगे, तब तक हममें न राष्ट्रीय आत्मविश्वास आयेगा और न इस भयंकर परिस्थिति से पार उतरने की शक्ति आयेगी।

आज जो बहुत बड़ा प्रश्न हमारे सामने है, उसको लीजिए। भारत में कभी भी अन्न की कमी नही थी। भूतकाल में भारत धान्य और धन से समृद्ध था। आज न्यूनता हमारे सामने तांडव कर रही है। जो माता अभी तक 'सुजलां-सुफलां-शस्य-श्यामलां' थी, वह क्षीण हो गई है। अपनी संतानों को भी वह खिला नहीं सकती।। क्यों? क्योंकि जो हमारी सांस्कृतिक प्रणाली है, उसको नवीन दृष्टि से देखने की शक्ति हममें नहीं रही। किंतु यह बात निश्चय समझिए कि इस शक्ति के बिना हम अर्वाचीन जीवन में टिक नहीं सकते।

"वृक्ष ही जल है, जल रोटी है और रोटी ही जीवन है।" ये शब्द नग्न सत्य हैं। आज सभी भारतीय हृदयों मे असंतोष भरा है; क्योंकि हमारे पास खाने को अन्न नहीं। हमारे पास अन्न नही है; क्योंकि पानी संग्रह करने की पुरानी पद्धति हम हस्तगत नही कर सके। हमारे पास पानी नहीं है; वर्षा अनिश्चित है; क्योंकि हम तरु-महिला भूल गये हैं। हजारों वर्षों तक हम जीवित रहे; क्योंकि हम वन-विहारी लोग थे; लेकिन हमारी दृष्टि संकुचित हो गई। हम नये-से बन गये। तरु-महिला की हमको परवाह नहीं रही। वृक्षों को हम काटने लगे। वृक्षारोपण आज एक फैशन बन गया है, परन्तु उसमें जो धार्मिक श्रद्धा का तत्त्व था, वह चला गया।

हमारी सारी संस्कृति वन-प्रधान है। ऋगवेद, जो हमारी सनातन शक्ति का मूल है, वन-देवियों की अर्चना करता है। मनुस्मृति में वृक्षविच्छेदक को बडा पापी माना गया है। उसके लिए दंड का विधान किया है। मत्स्यपुराण में कहा गया है—"जो आदमी वृक्षों को नष्ट करता है, उसे दंड दिया जाय।" तालाबों, सड़कों या सीमा के पास वृक्षों का काटना बडा गुरुतर अपराध था। उसके लिए दंड भी बड़ा कडा रहता था। उसमें कहा गया है कि जो वृक्षारोपण करता है, वह तीस हजार पितरों का उद्धार करता है। अग्निपुराण भी वृक्ष-पूजा पर जोर देता है। वृक्षों का रोपण स्नेहपूर्वक और उनका परिपालन पुत्रवत् करना चाहिए।

पुत्र और तरु में भी भेद है; क्योंकि पुत्र को हम स्वार्थ के कारण जन्म देते है, परंतु तरु-पुत्र को तो हम परमार्थ के लिए ही बनाते हैं। ऋषि-मुनियों की तरह हमें वृक्षों की पूजा करनी चाहिए; क्येकि वृक्ष तो द्वेषवर्जित है। जो छेदन करते हैं, उन्हें भी वृक्ष छाया, पुष्प और फल देते है।

इसलिए जो विद्वान् पुरुष हैं, उनको वृक्षों का रोपण करना चाहिए और उन्हें जल से सीचना चाहिए।

हम स्वर्ग की बात क्यों करें? हम वृक्षारोपण कर के यहाँ ही स्वर्ग क्यों न बनाये? समस्त इतिहास में महान् सम्राट अशोक ने कहा है—"रास्ते पर मैंने वटवृक्ष रोप दिये है, जिससे मानवों, पशुओं को छाया मिल सकती है। आम-वृक्षों के समूह भी लगा दिये है।" आज प्रभुत्व-संपन्न भारत ने इस महाराजर्षि के राज्य-चिह्न ले लये है। २३ सौ वर्ष पूर्व उन्होंने देश में जैसी एकता स्थापित की थी, वैसी ही हमने भी प्राप्त कर ली है। क्या हम उनके इस संदेश को नहीं सुनेंगे? हम इस संदेश को सुनकर निश्चय ही ऐसा प्रबंध करेंगे, जिससे भारत के भावी प्रजाजन कह सकें कि हमने भी हर रास्ते पर वृक्ष लगाये थे, जो मानवों और पशुओं को छाया देते हैं।

हमारी संस्कृति में जो सुंदरतम् और सर्वश्रेष्ठ है, उसका उद्भव सरस्वती के तट के वनों में हुआ। नैमिषारण्य के वन में शौनक मुनि ने हमकों महाभारत की कथा सुनाई—महाभारत, जो भारतीय आत्मशक्ति का स्रोत है। हमारे अनेक

तपोवनों में ही ऋषि-मुनि वास करते थे, आजीवन अपने संस्कार, आत्म-संयम और भावनाओं को सुदृढ़ बनाते थे। हमारे जीवन का उल्लास वृंदावन के साथ लिपटा हुआ है। वृन्दावन को हम कैसे भूल सकते है ? वही कृष्ण भगवान ने यमुना-तट पर नर्तन करते हुए डालियों और पुष्पों के ताल के साथ अपनी वेणु बजाई। उसकी ध्वनि आज भी हमारे कानों में सुनाई देती है।

हमको पूर्वजों की ज्वलंत संस्कृति मिली है, लेकिन हम उसके योग्य नही रहे। हम अपने वनों को काट डालते हैं। हम वृक्षों का आरोपण करना भूल गये। वृक्ष-पूजा का हमारे जीवन मे स्थान नही रहा। हमारी स्त्रियों में से शकुन्तला की आत्मा चली गई है। शकुन्तला वृक्षों को पानी दिये विना आप पानी ग्रहण नहीं करती थी। आभूषण-प्रिय होती हुई भी वह यह सोचकर पल्लवों को नही तोड़ती थी कि इससे वृक्षों को दुःख होगा। पार्वती ने देवदारु को पुत्र के समान समझ कर उसे माँ के दूध के समान पानी पिला कर बढाया।

मंजरित वृक्षों का सौंदर्य हम नही भूल सकते। हम नही भूल सकते भव्य वृक्षों का अद्भुत गौरव और वृद्ध ऋषियों के समान जगत के कल्याण मे ही जीवन साफल्य समझनेवाले वनों को। यदि प्रत्येक पुरुष और स्त्री वृक्षों के महत्त्व को समझे और पुत्रवत उनका परिपालन करें तो भारत का हर नगर, हर गाँव जीवनोल्लास से ओत-प्रोत हो जायगा। यह सुगम और सीधा-सा तथ्य भी हम कैसे भूल सकते हैं ?

प्राचीन भारत में वृक्षों का धार्मिक महत्त्व विशेष था। प्राचीन साहित्य में अरण्यों एवं वनों के प्रसंग बहुत आते है और मूर्तिकला और चित्रकला में तो वृक्षों और पुष्पों का विशेष स्थान रहा है।

सिंधु-घाटी-सभ्यता के अवशेषों से पता चलता है कि उस युग के लोगों को वृक्ष कितने प्रिय थे। उनके मिट्टी के बर्तनों पर पीपल के पत्तों के चित्र मिलते हैं। उनके राज्य-चिह्नों में से एक झुकी हुई डालोंवाला वृक्ष अंकित है और दूसरे मे एक ऊँचे वृक्ष पर बैठा हुआ एक मनुष्य तथा उसके नीचे एक क्षुधातुर व्याघ्र अंकित मिलता है।

वेदों में पर्वतों और नदियों, मेघों के गर्जन और विजली की कड़क, भयानक प्रचंड वायु, प्रभात सुषमा, शीतल झरनों, वृक्षों और वनों का वर्णन आता है।

वनदेवी की स्तुति में लिखी गई ऋग्वेद की एक ऋचा में प्रकृति का शब्दचित्र खीचा गया है। अश्वत्थ और न्याग्रोध की लकडी से बने हलों और रथों का प्राचीन ग्रंथों में प्रायः वर्णन आया है।

रामायण और महाभारत के घटनास्थल बहुधा वनों में ही हैं। महाभारत में खांडव वन के जलने का उल्लेख है और रामायण में पंचवटी वन की रमणीयता का वर्णन किया गया है। पुराणों में वृक्षों के माहात्म्य, वृक्षारोपण के पुण्य और वृक्ष काटने के पाप के संबंध मे बहुत कुछ कहा गया है।

अग्निपुराण में गृहनिर्माता से कहा गया—"घर के उत्तर में पलाश, पूर्व में बड, दक्षिण में आम और पश्चिम में अश्वत्थ के वृक्ष लगाने चाहिए। घर के पास ही फूलों का एक बगीचा लगाना चाहिए, जिसमें फूलों के पौधे और शीशम के वृक्ष लगाये जायें।"

इसी पुराण मे वृक्षों की पूजा का माहात्म्य बताया गया है—"जो मनुष्य लोगों के हित के लिए वृक्ष लगाता है, वह मोक्षपद प्राप्त करता है। वृक्ष लगानेवाला मनुष्य अपने ३०,००० भूत और भावी पितरों को मोक्ष दिलाने में सहायक होता।" मत्स्य-पुराण में कहा गया है—"१० कुएँ बनवाना एक ताल बनवाने के समान है। १० तालों का निर्माण एक झील के निर्माण के बराबर है। १० झील बनवाना एक सुपुत्र प्राप्त करने के समान पुण्यकारक है। किन्तु दस पुत्रों का पुण्य केवल एक वृक्ष लगाने से प्राप्त हो जाता है।"

बुद्ध भगवान् को वटवृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ था। बौद्धकला और साहित्य में इसका निरंतर उल्लेख आता है। सिकंदर और यूनानियों ने भारत के विशाल वट-वृक्षों को देखकर आश्चर्य किया था।

हमारी संस्कृति में जो सुन्दरतम और श्रेष्ठतम है, उसका उद्भव आश्रमों और तपोवनों में हुआ था। हमारे संस्कारों पर नंदनवन के सौंदर्य और सती सीता के कारण अशोकवन के करुणापूर्ण वातावरण की छाप लगी हुई है। और वृंदावन को भी हम कैसे भूल सकते हैं, जहाँ कृष्ण भगवान् ने अपना महान् संदेश हमें सुनाया था?

—श्री कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी]

कुछ आदर्श लेख

हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी

हिंदी का इतिहास उतना ही भव्य है, जैसा कि विश्व की किसी भी उन्नत-से-उन्नत भाषा का हो सकता है। आठवीं शताब्दी से हिंदी-साहित्य का इतिहास शुरू होता है। संस्कृत, पाली, प्राकृत की महानिधियों के कारण उस आदि-युग में भी हमें सरह, स्वयंभू, पुष्पदंत जैसे महाकवि प्राप्त हुए। उस युग की सारी कृतियों की हम रक्षा नहीं कर पाये; किंतु जो भी अपभ्रंश के ग्रंथ-रत्न बचकर हम तक पहुंचे है, वे हमारे गर्व की वस्तु हैं। स्वयंभू और सरह ने दोहे और चौपाई में जो कविताएँ आरंभ की, वे गोस्वामी तुलसीदास से होकर पंडित द्वारकाप्रसाद के 'कृष्णायण' तक पहुँची हैं। मध्य युग में कबीर, सूर, तुलसी जैसे काव्य-निर्माता हुए, जिनकी कृतियाँ आज भी हमारे रोज़-रोज के उपयोग में आती हैं। तृतीय युग में देव, बिहारी, भूषण, पद्माकर जैसी प्रतिभाएँ हिंदी-क्षेत्र में प्रादुर्भूत हुईं। हिंदी का आधुनिक काल अभी आधी शताब्दी से कुछ ही पहले आरंभ हुआ है। यद्यपि यमारे यहाँ भारतेंदु, श्रीधर, हरिऔध, मैथिलीशरण, पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी आदि कितने ही उच्च श्रेणी के कवि पैदा हुए है; लेकिन इतने पर भी यदि हमे संतोष नहीं होता, तो यह अच्छे लक्षण हैं। हमारी हिंदी भारत की आधी भूमि और आधे लोगों की भाषा है, साहित्य-क्षेत्र में उसी के अनुरूप गुण और परिमाण में उसकी देन होनी चाहिए।

हिंदी-गद्य-साहित्य नई चीज है। हमने इस क्षेत्र में भारत की कितनी ही भाषाओं से पीछे काम आरंभ किया, जिसका प्रभाव होना जरूरी ठहरा। साहित्य-के माध्यम या शैली को परिपक्व होने में कुछ समय लगता है। हिंदी की गद्य-शैली को परिपक्व हुए मुश्किल से तीन दशाब्दियाँ हुई हैं। उन्नीसवीं सदी में जब

ईश्वरचंद्र विद्यासागर और बंकिमचंद्र बँगला-गद्य-साहित्य-गगन में अपनी ज्योति फैला रहे थे, उस समय हम चटसार से बाहर नही हुए थे। यह हिंदी की किसी स्वाभाविक त्रुटि के कारण नही हुआ। जहाँ दूसरी भारतीय भाषाओं के गद्य-पद्य की भाषा क्या होगी, उसके बारे में कोई संदेह या प्रतिद्वंद्विता का सवाल नही था, वहाँ हमारे यहाँ हिंदी-क्षेत्र में अनेक स्वतंत्र भाषाएँ थीं, जिनमें मैथिली, अवधी, व्रजभाषा और राजस्थानी का स्वतंत्र लिखित साहित्य भी मौजूद था और उच्चकोटि का था। जिस भाषा को हिंदी गद्य और पद्य की भाषा और अंत में सारे राष्ट्र की राष्ट्रभाषा बनने का सौभाग्य मिलनेवाला था, वह लिखित साहित्य से सूनी थी। जब मेरठ कमिश्नरी के साढ़े तीन जिलाओं की इस भाषा को व्यापक क्षेत्र के लिए स्वीकार भी कर लिया गया, तब वहाँ हिंदी-उर्दू का झगड़ा खड़ा हो गया। इस झगड़े में उर्दू की पीठ पर अँग्रेजी शासकों का हाथ था। वे नही चाहते थे कि भारत की स्वतंत्र भावनाओं की प्रतीक हिंदी आगे बढ़े। कचहरियों में अँग्रेजी के बाद उर्दू का स्थान था। युक्तप्रांत, बिहार, राजस्थान आदि में जो नौकरी पेशा जातियाँ या वर्ग थे, वे सभी उर्दू को अर्थकरी भाषा समझते थे और उसकी चरण-धूलि सिरपर लगाते थे। यह भी एक कारण था, जिसकी वजह से हिंदी उतनी ही जल्दी अपने पैरों पर खड़ी न हो पाई, जितनी जल्दी कि बँगला और दूसरी भाषाएँ—हालाँकि बंगला के गद्य के निर्माण का आरंभ भी १८वीं-१९वीं शताब्दी की संधि में उसी कलकत्ते से हुआ था, जहाँ हिंदी और उर्दू के गद्य का आरंभ।

हम अपने गद्य-साहित्य—उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि—से असंतुष्ट भले ही हों; लेकिन हमारे पास प्रेमचंद-जैसे विश्व के लेखकों में स्थान रखनेवाले उपन्यासकार हैं। जैनेंद्र, वृन्दावनलाल वर्मा, इलाचंद्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय, यशपाल आदि-जैसे लेखनी के धनी अपनी कथा-रचनाओं द्वारा हिंदी के गौरव को बढानेवाले मौजूद है। हाँ, हम यह मानते है कि हमारे साहित्य और उसके स्रष्टाओं का परिमाण और संख्या हमारी संख्या के अनुरूप नही है। यहाँ साहित्यिक प्रतिभा रखनेवाले तरुण प्रायः अधखिले ही मुरझा जाते है। काल

के आघात से नहीं, बल्कि अपने परिश्रम और साधना के अभाव के कारण वे आगे बढ़ नहीं पाते।

हमारे साहित्य-सेवियों को यह बात ध्यान में रखनी होगी कि जैसे-तैसे कुछ पंक्तियाँ काली करके संतोष कर लेने से अब काम नहीं चलेगा, न मित्रमंडली में परस्पर एक-दूसरे की प्रशंसा पा लेने से काम चलेगा। साहित्य-पारखी पहले भी अपने ही मित्र नहीं हुआ करते थे। उसकी प्रतीक्षा आनेवाली पीढ़ियाँ करती रही हैं और आज भी करेंगी, जिन पीढ़ियों के ऊपर किसी भी सिफारिश या चापलूसी का प्रभाव नहीं पड़ सकता। आज हिंदी हमारे सारे देश की राजभाषा स्वीकृत हो चुकी है। दूसरे देश भी इस बात को नोट कर रहे हैं। पेरिस-विश्व-विद्यालय में हिंदी लेनेवाले छात्रों की संख्या चौगुनी हो गई है, और विश्वविद्यालय को एक और अध्यापक नियुक्त करना पड़ा है। दुनियाँ के दूसरे स्वतंत्र देशों में भी हिंदी-पठन-पाठन का विस्तार होना अवश्यंभावी है। फिर अपने देश के सभी प्रांतों के स्कूलों में हिंदी पढ़ना अनिवार्य बनाया जा रहा है। यह सभी जानते हैं कि सेना और केंद्रीय नौकरियों तथा राजदूतिक सेवाओं के लिए हिंदी का ज्ञान आवश्यक है। इसलिए, भला कैसे कोई प्रांत हिंदी सीखने में अपने को पीछे रख सकता है? इस प्रकार हमारे साहित्य के पारखी अब केवल हिंदी-भाषा-भाषियों तक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि सारे भारत की दूसरी भाषाओं के विद्वान तथा विदेशी हिंदी-भाषाविज्ञ भी अपनी कसौटी पर रखेंगे। इसलिए हमारे साहित्य-सेवियों को अपने दायित्व को अच्छी तरह समझना चाहिए और ऐसे साहित्य का निर्माण करना चाहिए, जो भारत के दूसरे प्रदेशों तथा विश्व में हमारे मस्तक को ऊँचा रख सके। हमें विश्वास है कि हम इस परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे।

—श्री राहुल सांकृत्यायन]

गो हमारी वंदनीया

गाय का महत्त्व उसके दूध के कारण तो है ही; अन्न के उत्पादन का सबसे बड़ा आधार गोपुत्र बैलों की जननी के रूप में तो इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है। बैल सारे कृषि-उद्योग की रीढ़ है, जिसके आधार पर कृषि-यज्ञ का आरंभ एवं पूर्णाहुति होती है। अन्न तैयार होने पर भी बाजार-हाट तक ये बैलगाडी में ढोकर ले जाते है। गाँवों में आने-जाने और अन्य माल ढोने का काम भी गोपुत्रों द्वारा ही संपादित होता है—इस तरह हम देखते है, दूध, दही, घी, अन्न, फल और शाक जो कुछ भी हम खाते और पीते हैं, उसका अधिकांश भाग—९० प्रतिशत से अधिक—गो या गोपुत्रों के परिश्रम रूप से हमे प्राप्त होता है। हमारे प्राचीन लोग यह अनुभव करते हैं कि गो-केंद्र का आश्रय लेकर सारे कुटुंब एवं ग्राम का जीवन क्रियाशील एवं गतिमान हो रहा है और इसलिए मुक्तकंठ होकर उन्होंने कहा था—'गोमे माता वृषभः पितामे दिवं शम जगतीमे प्रतिष्ठा'—गो मेरी माता है और वृषभ मेरे पिता है। पारलौकिक कल्याण एवं इस लोक की प्राण-प्रतिष्ठा के आधार यही दोनों हैं।

क्षण भर के लिए कल्पना कीजिए कि ग्राम में सैकडों बीघे खेत पडे है, पर बैल एक भी नहीं, गाय एक नही, गो एवं बैल से शून्य जीवन में हमें कितनी नीरसता एवं अपूर्णता होगी।

घर-घर में गाय और बैल पाये जाते है, इसलिए उनके महत्त्व का हृदय पर जितना प्रभाव पडना चाहिए, नहीं पडता, पर जिन विद्वानों ने गो-धन की असीम संपत्ति पर विचार किया है, उनका कहना है कि भारत के सारे आयात और निर्यात व्यापार से जितना द्रव्य मिलता उससे कही अधिक गोधन से प्राप्त होता है। कपड़े की मिलों की उत्पादन, चीनी से आय, लोहे के कारखाने की उपज और रेलवे, चाय, काफी या अन्य बड़े से बडे उद्योगों की आय एक ओर ले लीजिए और गो-धन से जो आय है उसे एक ओर। गो-धन से होनेवाली आय का पलडा भारी मिलेगा और यह भी आज, जब गो-धन उपेक्षित एवं तिरस्कृत है। यदि

तनिक ध्यान दिया जाय तो गो-धन से होनेवाली आय मे पर्याप्त वृद्धि हो सकती है।

किसी भी राष्ट्रीय उद्योग एव व्यवसाय को क्षीण दशा में सहायता देने के लिए विशेष संरक्षण की आवश्यकता होती है। इसी लक्ष्य से कपड़ों की मिलों, लोहे की कारखानों तथा चीनी के उद्योग को प्रोत्साहन दिया गया और अब भी दिया जा रहा है। चाय और कहवे की उन्नति के लिए बोर्ड बनाये गये हैं, और सेस लगाया जाता है। बड़ी-बड़ी अनुसंधान-शालाएँ हैं जहाँ विद्वान् , मनीषी, निरंतर व्यवसाय में कैसे अधिकाधिक उन्नति हो इसके लिए प्रयत्नशील रहते हैं। मगर अभी तक गोवंश की उन्नति एवं विकास के लिए जितना परिश्रम, अनुसंधान एवं प्रयोग किया जाना चाहिए, नहीं किया गया है। सरकार द्वारा गोधन को कोई विशेष संरक्षण नहीं मिला है। वैज्ञानिक ढंग से परिश्रम एवं अनुसंधान की एक नहीं अनेक केंद्रों में आवश्यकता है, जिससे ऐसे गोवंश का विकास हो सके जो दुधारू भी हो और परिश्रमशील भी, जिससे खेत में तथा आने-जाने में पूर्ण समर्थ बैल मिल सकें।

महात्मा गाँधी की यह धारणा थी कि 'गोवध' मनुष्यवध के समान है। उन्होंने एक बार यह भी विचार प्रकट किया था कि राज्य को मूल्य देकर ऐसी सब गायों को खरीद लेना चाहिए जिनका वध किया जानेवाला हो। इस प्रकार के सुझाव रखने के पश्चात उन्होंने यह भी विचारा कि ऐसे गोवंश का क्या किया जाय जो अति वृद्ध हैं, दूध नहीं देते या कार्य में अक्षम् या अन्य प्रकार से लाभप्रद न हो— क्या उनको मार डाला जाय? नहीं, सत्य एवं अहिंसा के पुजारी महात्मा गाँधी ऐसी बात सोच भी नही सकते थे। उनका विचार यह था कि जिन गायों के सुमधुर दूध से पलकर हमने जीवन एवं शक्ति ग्रहण की, जिसके गोपुत्रों के परिश्रम से उत्पन्न अन्न-कणों से हमने प्राण धारण किये; उनको मार डालना मानवता के पतन की पराकाष्ठा होगी। ऐसे पशुओं को, जो अब उपयोगी नही रहे, ऐसे वनों में रखा जाना चाहिए जहाँ बारहो मास चारा रहता है। देश के प्रत्येक प्रांतों मे ऐसे घने जंगल हैं जहाँ खेती होना कठिन है। किंतु जहाँ लाखों,

करोड़ों मन घास प्रति वर्ष उपजती, बढ़ती और सूख जाती है। जहाँ एक ओर चारे के अभाव की दुहाई दी जाती है और कहा जाता है कि अनुपयोगी पशु उपयोगी पशु के चारे-दाने को खा जाते है, वहाँ दूसरी ओर जंगलों में करोड़ों मन घास प्रति वर्ष सूख कर नष्ट हो जाती है।

इस संबंध में जंगल-विभाग को भी उदार-नीति का अवलंबन करना चाहिए और जंगल के अधिकांश भाग मे गो-चरण की अनुज्ञा दे देनी चाहिए।

महात्मा गाँधी ने ऐसे वनों को, जहाँ वृद्ध या अनुपयुक्त पशुओं को रखा जाय गो-सदन का नाम दिया था और उनकी मान्यता थी कि गो-सदनों में आस-पास के ऐसे सब पशु रखे जायें जो बुढ़ापे आदि के कारण उपयोगी नही रहे। उनका विश्वास था, इस प्रकार हजारों पशु कम-से-कम व्यय में रखे जा सकते है और ऐसे पशुओं के गोबर की खाद एवं स्वाभाविक मृत्यु से मरने पर चर्म आदि का पूर्ण सदुपयोग कर पशुओं पर होनेवाले व्यय का अधिकांश भाग प्राप्त किया जा सकता हैं।

ममता की मूर्त्ति गो-माता भूखी रहने पर भी थोड़ा बहुत दूध दे देती है। यह उसकी सहज वात्सल्य प्रवृत्ति का परिणाम है, किंतु हमें यह न भूलना चाहिए कि भूखी गाय की हड्डी और रक्त से गल-गलकर जो दूध निकलता है उससे गाय की शक्ति क्षीण होती है और वर्ष के स्थान में ३-४ वर्ष पीछे ब्याती है—फल यह होता है कि गाय भी बेचारी भूखी मरती रहती है और हमको भी आर्थिक दृष्टि से हानि एवं धार्मिक दृष्टि से पाप होता है। 'अच्छी-से-अच्छी गाय निरंतर आधा पेट भोजन पाने से अनुपयोगी एव भाररूप हो जाती है। उसके उत्तम गुण एवं शक्ति का विकास नही होता। गाय को भर पेट खिलाओ और यह नहीं कि जब दूध दे तभी खिलाओ—जब दूध से बिसुक जाय तब भी उसे पेट भर खिलाते रहो। सच जानो, यदि गाय को तुम सदैव स्नेह से भर पेट खिलाते रहोगे तो अगले ब्यान में जितना भी तुम्हारा विशेष व्यय होगा, वह दूध आदि के रूप मे मिल जायगा।

—सेठ गोविंददास]

———

सामाजिकता का भाव

आप सामाजिक प्राणी हैं, इसलिए समाज के प्रति आपके कुछ कर्त्तव्य हैं और कुछ अधिकार भी। यदि ऐसा है तो समाज की सहायता करने में आप अपना हिस्सा बढ़कर लें। कहा गया है कि 'एक दूसरे को प्रेम करो', किंतु इससे भी ऊँचा काम है, 'एक दूसरे की मदद करो।' जब दूसरों को आप के समय की अथवा धन की आवश्यकता हो तो जो कुछ भी आपका हो, वह दूसरों को समय पर देने में आप पीछे न रहें और सदैव यही भाव बनायें रखें कि आपके मित्रों तथा सुहृदयों को जब भी आपकी आवश्यकता हो, तभी आप सहयोग का हाथ बढ़ाकर उनके लिए उपयोगी सिद्ध हों। यदि आपको मालूम हो जाय कि अमुक व्यक्ति को आपकी आवश्यकता है तो बिना कहे उसके पास पहुँचें और यथाशक्ति उसकी सहायता करें।

पहला काम आपका है वैयक्तिक सेवा-भाव लेकर आगे बढ़ना। आप शुशिक्षित हैं तो अनपढ़ को पढ़ाइए; क्योंकि आपने उन्ही शिक्षण-संस्थाओं में शिक्षा पाई है, जिन्हें दूसरों ने संपन्न बनाया। आपका कर्त्तव्य है कि आप विज्ञान, इतिहास, साहित्य, अर्थशास्त्र आदि विषय जन-साधारण को सरल-सीधी भाषा मे समझावें। उन्हीं के श्रम का फल है कि आप शिक्षित हुए हैं। विधा-दान से विद्या फलती-फूलती है। दूसरों को बताने से आपके ये विषय सदैव ताजा रहेंगे। अज्ञान ही इस युग का सबसे बड़ा अभिशाप है। अज्ञानी जातियाँ निकम्मी और मूढ होती जा रही हैं। अंधविश्वास और धर्मांधता उन्हें खाये जा रही है। जिस लोकतंत्र मे शिक्षण की उचित व्यवस्था नहीं है, वहाँ की शासन-व्यवस्था का अर्थ है मूर्खों पर दुष्टों का राज्य। भयंकर युद्धवादी नीतियों का प्रमुख कारण निरक्षरता ही है। इसलिए आप गाँव-गाँव, शहर-शहर घूमें और जनता को साक्षर बनाने के लिए व्याख्यान दें, लेख लिखें, कहानियाँ सुनायें, सूचना भरें, परचे बँटवायें तथा शिक्षण-संगठनों की स्थापना करें।

दूसरी आवश्यक बात यह है कि आप ईर्ष्या एवं अपनी अहम्मन्यता त्यागकर दूसरों की योग्यता का भी मूल्यांकन करें। केवल इसीसे काम न चलेगा कि आपने

अपने प्रतिद्वन्दियों से ईर्ष्या या द्वेष करना छोड दिया है और अब भविष्य में इस रोग से बचे रहेंगे। दूसरों की सफलता पर उन्हें साधुवाद दीजिए। उनकी अच्छाइयों की प्रशंसा करके उन्हें और उत्साहित कीजिए। समाज-सुधार की राह में ईर्ष्या एक बड़ी दीवार है। प्रसिद्ध कवि मोलियन ने कहा है, ईष्यालु व्यक्ति मर जाते हैं, किंतु ईर्ष्या नहीं मरती।' उदाहरणार्थ, यदि आप किसी अपने से बुद्धिमान व्यक्ति से मिलें तो समझ लें कि उसकी बुद्धि समाज की बुद्धि है, और केवल उसकी बुद्धि नहीं है, मानवता के बुनियादि ऐक्य के नाते यह आपकी भी है। प्रकृति द्वारा सभी को यथायोग्य गुण-अवगुण मिलते है। \कुछ गुण आप में है, कुछ दूसरों मे। इससे स्पष्ट है कि कोई किसी से छोटा नहीं, हीन नही। वास्तव में ईर्ष्या तो ऐसा निकृष्ट अभिशाप है, जो बदले में हानि के सिवा और कुछ नहीं देता।

समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करनी है तो सत्य-भाषण की तीसरी योग्यता आपमें होनी आवश्यक है। आपके वचन बड़े चमत्कारी हैं। वे विलग को जोड़ सकते हैं और जोडे हुए को विलगा सकते है। सुसंयत वचन होंगे तो सौहार्द और सहयोग के अवसर ला उपस्थित करेंगे। कटु वचन होंगे तो वैषम्य पैदा कर देंगे। असत्य भाषण द्वारा आप सामाजिक-जीवन को सुमधुर नहीं बना सकते। कोई आपका विश्वास नही करेगा, और आपको जब किसी की सहायता प्राप्त नहीं होगी तो पास-पड़ोस का वातावरण सहन करना दूभर हो जायगा। देखा जाय तो पतनोन्मुख व्यक्ति ही अनर्थकारी दुर्वचन बोलता है। दुर्वचन किसी दुष्काम की ही भूमिका या पटाक्षेप प्रस्तुत करते हैं। निष्पक्ष और स्पष्टवादी होना जीवन का एक विशेष गुण है। किसी को कटु सत्य से क्षणिक पीडा पहुँचाना श्लाघनीय है, किंतु मीठे वचन बोलकर बाद में जड़ काटना परले दर्जे की कृतघ्नता है। यदि आपने किसी की अनावश्यक बुराई सुनी है तो चुपचाप बैठे न रहिए। ऐसा करके आप उस व्यक्ति के प्रति, जिसे आप निर्दोष समझते हैं; घोर अन्याय कर रहे हैं,। आप दृढता से बुराई करनेवाले का सामना कीजिए। यदि आपको किसी वास्तविक बुराई का पता लगा है तो आप उसकी पीठ-पीछे विष न फैलाकर सीधे उसी को खटखटाइये, और उसे सावधान कर दीजिए। ऐसा करने से वह सावधान हो जायगा और फिर

वैसा करने की हिम्मत शायद न होगी। आपको अविनीत और उद्धत व्यवहार के कुपरिणामों से बचना है। बहुधा आप यह सोचते है कि आप अपने से अधिक शिक्षित एवं समृद्ध व्यक्तियों से अशिष्टतापूर्ण व्यवहार करें और यह प्रदर्शित करें कि विद्या-वैभव में हीन होते हुए भी आप उनसे किसी कदर कम नहीं हैं। आज के युग में यह दुर्जयी कीड़ा सभी दिल-दिमाग को खोखला करता जा रहा है। अतः व्यवहार में आपको विनीत, मितभाषी और आदर-सूचक शब्दों का प्रयोग करना है। चाहिए तो यह कि जो जिस योग्य है, उसे वैसा ही आदर, सम्मान और स्नेह अर्पण किया जाय। किसी की प्रतिष्ठा में कमी करने के असफल प्रयत्न से आपको अपयश के अतिरिक्त और कुछ नही मिलने का। दूसरी ओर यदि आपने अपने से किसी छोटे व्यक्ति का अपमान करके उससे उसके छोटेपन का ज्ञान करा दिया तो वह आपसे दूर रहने का प्रयत्न करेगा और बहुत संभव है कि आपकी जरा-सी बात को गाँठ बांध ले और जीवन-पर्यन्त आपसे पहले की तरह दिल खोलकर न मिल सके या सर्वथा त्याग ही कर दे।

चौथा-गुण जो आपको एक नागरिक के नाते अपने में पनपाना है, वह है सुशीलता। आप जो है उससे ऊपर उठ सकते है या नीचे गिर सकते है। अपना अधिकार अवश्य माँगिए किंतु उससे अधिक नही। समाज आपका जो मूल्य-निर्धारण करता है, उससे अधिक पाने की फलाशा को त्याग दें। यदि आपके गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर बखान करनेवाले मित्रों की भीड आपके साथ है तो उसके पंजे से बचें—अन्यथा वह भटकाकर आपको किसी नुकीली और खुरदरी चट्टान पर ले जाकर पटकेगी और आप फिर न उठ सकेंगे। दंभोक्तियाँ उसी के मुँह से निकलती है जो भीतर से रीता और ऊपर से लिपा-पुता है। सुशीलता और सादगी ही आपको घमंडी और बनावटी होने से बचायगी। आपके समाज में अधिकांश लोग ऐसे हैं जो दंभियों और डींगें मारनेवालों को कभी पसंद नही करते, उल्टे उनसे नफ़रत करते हैं।

आप स्वयं अपना प्रचार करने की आदत छोड दीजिए। फिर आप अनुभव करेंगे कि आपकी विशेषता को जानने की इच्छा रखनेवाले स्वतः आपको जान गये।

आज के दूषित वातावरण में कोई अपनी योग्यता या अज्ञानता के दंभपूर्ण स्तर से नीचे उतरकर समझौता नहीं करना चाहता, किंतु यह ध्यान देने योग्य है कि सहयोग की पहली सीढ़ी समझौता है। संसार में एक ही व्यक्ति होता तो कोई बात नहीं थी।

पाँचवीं विशेषता जो आपको अपने में उपजानी है, वह है न्याय-प्रियता। सभी जानते हैं कि सबल निर्बल को दबा लेता है। हम जानते है कि हमारा आज का समाज ऊँच-नीच की भावना पर अवलंबित है और हमारी आज की सभ्यता का मूल अन्याय है।

इसीलिए आवश्यकता इस बात की है कि आप पहले न्यायपथ के राही बनें। ऐसा करने से आपकी आवाज मे, आपकी चाल में, आपके व्यवहार में और आपके निकटवर्ती वातावरण में सच्चे ओज, निर्भिकता और दिव्य आशा का पुट मिल जायगा। आप अपने को अधिक बलवान्, स्वस्थ और समाज में अक्षय कीर्ति का अधिकारी बना हुआ पायेंगे।

छठी और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण, जो आपको अपनाना है, वह जीव-जंतुओं के प्रति प्रेम-भाव और उनके पालक-पोषक बनने की भावना अपने में पैदा करना है। सभ्यता के आदिकाल से लेकर मनुष्य जाति पशुओं के प्रति बड़ा अन्याय करती रही है। लाखों करोड़ों का नित्यप्रति बध किया जा रहा है।

आपके दैनिक जीवन के जो संगी-साथी है, उनकी देख-भाल भी रखिये। आप जिस सभ्यता और संस्कृति के कारण इतने ऊँचे माने जाते हैं, उसके निर्माण में इनका भी हाथ है। आपके पूर्वज इनकी मंगलमयी आकृतियों को संस्कृति के प्रतीक मानकर राष्ट्र की कलात्मक वस्तुओं पर उनका अंकण कर गये हैं। इस थाती को आप सुरक्षित और अक्षुण्ण बनाये रखिए।

अधिकार और कर्त्तव्य

प्रत्येक सभ्य राष्ट्र के शासन-विधान में व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की रक्षा का विशेष रूप में उल्लेख किया जाता है। व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की रक्षा का विषय अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और इन अधिकारों के सदुपयोग अथवा दुरुपयोग पर ही शासन-विधान की सफलता या असफलता बहुत-कुछ निर्भर करती है। व्यक्ति के लिए अधिकार का बहुत बड़ा महत्त्व है। क्यों? इसलिए कि अधिकार हमारे आत्म-उन्नति के पथ को प्रशस्त करता है। यदि हमारे राष्ट्रीय-जीवन में अधिकारों की सुरक्षा की व्यवस्था न हो, तो फिर मनुष्य और पशु में कोई अंतर ही न रह जाय।

किंतु, अधिकार कोई ऐसी निरपेक्ष वस्तु नहीं है कि उसका उपभोग करते समय हम और बातों को भूल जायँ और एकमात्र उसे ही सब कुछ समझ लें। यदि आपको अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने का अधिकार है, तो आपके साथी, सहकर्मी और पड़ोसी को भी ठीक उसी प्रकार का अधिकार प्राप्त है। जो बात आपके लिए रुचिकर एवं शोभन है, वह आपके पड़ोसी के लिए अरुचिकर या अशोभन हो सकती है। जो आचरण या व्यवहार आपके लिए ग्राह्य है, वह दूसरों के दिल पर ठेस पहुँचा सकता है। इसलिए व्यक्ति को दूसरे लोगों की सुविधा-असुविधा का ध्यान रखकर ही अपने अधिकारों का उपभोग करना पड़ता है। यदि ऐसा न करके मनुष्य अपने जीवन में एकमात्र अधिकार उपभोग को ही सब कुछ मान ले, तो समाज का टिका रहना असंभव हो जायगा और सभ्यता एवं संस्कृति की दिशा में मनुष्य की प्रगति अवरुद्ध हो जायगी। जीवन में जब हम अपने अधिकारों को एकांत रूप में देखने लग जाते हैं और इन्हें उपास्य-देवता समझ लेते हैं, तब समाज में अशांति एवं विशृङ्खलता उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती।

इसलिए मनुष्य के जीवन में जहाँ स्वाधीनता का इतना बड़ा मूल्य है, वहाँ उसके साथ ही मनुष्य के कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व भी उतने ही मूल्यवान समझे गये हैं। आप अपनी व्यक्तिगत स्वाधीनता को जितना मूल्यवान समझते हैं, उतना ही मूल्यवान दूसरे की व्यक्तिगत स्वाधीनता को भी समझिए। एक ओर यदि आप अपने

अधिकारों को किसी भी रूप में क्षुण्ण होने देना नहीं चाहते, तो दूसरी ओर आपको इसका भी ख्याल रखना होगा कि आपके द्वारा किसीका क्षुण्ण न हो। आप अपने प्रति जितनी श्रद्धा दिखाते हैं, उतनी ही श्रद्धा दूसरों के प्रति भी दिखाइए। इन सब के कारण ही मनुष्य श्रेष्ठ प्राणी है और उसके मनुष्यत्व की मर्यादा उन्हीं को लेकर है। उनमे से किसी एक को भी छोटा करके देखना अथवा उसकी अवमानना करना मनुष्य के मनुष्यत्व को हीन करना है। जहाँ मनुष्य के उन अधिकारों की उपेक्षा एवं अवहेलना होती है और वह अर्थ अथवा यंत्र, राष्ट्र या समाज, धर्म या रीति-नीति का दास बन जाता है, वहाँ मनुष्य के लिए गर्व करने की कोई बात नहीं रह जाती। यही कारण है कि मनीषियों ने जहाँ स्वाधीनता की बात कही है वहाँ उन्हो ने साम्य एवं बंधुत्व की बात भी अवश्य कही है। स्वाधीनता के साथ-साथ साम्य एवं बंधुत्व भी चाहिए। बिना साम्य के स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं; बिना कर्त्तव्य-पालन के अधिकार का कोई महत्त्व नहीं।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे समाज के अंदर कितने ही मनुष्यों के बीच रहना पड़ता है। इसलिए उसे अपने अधिकारों की सीमा को संकुचित करके चलना पड़ता है। समाज के किसी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं होता कि वह चाहे जैसा आचरण करे। दूसरे की सुविधाओं का ध्यान न रखकर मनमानी करने से पग-पग पर विपद की संभावना हो सकती है। यदि हम रात में बारह बजे अपने घर की छत पर बैठकर जोर-जोर से ढोल पीटने लगते हैं या रास्ता चलते हुए अश्लील शब्दों का उच्चारण करते है अथवा रास्ते पर भीड़ लगाते है, तो इससे दूसरों को असुविधाएँ भोगनी पड़ती हैं। यहाँ व्यक्तिगत अधिकारों को संकुचित बल्कि यों कहे कि मर्यादित करना पड़ता है जिससे हमारा आचरण हमारे पड़ोसी के लिए असुविधाजनक अथवा उद्वेग का कारण न हो। इन सब विषयों में यदि व्यक्तिगत स्वाधीनता को संकुचित न किया जाय तो समाज-जीवन पंगु हुए बिना नहीं रह सकता। हम दूसरे लोगों के साथ मिलकर रहते हैं इसलिए हमें उनके अधिकारों को स्वीकार करना ही होगा। और दूसरे के अधिकारों को स्वीकार करने का

अर्थ है अपने आचरण को संयत रखना। इस प्रकार का संयम हमारे आत्म-प्रकाश के पथ में बाधक नहीं हो सकता।

इस प्रकार अपने अधिकारों को संयत रखकर आत्मानुशासक द्वारा हम केवल अपने चरित्र का ही निर्माण नहीं करते, बल्कि अपने व्यक्तित्व को भी समुन्नत एवं सुशोभन बनाते हैं। यह तभी हो सकता है जबकी हमारे जीवन में उदारता हो। भारतीय संस्कृति एवं परम्परा में हम इस प्रकार के आत्म-संयम एवं आत्मानुशासन का यथेष्ठ परिचय पाते हैं। घर पर आये हुए अतिथि को भोजन करा कर भोजन करना, भोज में सबसे पहले भोजन नहीं करना, परिवार के लिए आत्मसुख का विसर्जन करना इत्यादि बातें हमारे समाज-जीवन में हमारी उदारता की द्योतक है। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति-स्वातंत्र्य की महत्ता उसी सीमा तक स्वीकार की गयी है जहाँ तक वह समष्टि के कल्याण-मार्ग में बाधक न हों। पश्चिम की तरह यहाँ व्यक्ति-स्वातंत्र्य की पूजा कभी नहीं की गयी। पाश्चत्य का केंद्र व्यक्ति रहा है और हमारी सभ्यता का केंद्र समाज। भारतवर्ष के महान् से महान् नृपति और महान् से महान् पुरुष ने 'बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय' आत्मसुख का परित्याग किया है। यहाँ का राजा प्रजारंजन के लिए अपनी सती-साध्वी प्रियतमा पत्नी तक का परित्याग कर सकता है, अपने सत्य की रक्षा के लिए राजत्याग एवं आत्मत्याग कर सकता है तथा दूसरे के दुःखमोचन के लिए अपने प्राणों की आहुति खुशी-खुशी दे सकता है। पाश्चात्य सभ्यता व्यक्ति की आत्म-प्रतिष्ठा को समष्टि से बढ़कर स्थान देती है। भारतीय सभ्यता में व्यष्टि का विलोप समष्टि के कल्याण के लिए श्रेयस्कर माना गया है। किंतु सभ्यता एवं संस्कृति की इस गौरवपूर्ण परम्परा के उत्तराधिकारी होते हुए भी हमारे आचरण में और पाश्चात्य देशवासियों के आचरण में कितना बड़ा अंतर होता है। अपने सामाजिक जीवन में कितने उदार होते हैं। एक नागरिक के रूप में दूसरों के सुख-सुविधाओं का उनको कितना अधिक ध्यान रहता है। एक साथ यदि वे भोजन करने बैठेंगे अथवा किसी सार्वजनिक स्थान में एकत्र होंगे तो आश्चर्यजनक रूप में वे वाक्-संयम एवं आत्मानुशासन का परिचय देंगे। उनका कोई भी आचरण ऐसा नहीं होता जो दूसरों के लिए असुविधा

अथवा उद्वेग का कारण हो। इसके विपरित अपने पारिवारिक जीवन में तो हम उदारता का, आत्म सुख-त्याग का यथेष्ट परिचय देते हैं किंतु नागरिक जीवन मे अत्यंत अनुदार एवं संकीर्ण बन जाते हैं। नागरिक जीवन में हमारा आचरण यूरोपियनों के आचरण के सर्वथा विपरीत होता है। हम इस बात को भूल जाते है कि समाज में मेरे सिवा और लोगों का भी अस्तित्व है, उनके भी अधिकार है और उनके रुचिबोध पर भी ध्यान रखकर हमें चलना है।

रेलगाडी पर यात्रा करते समय हम इस बात को भूल जाते हैं कि हमारे साथ और बहुत से यात्री भी यात्रा कर रहे है। उन असुविधाओं पर ध्यान न रखकर हम रेल के डब्बे मे थूकते हैं, केला या मूँगफली के छिलके फेंक कर उसे गंदा बनाते है, बेंच पर जूता पहने हुए पॉव रखकर दूसरे मुसाफिरों के कपडे को गंदा करते हैं। और बैठने की जगह पर असबाब रखकर दूसरों को कष्ट देते है। इस प्रकार का आचरण करते हुए हमारे मन में अणुमात्र भी संकोच नही होता। हम अपने साथियों की असुविधाओं के प्रति सर्वथा उदासीन बन जाते है। अपने देश के नगरों और ग्रामों में चाहे जहॉ कहीं घूम जाइये, आपको सर्वत्र समाज-बोध का अभाव दिखायी पडेगा। हम में वह सामाजिक दृष्टि है ही नही जिस दृष्टि को लेकर मनुष्य अपने आचरण दूसरों की सुख-सुविधाओं पर ध्यान रखते हुए संयत रखता है। नगरों में लोग अपने घरों के सामने कूडा-करकट का ढेर लगाते हैं, सडकों पर फल और तरकारी के छिलके फेकते है, किसी सार्वजनिक भवन की सीढियों को पान के पीक से गंदा करते हैं और सार्वजनिक उद्यान के फूलों को तोड कर उनकी शोभा को नष्ट कर डालते हैं। पुस्तकालय या वाचनालय में हम जोर-जोर से बातें करके अथवा ठहाका लगाकर दूसरों की शांति भंग करते हैं। कहॉ तक कहा जाय, हम एक नागरिक के रूप में आचरण करते हुए प्रायः प्रत्येक विषय में अपने अधिकार का दुरुपयोग करते हैं। एक नागरिक के रूप में हमें जो अधिकार मिले हैं उनका प्रयोजन है हमारे व्यक्तित्व का विकास, न कि दूसरों के मार्ग में बाधा प्रदान करने के लिए। आपको जोर से चिल्लाकर गान करने का अधिकार है तो दूसरों को भी निश्चित होकर सोने का अधिकार है। आपको यदि उच्च स्वर में राजनीतिक

वाद-विवाद करने का अधिकार है तो दूसरों को भी शांतिपूर्वक अध्ययन करने का अधिकार है। यदि सब लोग अपने-अपने अधिकार को ही महत्त्व देने लग जायँ तो दूसरे के अधिकार के साथ संघर्ष होना अनिवार्य है। इसलिए ही अधिकारों की रक्षा के साथ-सथ अधिकारों को संकुचित एवं मर्यादित करने का भी प्रयोजन है।

—प्रोफेसर जगन्नाथ प्रसाद मिश्र]

काम करो, सोच में न पड़े रहो

वह गिरा कोई ! यह मत सोचो कि वह कौन हैं। दौडो और उठाओ ! सोच में पडे कि मौका हाथ से गया। जो गिर पडा है, पडा नहीं रहेगा। वह तुम्हारे उठाने के लिए नहीं गिरा है। कोई और जानदार दौडेगा और उसको उठायेगा। तुम हाथ मलते रह जाओगे। देखो, वह आया उठाने ! उठा दिया उसने !

लो, एक और गिरा और उसने हड्डी तोड ली। दौड़ो, लाओ एक गाड़ी और पहुचाओ उसे अस्पताल ! दूसरा मौका। झिझके और गये ! लो, वह पहुँच गया जानदार। वह है भी फुर्तीला। दूसरी भूल !

वह गिरा बच्चा ! आया मोटर के नीचे ! वह दौड़ा जानदार और उसने उठा लिया ! तुम देखते ही रह गये ! क्या खूब ! एक, दो, तीन—फेल !

समझे कुछ, तकलीफों के मुकाबले का एक ही उपाय है। वह है फौरन सारे सीन को बदल दो और अगर सोचो ही, तो कभी-कभी और वह भी कुछ क्षण—कुछ सेकेंड !

हकीम घंटों सोचे, तो मरीज की जान ले ले। ताँगा हाँकने- वाला यों सोचे, तो भिनों को गिरा दे। रेलगाडी का ड्राइवर यों सोचे, तो गाड़ी लड़ाकर सैकड़ों को इस दुनिया से चलता कर दे और फौज का जनरल ऐसे सोचे, तो हजारों को तलवार के घाट उतरवा दे।

जो जानदार है, वह जवान है। बहुत सोचना जवान का काम नहीं। फुर्ती से कर टालना जवानी है। सोचना, सोचना, सोचते रहना बुढ़ापा है। बुढ़ापा

आधी मौत है। जीवन बचपन है। जानदार और काम का जीवन जवानी है। उम्रका जवानों से कोई रिश्ता नहीं।

बुढापे का दूसरा नाम है ढीली जवानी। हरदम चुस्त, हरदम तैयार—यह हुआ जिंदगी का एक उसूल। गलती करो, गलतियाँ करो, रोज करो, हर वक्त करो पर एक तरह की गलती दो बार न करो। जिससे भूलें नहीं हुई, वह कुछ है ही नहीं। जिंदगी भूलों के एक ढेर का नाम है। और अक्ल, बुद्धि? वह, वह है इन्हीं भूलों से सीखा हुआ पाठ, सबक। किताब का सबक भूला जा सकता है। पर भूल की किताब का सबक दिल पर अमिट रहता है। यह सबक जिस्म में जान फूँकता है। यह फुर्ती बनकर मौके पर कूदता है। और सबसे बाजी ले जाता है। भूल करने से झिझकना काम करने से झिझकना है। काम करने से झिझकना जान को जान समझने से झिझकना है—जीते-जी मुर्दों में अपना नाम लिखा लेना है। भूल की पाठशाला में सीखे हुए सबक बडे काम के होते हैं। वे बना देते हैं आदमी को निर्लेप। वे सिखा देते हैं आदमी को दुनियादारी के तालाब में कमल की तरह रहना। करना, करना और करना, पर फँसना नही। अँगरेजी में इसको कहते हैं—इम्परसनल लाइफ (Impersonal life)। गीता में इसका नाम हैं अनासक्ति योग, और अनासक्त का नाम है बेलाग जिन्दगी।

रामायण सुनते हो महाभारत की फिल्म देखते हो, शियों की मजलिसों में शामिल होकर हुसैन के कारनामे सुनते हो, सुन्नियों की ताजियेदारी में हिस्सा लेकर भूखे-प्यासे मरने की तकलीफों का जिक्र सुनते हो, किस लिए? यही न कि तुम समझो कि तुम्हारे बुजुर्गों ने तकलीफों में पडकर क्या-क्या खेल खेले?

तकलीफों में हाथ डाल-डालकर ही तुम ज्ञानी और दानिश-मंद बन सकते हो। तकलीफों का हाल पढ़-सुनकर उनमें पडने की हिम्मत भले ही आ जाय, पर अक्ल न आयगी, न आयगी। उलझनों का सुलझाना सुलझाने से आयगा। सुलझाने की बात सुनकर न आयगा, सुलझाते देखकर भी न आयगा। सुलझाते हुए के हाथ चलते देख सकते हो, उसके मन की ऊब का अनुमान तुमको कैसे होगा? तैरना तैरने से ही आता है, तैराकी पर किताब पढ़ने से नहीं।

तकलीफों से बचकर भागना न बहादुरी है, न बुद्धिमानी। वह तो कायरता है और नादानी। तकलीफों मे पडे-पडे सड़ना तो और बुरी बात है। वे जिंदगी की दौड के मैदान में खड़ी की हुई रुकावटें हैं, खोदी हुई खाइयाँ हैं, गढ़ी हुई भूल-भुलैयाँ हैं। उन्हें तो कूदकर, लाँघकर, रास्ता निकालकर पार करने में ही हमारा भला है।

अपने ऊपर आई हुई तकलीफों का रोना औरों के आगे रोकर न तुम अपना कुछ भला कर सकते हो और न किसी और का। सीता के हरे जाने पर वाल्मीकि और तुलसीदास दोनों ने ही राम को रुलाया है और खूब रुलाया है, पर कही वे लक्ष्मण को भी रुला देते, तो गई थी सीता और उसीके साथ हिन्दुस्तान की ईज्जत। मेरी राय में पौलस्त्य-वध और मानस दोनों के राम कथा-कहानी के राम हैं। असली राम न रोये, न सोच में पड़े। उन्होंने घबराये हुए लक्ष्मण को सँभाला और एक क्षण खोये विना लग गये सीता की खोज में और लगा लिया उसका पता।

राम के आगे के कारनामे हमें इसी नतीजे पर पहुँचने को मजबूर करते हैं। राम ने और अकेले राम ने, घर से सैंकड़ों कोस दूरवाले राम ने लंका-विजय कर जो चमत्कार दिखाया हैं, वह रोनेवाला राम नहीं हो सकता। करिश्मे रोऊ नहीं दिखाया करते। करिश्मे चमत्कृत व्यक्ति ही दिखाया करते हैं। सुरसुराता सर, हिलता हाथ और मौनी मुख। तुम भी अपनी तकलीफों में गूँथ लिया करो चालों की एक माला और तय कर लिया करो कि कौन-सी चाल कब और कैसे चली जायगी। शतरंज के खेल में जो जितनी चालें आगे की सोचकर चलता है, वही बाज़ी जीतता रहता है। अपनी चालों की जाँच करते वक्त जितनी जल्दी तुमको अपनी भूल मिलेगी, दूसरे को नहीं। तुम्हारे सामने हर चाल का उचान-निचान जो है, पर यह सब कामयाबी के साथ होगा तभी, जब तुम भूलों की पाठशाला में बिना नागा जा चुके होगे और बेलाग जिंदगी बिताना सीख चुके होगे।

तजुर्बे हासिल करते हुए बेलाग जिंदगी बिताना जिंदगी का दूसरा उसूल है।

जिंदगी सोच-विचार की चीज नहीं, वह तो विताने की चीज है। असल में जिंदगी एक सीढ़ी है, तकलिफें उसके डंडे हैं। सीढ़ी के ऊपर पहुँचना जिंदगी वितानेवालों का काम है। डंडों पर सँभलकर पाँव रखने से ही कम फिसलने से बच सकते हैं। एक पाँव जमाने में देर लगायेंगे, पर दूसरा पाँव उठाने में जल्दी करेंगे। जितने डंडे हम चढ़ चुके हैं, उनके वारे में सोचने मे हम वक्त जाया नहीं करेंगे। हम सोचेगें उन डंडों की, जिन पर पाँव रखकर हमे ऊपर चढ़ना हैं। तभी आज़ादी की छत पर पहुँच पायेंगे। यह जिंदगी एक गोरखधंधा है। हमे चाहिए की उसको सुलझाने के लिए कदम उठाने से पहले हन दो-चार नहीं, बल्कि बीसियें हल सोच लें और फिर एक के वाद एक लगाकर काम मे लाने लगं जायें। ऐसा करने से हन झुँझलाहट के शिकार होने से वच जायेंगे। ऊव उठने की वात फिर पैदा न होगी।

सचाई वड़ी अच्छी चीज़ हैं। कछ वुज़ुर्गों ने तो सच को ही खुदा कहा है। सच है भी इस दाम के लायक। सच जव ईश्वर ही है तो मौजूद भी होना चाहिए; पर यह याद रहे, वह आकाश की तरह सव जगह मौजूद है। सच में तकलीफों को मिटाने की ताकत नहीं, उलझनों को सुलझाने का वल नहीं। यह वल तो वालू के जर्रें जितनी व्यवहार-वुद्धि यानी अमली सूझ-वूझ में है। वही तकलीफ मिटा सकती है। उलझन सुलझा सकती है। आफत में पड़कर न सचाई देह धरकर आयगी और न ईश्वर। उस वक्त काम करेगा तुम्हारा दुनियावी तजुर्वा, व्यावहारिक ज्ञान। वह वतायगा, भूल किस तरह की है, क्यों हुई और कैसे ठीक होगी। सचाई और,राम हिम्मत के दूसरे नाम हैं, या अगर ये अलग कुछ है, तो खड़े-खड़े "वाह वहादुर, वाह वाहादुर, खूव किया, खूव किया" कहते रहते हैं। क्या, क्यों और कैसे के झंझट में सचाई और राम नहीं पड़ते। यह काम तो दानाई वुद्धि का, अक्लमंदी का है।

क्या, क्यों और कैसे से आगे का रास्ता तय करने के लिए हमारी रोजमर्रे की समझ हमारा साथ देगी। वह वतलायगी कि काम कव और कैसे शुरू किया जाय? कौन हमारे मददगार होंगे? काम करने की लगन तुमको यह वता देगी कि तुमको

क्या चाहिए और फिर तजुर्बा वे चीजें तुम्हारे सामने लाकर रख देगा। आदत हो जाने से यह काम रोज-ब-रोज आसान होते चले जायँगे। यह तो याद रखना ही चाहिए कि जानने से करना ज्यादे काम की चीज है। संतोष करने से होगा, जानने से नहीं। जानकारी कभी-कभी दुविधा में डाल देती है। दुविधा ही बेचैनी है। बेचैनी का नाम ही असंतोष है। असंतोष से बचने का तरीका हैं—बुराई-भलाई का आँकड़ा तैयार करना।

—महात्मा भगवानदीन]

मिस्र और अरब के बीच

आज २६ सितम्बर है। सागर शान्त है। जल-विस्तार फैली चादर-सा लगता है, गंगा-यमुना के जल-सा। नन्हीं-नन्हीं लहरियाँ उठ रही हैं। केवल जिस ओर से हमारा जहाज अपनी राह बनाता जा रहा है, फटती हुई लहरियाँ फेनिल हो फैल जाती हैं। हल्के घहराने का शब्द निरन्तर हो रहा है, जैसे किसी ने सागर का मुँह बन्द कर रक्खा हो और वह भीतर-ही-भीतर घुमड़ रहा हो। सुबह प्रायः साढ़े चार बजे ही अदन लाँघ गए थे। अदन का आलोकस्तम्भ और बस्तियाँ झिलमिल-झिलमिल चमकी थीं। अदन सर्वथा तटपर नहीं है। उससे कुछ पीछे हटकर खाड़ी के मोड़ में पहाड़ी के पीछे है। पर किनारा और पहाड़ियाँ लगातार दाहिनी ओर, जिसे जहाजी बोली में 'बन्दर की दिशा' कहते हैं, दिखाई देने लगीं। हम दूरबीन और बाइनाकुलर द्वारा देर तक तट देखते रहे। कप्तान के बाइनाकुलर और दूरबीन दोनों ही बड़े जोरदार हैं, तट को बिलकुल पास कर देते हैं।

अब हम बाबेल-मंडब के जलडमरूमध्य में दाखिल हो चुके हैं, जो अरब-सागर को लाल-सागर से मिलाता है। अरब-सागर से हम पूर्वान्ह में ही बिदा ले चुके हैं। बाबेल-मण्डब का जलडमरूमध्य प्रायः बारह मील चौड़ा है और दोनों तट साफ दीखते हैं। बाईं ओर मिस्र का और दाहिनी ओर अरब का देश है। दोनों तट रेतीला है और कप्तान से सुना कि बाबेल-मण्डब में रेत का तूफ़ान भी अक्सर आता है। पर यद्यपि हम मानसून का मौसम सर्वथा लाँघ नहीं चुके हैं, तूफ़ान से जान बची; फिर भी अभी लाल-सागर की मुसीबत आगे है। सुना कि जब तूफ़ान आता है, तब बालू के बादलों से सागर का आकाश भर जाता है। जहाज़ के डेक पर जाना असम्भव हो जाता है। और दरवाज़े-खिड़कियाँ सब बन्द कर लिए जाते है। हम अब भी बाबेल-मंडब में ही हैं; पर तट निर्वात-से हैं, सागर शान्त है।

ऊपर उस डेकपर पहुँचा, जहाँ से 'स्टीयरिंग' होती है। एक पहिया है, जिसे पकड़े एक आदमी सदा खड़ा रहता है। और उसे सामने के क़ुतुबनुमे की एक खास डिग्रीपर चलाता रहता है। उसीसे जहाज़ अपने नियत मार्ग पर चलता है। स्थल पर रास्ता पहचानना कितना आसान है; पर जल की सतह पर, इसके फैले विस्तार पर, कितना कठिन! पहचान अधिकतर घरों, खेतों, मैदानों की मोड़ों से होती है। यहाँ वह सब-कुछ नहीं। एकांकी निर्जनता है। इतने दिनों में एक चिड़ियाँ तक न दिखाई पड़ी। और जहाज़ फिर भी अपने निश्चित मार्ग पर चला जा रहा है, बीघा भर भी इधर-उधर नहीं हो पाता।

अब तक हम बाबेल-मण्डब लाँघकर लाल-सागर में दाखिल हो चुके हैं—लाल-सागर, जिसका बाईबिल में कितनी ही बार ज़िक्र आया है।

तीसरा पहर है और लहरियाँ वैसे ही जहाज़ को थपथपा रही हैं, जैसे अरब-सागर को थपथपाती थीं। किनारे अब भी दोनों ओर जब-तब दीख जाते हैं।

लाल-सागर प्रायः डेढ़ हज़ार मील लम्बा है और स्वेज़ तथा अकावा नाम की दो खाड़ियों में जाकर उत्तर की ओर ख़त्म होता है। इन्हीं दोनों खाड़ियों के बीच सिनाई का प्रायद्वीप है, जहाँ सिनाई पर्वत सात हज़ार से अधिक ऊँचा है। हम इधर बराबर लाल-सागर में ही चले जा रहे हैं और ऐसा लगता है कि जीवित संसार में पहुँच गए हैं। आने-जानेवाले जहाज़ों ने नया कुतूहल पैदा कर दिया है। अब सागर नितान्त सूना नहीं लगता।

गर्मी बेहद है। इधर दो-तीन दिनों से गर्मी काफी बढ़ती गई है। रात तक, सुना है, असह्य हो उठेगी। सुबह बेहद पसीना निकला। पंखा पूरी रफ्तार से चलता रहकर भी बराबर बहने वाले पसीने को न रोक सका था। इस समय भी, जब रात में मैं लिख रहा हूँ, पंखा पसीना नहीं सुखा पा रहा है। तट पर भला लोगों की क्या दशा होगी? प्राचीन काल के उन जहाजों की क्या दशा रही होगी, जिनमें पंखे का कोई प्रबन्ध न था? हम पानी पर हैं, हवा ज़ोर से चल रही है, पंखा अपनी सर्वाधिक गति पर है; फिर भी पसीना बहता ही जा रहा है। स्वेज लाँघकर जब हम भूमध्य-सागर में पहुँचेंगे, तब कहीं पसीना सूखेगा।

प्रातः और संन्ध्या—प्रायः सारा दिन—समुद्र शान्त रहा और जहाज आते-जाते रहे। आज सहसा एक पक्षी को भी उड़ते देखा। यद्यपि कुछ पक्षी ऐसे भी है, जो सर्वथा जल पर ही रहते हैं; पर अधिकतर और साधारणतः उनके दर्शन से कल्पना होती है कि स्थल पास है या कम-से-

कम दूर नहीं है। शाम के भोजन के बाद डेक पर गया। पूर्णिमा होने से आज सुदर्शन चन्द्र निकला। प्रशान्त जल-विस्तार पर उसका चमकना और पानी पर उसका झिलमिलाना देर तक देखता रहा। चाँद छोटा ही दीख पड़ा। उठा भी प्रायः छोटा ही था, धीरे-धीरे जल की सतह से शायद इसीलिए कि उसे पूर्णता दिन में ही प्राप्त हो गई थी। पर जल की सतह से उसका उठना सही-सही वैसे ही न देख सका, जैसे तत्पर रहकर भी सूरज का निकलना न देख सका था। क्षितिज पर प्रायः बादल मँड़राते रहते हैं, जो सूरज को ढँक लेते हैं और बालारुण का वह अभिराम बिम्ब देखने को नहीं मिलता, जो भारत की विभूति है।

दूसरे दिन सुबह का नाश्ता कर ऊपर डेक पर गया। जहाजों का आना-जाना अब इतना स्वभाविक लगता है कि प्रायः प्रत्येक दो-तीन घण्टों में एकाध जहाज इधर से, एकाध जहाज उधर से निकलते दिखाई पड़ते हैं। अनेक फ़ारस की खाड़ी को, अदन को, बंबई और सुदूर-पूर्व को जाते हैं, अनेक पूर्व और अमरीका को। पर अधिकतर ये माल या तेल ढोने वाले जहाज ही हैं, यात्री ढोनेवाले नहीं देखा, सागर प्रशान्त था। एक लहर कहीं उठती-गिरती न थी। सागर जैसे सो रहा था। गर्मी के मारे उसके जलकण भी शिथिल हो गए है। एक फैली हुई अपार जलराशि है, जहाँ न तो स्पन्दन है, न प्रवाह। उसके एकान्त मौन को हमारा जहाज ही अपनी गति से प्रतिपल छेड़ देता है, जिससे घहर घहर होने लगता है। अनेक पक्षी उड़ रहे हैं। उनकी मनोरम आवाज आज कई दिनों पर सुन पड़ी। मनुष्य इतना जनप्रिय है कि नीरवता उसे काटने लगती है और अपनी बोली न समझ सकनेवाले प्राणी की अगम्य वाणी भी उसे सार्थक लगती है। पक्षी इतने हैं और उड़-उड़कर दूर से पास

आ जाते हैं। निश्चय ही स्थल बहुत दूर, अरब सागर की भाँति दूर, नहीं है। लाल-सागर कुछ छिछला तो है ही, चौड़ा भी कम ही है। यद्यपि हम दोनों तट देख नहीं पाते, ऐसा लगता है कि कम-से-कम एक ओर पश्चिम की ओर, तट पास ही है। है भी ऐसा ही, क्योंकि उधर मिस्र की भूमि है, और पोर्ट सुदान भी बहुत दूर नहीं होना चाहिए।

ऊपर की बैठक में थोड़ी देर तक रेवरेण्ड जेम्स के साथ शतरंज खेलता रहा। फिर 'लंच' (दोपहर का खाना) का समय हो गया। लंच आजकल जहाज़ पर साढ़े बारह बजे होता है। घड़ी की विधि भी आजकल कुछ बदल गई है; क्योंकि हमारी गति की दिशा अब पूरी पश्चिम अथवा पश्चिमोत्तर भी न होकर सर्वथा उत्तर है। जहाँ हम अपनी घड़ी प्रायः प्रन्दह मिनट पीछे कर लिया करते थे, वहाँ वह आज केवल पाँच-सात मिनट पीछे करनी पड़ी।

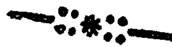
फिर पाँच बजे संध्या को ऊपर बैठक (सिगरेट पीने का कमरा) में पहुँचा। भोजन का समय हो गया था। शाम के खाने की घण्टी भी बज चुकी थी। सूरज का लाल गोला क्षितिज की ओर अधोधः उतरता जा रहा था। पहले ही खिड़की से जब वह दूर की आकाश-रेखा से उतरने लगा, तो जान पड़ा, जैसे उसका बिम्ब खिड़की को भर रहा है—बड़ा मनोरम उसका रूप था। सब डेक पर चले आए और उस अद्भुत विभूति का तिरोहित होना बड़े मनोयोग से देखने लगे। पतन कितनी तीव्र गति से होता है। सूर्य पहले आकाश और सूर्य-निर्मित सन्धि पर आया; फिर क्षितिज के नीचे चला और देखते-ही-देखते आग का वह गोला प्रशान्त जलराशि में डूब गया।

—श्री भगवतशरण उपाध्याय]

अभ्यास

१. निचे लिखे विषयों पर अपनी सुविधा के अनुसार क्रम-क्रम से पृथक्-पृथक् लेख लिखने का अभ्यास किया करें—

(१) दुर्गापूजा, (२) होली, (३) हमारा गाँव, (४) अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा, (५) देशरत्न डा० राजेंद्र प्रसाद, (६) सन् १९४२ का स्वातंत्र्य संग्राम, (७) आजाद/हिंद फौज, (८) पुस्तकालय, (९) भारतीय संस्कृति में गाय का स्थान, (१०) समाचार-पत्रों की उपयोगिता, (११) सामाजिक शिक्षा और विद्यार्थी, (१२) नागरिकता के अधिकार और नागरिकों के कर्त्तव्य, (१३) संयुक्त-राष्ट्र-संघ, (१४) भारत का संविधान, (१५) दामोदर घाटी योजना।



रचना कला

[चतुर्थ खंड]

प्रथम परिच्छेद

१. अनुवाद की आवश्यकता

किसी एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में प्रगट करना अनुवाद कहलाता है। संसार में अनेक शिष्ट और संयत भाषाएँ प्रचलित हैं। प्रत्येक भाषा में व्यक्त किये गये भावों और विचारों में कुछ-न-कुछ विशेषताएँ रहती ही है। ज्ञान के विकास के लिए भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी लोगों के बीच उत्कृष्ट भावों और श्रेष्ठ विचारों का आदान-प्रदान होता रहना आवश्यक है। ऐसा होना तभी संभव है जब कि किसी भी भाषा के उत्तमोत्तम ग्रंथ दूसरी-दूसरी भाषाओं में भाषांतरित होते रहें। अच्छी-अच्छी पुस्तकों के अनुवाद से भाषा के साहित्य-भंडार की श्रीवृद्धि होती है। किसी नयी भाषा को तो अपने पैरों पर खड़ा होने के समय दूसरी भाषाओं का सहारा लेना ही पड़ता है। जब कोई भाषा सर्वांग पुष्ट और उसका साहित्य सर्वथा समुन्नत हो जाता है, तब भी अनुवादों की आवश्यकता बनी ही रहती है। अन्यान्य भाषाओं में प्रकाशित उत्तमोत्तम ग्रंथों के अनुवाद लोगों के अपनी भाषा में करने ही पड़ते हैं। यदि ऐसा न हो तो एक भाषा के पाठक दूसरी भाषाओं में प्रतिपादित विचारों, सिद्धांतों आदि से अपरचित ही रह जायँ। इन दिनों अंगरेजी संसार की एक सर्वांग-संपन्न और समुन्नत भाषा मानी जाती है। इसका साहित्य-भांडार विज्ञान, भूगोल, राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति आदि आधुनिक विषयों के ग्रंथों से सर्वथा भरा-पूरा है। दूसरे-दूसरे देशों के

भी वैज्ञानिक, तत्त्ववेत्ता, राजनीतिज्ञ आदि महापुरुष प्रायः अंगरेजी में ही अपने विचार व्यक्त करते हैं। मगर हिंदी भाषा में ऐसे विषयों के साहित्य का अभाव है। अतः हिंदी की इस अभाव-पूर्ति के लिए हमें अंगरेजी से हिंदी में अनुवाद करने की प्रणाली का सहारा लेना ही पड़ेगा। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं है कि अगरेजी को अनुवाद की आवश्यकता नहीं है। अनुवाद की कुछ-न-कुछ आवश्यकता तो सभी भाषाओं के लिए अपेक्षित है। तभी तो हिंदी, बॅंगला, मराठी, उर्दू आदि भारतीय भाषाओं के भी अनेकानेक ग्रंथ अंगरेजी में अनूदित हैं और होते ही रहते है।

२. अनुवाद के गुण

किसी भाषा में व्यक्त भावों को ही जानने के लिए उसका अनुवाद दूसरी भापा में किया जाता हैः इसलिए अनुवाद वही अच्छा होता है जिसमें मूल की सव बातें आ जायॅं, न कोई बात छूटे और न विकृत हो जावे। अनुवाद में दूसरा गुण यह होना चाहिए कि वह कहीं अनुवाद-सा नहीं प्रतीत हो। वह सव प्रकार से मूल का ही आनंद दे। ये दोनों गुण तभी संभव है जब कि अनुवादक को उस भाषा का ठीक-ठीक ज्ञान हो, जिससे वह अनुवाद करता है। साथ ही, उसे उस भाषा के स्वरूप का भी अच्छा ज्ञान रहना चाहिए जिसमें वह अनुवाद करता। इन दोनों में किसी की कमी होने से अनुवाद अशुद्ध या अस्पष्ट हो जाता है।

३. अनुवाद के भेद

अनुवाद मुख्यतः तीन प्रकार से किया जाता है—(१) छायानुवाद—मूल भापा के तथ्य को लेकर स्वतंत्र रूप से जो अनुवाद किया जाता है, उसे छायानुवाद कहते है। इस तरह के अनुवाद से, जिस भाषा में अनुवाद किया जाता है उसकी मौलिकता में आँच नहीं आती, उसमें कृत्रिमता का लेशमात्र भी आभास नहीं मिलता। साथ ही, मूल भापा के भाव का भी पूर्णतः निर्वाह होता है। मगर इस तरह के अनुवाद के लिए दोनों भापाओं पर अधिकार रखना आवश्यक है।

(२) भावानुवाद—भावानुवाद में मूल भाषा के शब्दों को तोड़-मरोड़ सकते है, निरर्थक शब्दों को हटा सकते है, वाक्यों के क्रम को वदल सकते हैं, बड़े-बड़े जटिल वाक्यों को छोटे-छोटे सरल वाक्यों में बदल सकते हैं, वाक्यांशों और मुहाविरों को अपनी भाषा के साँचे में ढाल भी सकते हैं, मगर मूल भाषा में व्यक्त भावों तथा उसके आकार-प्रकार को घटा-बढ़ा नहीं सकते हैं। मूल भाषा में जो भाव जिस उद्देश्य से और जिस ढंग से व्यक्त किये है उन्हें उसी उद्देश्य से और यथासंभव उसी ढंग में कहना पड़ता है।

(३) अविकल अनुवाद—इस प्रकार के अनुवाद में अक्षरशः मूल भाषा का अनुकरण करना पड़ता है। हाँ, वाक्य-रचना क्रिया-प्रयोग, पद-संस्थापन, मुहाविरे आदि के लिए अपनी भाषा के व्याकरण के नियमों का ही पालन करना पड़ता है। क्योंकि ऐसा नहीं करने से अर्थ स्पष्ट नहीं हो सकता। फिर भी, इस प्रकार के अनुवाद में स्वाभाविकता और मौलिकता का निर्वाह करना बहुत ही कठिन है।

विद्यार्थियों के लिए इन तीनों प्रकार के अनुवादों में से भावानुवाद के मार्ग पर ही चलना श्रेयस्कर है।

४. अंगरेजी का हिंदी रूपांतर

अभी हिंदी को अँगरेजी भाषा से वहुत कुछ लेना वाकी है। इसलिए अनुवादों में अंगरेजी से हिंदी में अनुवाद करने के अभ्यास से विद्यार्थियों को सर्वथा परिचित रहने की आवश्यकता है। अतः अंगरेजी से हिंदी में अनुवाद करने के संवंध में कुछ मुख्य-मुख्य वातों का दिग्दर्शन करा देना आवश्यक है।

(१) अनुवादक मूल भाषा की पद-संस्थापन विधि को अपनी भाषा के व्याकरण के नियमानुसार परिवर्तित कर सकता है। अंगरेजी भाषा के वाक्य में साधारणतः पहले कर्त्ता, तव क्रिया और तव कर्म रहते हैं; मगर हिंदी में कर्त्ता के वाद कर्म और अंत में क्रिया रहती है। अनुवाद में हमें

हिंदी के व्याकरण के अनुसार चलना पड़ेगा। जैसे—'I shall purchase a bcok'.—इसका शाब्दिक अनुवाद होता है–'मै गा मोल एक पुस्तक'। इस तरह के अनुवाद से स्पष्ट अर्थ नहीं निकालता। हिंदी व्याकरण के नियमानुसार इसका अनुवाद होना चाहिए—'मैं पुस्तक मोल लूँगा'। इस अनुवाद से अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

(२) अनुवाद में मूल भाषा के ऐसे शब्दों को छोड़ सकते है जो या तो निरर्थक हैं या जिनके छोड़ने से भी भाव का पूर्णतः निर्वाह हो जाता है। जैसे—'The cow is a four-footed animal'.–इस वाक्य के 'दी' और 'ए' को छोड़ने से ही अनुवाद मे मूल भाषा के भाव का निर्वाह होता है—'गाय चौपाया जंतु है'। इसी प्रकार 'He knows how to work'. का अनुवाद है, 'वह काम करना जानता है'।

(३) अनुवाद में मूल भाषा के किसी भाव की स्पष्टता के लिए एकाध नये शब्द भी आवश्यकतानुसार जोड़े जा सकते है। जैसे—'It rains' का अनुवाद होगा 'पानी बरसता है'।

(३) कभी-कभी अंगरेजी के कई शब्दों का भाव हिंदी के एक ही शब्द से प्रगट किया जा सकता है और कभी-कभी अंगरेजी के एक शब्द का भाव स्पष्ट करने के लिए हिंदी के कई शब्द रखने पड़ते हैं। जैसे—'He is at a loss to determine what to do'.—'वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ है'। 'He is undone'.—'उसका सर्वनाश हो गया'।

(५) अनुवाद में कभी-कभी रचना की सुंदरता बढ़ाने के अभिप्राय से वाच्य-परिवर्तन कर सकते हैं; अर्थात् कर्मवाच्य का अनुवाद कर्तृवाच्य में और कर्तृवाच्य का अनुवाद कर्मवाच्य या भाववाच्य में कर सकते हैं। इसी प्रकार सुविधानुसार परोक्ष उक्ति को प्रत्यक्ष उक्ति में बदल सकते है। जैसे—

I am unable to walk.—मुझसे चला नही जाता।

He has been appointed as a clerk.—उसकी नियुक्ति किरानी के पद पर हुई है।

He said to me, 'do this work'.—उसने मुझे यह काम करने को कहा।

He advised me to translate this book.—उसने कहा, 'आप इस पुस्तक का अनुवाद करें'।

(६) सुविधानुसार अंगरेजी के एक वाक्य का अनुवाद हिंदी के अनेक वाक्योंमें और अनेक वाक्यों का अनुवाद एक वाक्य में भी कियाजा सकता है।

५. अनुवाद की भूलें

अंगरेजी से हिंदी मे अनुवाद करते समय लोग कई तरह की भूलें कर बैठते है। विशेषकर अंगरेजी वाक्यांशों का अनुवाद करने में तो विद्यार्थी अक्सर भूल करते हैं। जैसे Running train का अनुवाद होगा 'चलती गाड़ी' या 'दौड़ती गाड़ी'। मगर 'Walking stick' का अनुवाद हो जायगा 'टहलने की छड़ी' न की 'टहलती हुई छड़ी'। समाचार-पत्रों में इस तरह की भूलें प्रायः देखने को मिलती है। नीचे कुछ ऐसे ही उदाहरण दिये जाते हैं।

अंगरेजी शब्द	अशुद्ध अनुवाद	शुद्ध अनुवाद
Hunger-strike	भूख-हड़ताल	अनशन
White-ants	सफेद चींटी	दीमक
Trade-union	व्यापार संघ	ट्रेडयुनियन (श्रमिक-संघ)
House-breaker	मकान तोड़नेवाला	सेंध मारनेवाला
Still-child	शांत बच्चा	मृत बच्चा
Scorched-erath policy	घर-फूँक-नीति	सर्वक्षार-नीति
Coloured-race	रंगीन जाति	काली जाति

कभी-कभी लोग अंगरेजी भाषा के व्यक्तिवाचक संज्ञा-शब्दों का भी अपने ढंग से अनुवाद कर लेते है। ऐसा करने से मूल भाषा के भाव की हत्या होती है। चीन में एक अखबार का नाम है 'War and Workers'; एक बार हमने एक हिंदी के समाचार-पत्र में इसका हिंदी प्रतिशब्द पढ़ा—'युद्ध और कार्यकर्त्ता', इसी तरह 'Cape of gootl hope' का अनुवाद भी 'उत्तमाशा अंतरीप' के रूप में पाया जाता है। हाँ, अबतक 'Stalin' का अनुवाद 'इस्पात' के रूप में नहीं देखा गया है।

जिस प्रकार हिंदी भाषा के अनेक शब्दों के कई अर्थ होते हैं उसी प्रकार अंगरेजी के अनेक शब्द ऐसे है जो कई अर्थों में प्रयुक्त होते है। अनुवादक को यह बराबर ध्यान में रखना चाहिए कि अंगरेजी में जहाँ जो शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, हिंदी अनुवाद में भी उस शब्द का उसी अर्थ में प्रयुक्त प्रतिशब्द चुनना चाहिए। उदाहरण के लिए 'Workers' शब्द को लीजिए। यह शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होत है—कर्मचारी, कार्यकर्त्ता, मजदूर आदि। अतः अनुवादक को देखन होगा कि वाक्य में यह शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है; और उसी के अनुकूल हिंदी का प्रतिशब्द चुनना चाहिए।

हिंदी की तरह अंगरेजी में भी सूक्ष्म-भेद के साथ सैकड़ों अनेकार्थक शब्द है। अनुवादक को चाहिए कि ऐसे शब्दों का अनुवाद करते समय उनके अर्थों के सूक्ष्म भेद पर सदा ध्यान रक्खा करें और अर्थ के आधार पर ही उनके लिए हिंदी-शब्दों का चुनाव करें। उदाहरण के लिए, Honour के लिए 'सम्मान', Prestige के लिए 'प्रतिष्ठा', Trade के लिए 'व्यापार', Commerce के लिए 'व्यवसाय' War के लिए 'युद्ध', Battle के लिए 'लड़ाई', Struggle के लिए 'संघर्ष', Value के लिए 'मूल्य' या 'अर्घ्य', Price के लिए 'दाम' या 'कीमत', Politician के लिए 'राजनीतिज्ञ', Statesman के लिए 'राजकर्त्ता', Governor के लिए 'राज्यपाल' या 'शासक' तथा Administrator के लिए 'प्रशासक' शब्दों का प्रयोग युक्ति-संगत होगा।

इसी प्रकार अंगरेजी के पारिभाषिक शब्दों के लिए भी हिंदी में जो शब्द सर्वमान्य समझे जाते हैं उन्हीं का प्रयोग करना उचित है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए पुस्तक के अंत में अंगरेजी के कुछ ऐसे ही शब्दों के पर्यायवाची और मान्य हिंदी शब्दों की तालिका दे दी गई है।

अंगरेजी की लोकोक्तियों और मुहावरों के अनुवाद में शाब्दिक-अनुवाद से अर्थ स्पष्ट नहीं होता। अर्थ के आधार पर ही उनका अनुवाद होना उचित है। पुस्तक के अंत में कुछ लोकोक्तियों और मुहावरों के हिंदी रूप दिये गये हैं।

द्वितीय परिच्छेद

१. अनुवाद के कुछ दृष्टांत

[1]

A dispute once arose between the Wind and the Sun, as to which was the stronger of the two, and they agreed to decide the matter in the following manner that whichever of them first made a traveller who was coming that way take off his cloak, should be accepted as the more powerful. The Wind began to blow with all his might and made a blast, cold and fierce, but the stronger he blew the closer did the traveller wrap his cloak around him, and the tighter he grasped it with his hands. Then broke out the Sun with welcome beams. He dispersed the vapour and the cold; the traveller felt the genial warmth, and as the Sun shone brighter and brighter, he sat down, overcome with heat, and caste his cloak upon the ground. It has ever been deemed that persuation is better than force. [C. U. Matric, 1948

एक वार पवन और सूर्य में यह विवाद छिड़ा कि दोनों में कौन अधिक वलवान है। वे दोनो इसका निर्णय इस प्रकार करने पर सहमत हुए कि उस मार्ग से आनेवाले पथिक का लवादा जो पहले

उतरवा दे, वही अधिक शक्तिशाली मान लिया जाय। पहले पवन ने अपनी सारी शक्ति लगाकर ठंढे और भयंकर झोंके को प्रवाहित करना प्रारंभ कर दिया; किंतु ज्यों-ज्यों वायु का वेग प्रचंड होता गया त्यों-त्यों पथिक अपने लबादे को अधिकाधिक मजबूती से अपने चारों ओर लपेटता गया और फिर उसे दोनों हाथों से कसकर पकड़े रहा। पश्चात् सूर्य प्रकट हुआ जिसकी सुखद किरणों ने जाड़े और कुँहासे को विनष्ट कर दिया। पथिक ने सुखमय उष्णता का अनुभव किया। जब सूर्य का प्रकाश निरतर तीक्ष्ण होता गया, तब वह गर्मी से त्रस्त होकर बैठ गया और अपना लबादा उतारकर जमीन पर फेंक दिया। यह सर्वदा मान्य है कि बल-प्रयोग की अपेक्षा सक्रिय प्रेरणा ही अधिक प्रभावोत्पादक होती है।

[2]

You have all probably seen tigers at the zoo or circus Perhaps some of you have even seen them in their wild state! Tigers are found over a very large area of Asia—from the Caucasus mountains to Mongolia and southwards in India, Burma, Malaya and as far as Java. Of these the Mongolian and the Bengal tigers are the largest, in many cases larger than the lion. The Java tiger is the smallest. Tigers hunt by night and prey chiefly on deer and wild pig. The only wild animal the tiger respects is the bull buffalo, who is often more than a match for it. Tigers can not climb trees, but can leap a good fifteen feet or more. The tigress has from two to six cubs, which she guards ferociously. They stay with the mother until they are two years old, by which time they have been

taught to become expert hunter. The man-eater is usually an old or wounded tiger who has not got the strength or energy to go after wild game. Tigers when captured very young can be easily tamed, but can not be relied upon when fully grown. [From 'Statesman'

आपलोगों ने संभवतः जंतु-गृह (चिड़ियाखाना) या सर्कस में बाघ देखा होगा। कदाचित् आपलोगों मे से कुछ ने उन्हें जंगली अवस्था में भी देखा होगा। एशिया के बहुत बड़े विस्तृत-क्षेत्र में— काकेशश पर्वत-श्रेणी से मंगोलिया तक और दक्षिण की ओर भारत, बर्मा, मलाया तथा सुदूर जावा तक के भू-भाग में—बाघ पाये जाते हैं। इनमें से मंगोलिया और बंगाल के व्याघ्र अपेक्षाकृत सबसे बड़े, यहाँ तक कि कोई-कोई सिंह से भी बड़े होते हैं। जावा के बाघ आकार मे सबसे छोटे होते हैं। बाघ रात में शिकार के लिए निकलते हैं और मुख्यतः हरिण और जंगली सूअर उनके शिकार के लक्ष्य होते हैं। केवल एक ही बनैला जतु भैंसा है, जिससे बाघ दबता है; क्योंकि भैंसा प्रायः उनसे अधिक बलिष्ठ प्रतिद्वंदी है। बाघ पेड़ पर नहीं चढ़ सकते; लेकिन पंद्रह फुट या इससे भी अधिक मजे में कूद सकते हैं। बाधिन एक साथ दो से छः बच्चे तक जनती है और खूंखारता के साथ उनकी रखवाली करती है। बच्चे दो वर्ष की उम्र तक माँ के साथ रहते हैं। इस अवधि में वे कुशल शिकारी बनना सीख लेते हैं। जो बाघ बूढ़ा या आहत हो जाता है और जंगली जंतुओं का शिकार करने की शक्ति और तेज खो बैठता है वही साधारणतः मनुष्य-भक्षक होता है। जो बाघ अपने शैशव में ही पकड़ लिये जाते हैं वे ही सुगमता से पाले जा सकते हैं, लेकिन जब वे पूर्ण यौवन प्राप्त कर लेते है, तब उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

[3]

Budhism is the third of the greatest religions. It was founded by Buddha. His family name was Gautam. He was born of Maya Devi in the Lumbini garden, near Kapilvastu. His father Sudhodan was the 'Raja' of the proud Sakya clan. Buddha was so shocked by the wicked and misery of the world around him that he became a hermit and thought out what he considered the best means of escape from the troubles of life. The aim of his religion is to reach a state called 'Nirvana' where both pleasure and pain cease for ever. Until a man reaches 'Nirvana', he will be born again and again.

[C. U. Matric, 1949.

संसार के महान् धर्मों मे वौद्ध धर्म का तृतीय स्थान है। इसकी संस्थापना वुद्ध ने की थी। उनका घर का नाम गौतम था। कपिल-वस्तु के निकट लुंवनी उपवन में माया देवी की कोख से उनका जन्म हुआ था। गौरवशाली शाक्य कुल के 'राजा' शुद्धोधन उनके पिता थे। अपने चतुर्दिक फैली हुई सांसारिक विभीषिका और कुटिलता से बुद्ध इतने विचलित हो उठे कि उन्होंने संन्यास ले लिया और जीवन के कष्टों से त्राण पाने के सर्वोत्तम साधन को ढूँढ निकाला। उनके धर्म का परम लक्ष्य उस अवस्था की प्राप्ति है जिसे 'निर्वाण' कहते हैं और जिसकी प्राप्ति से सुख-दुःख सदा के लिए विलीन हो जाते हैं। मनुष्य जबतक 'निर्वाण' प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उसे इस संसार में बार-बार जन्म ग्रहण करना पड़ेगा।

] 4]

There are some amusing stories told of the gramophone. This is one of them. A traveller was

passing through a jungle of Africa and happened to stay for the night in an African village. He had with him his gramophone, so he said, 'I will play my gramophone to the villagers. It will please them, for they like music. They had never heard a gramophone before.' So he wound up his gramophone and set it going. The villagers cried out in wonder. Some of them were so frightened that they took to their heels and ran off into the forest. Others said, "Let us find out how this white man makes his music?" So they broke up his records, and tried to eat them, for they said, "if we eat his magic, we shall also be able to make the same magic sounds." They broke open the box of the gramophone and were sadly puzzled because they could find no one with a voice inside.

ग्रामोफोन के विषय में कुछ मनोरंजक कहानियाँ कही जाती हैं। उनमें से एक यह है। एक यात्री अफ्रिका के किसी जंगल से होकर यात्रा कर रहा था। रात में उसे एक अफ्रिकन गाँव में ठहर जाना पड़ा। उसके साथ उसका ग्रामोफोन था। उसने मन में सोचा, गाँव-वालों को ग्रामोफोन सुनाया जाय। वे लोग संगीत-प्रिय हैं, इसलिए उन्हें इससे आनंद आयगा। उनलोगों ने इसके पहले ग्रामोफोन नही सुना था! अतः उसने ग्रामोफोन में चाभी भरी और बजाना प्रारंभ किया। आश्चर्य के मारे गाँववाले कोलाहल मचाने लगे। उनमें कुछ तो इतने भयभीत हो गये कि उलटे पाँव भागे और जंगल में घुस पड़े। दूसरों ने सोचा, पता लगाना चाहिए कि यह गोरा किस प्रकार अपना संगीत ध्वनित करता है। अतः उनलोगों ने उसके रेकार्ड तोड़-फोड़ डाले और उन्हें खाने की चेष्टा करने लगे; क्योंकि उन्होंने

सोचा कि अगर हमलोग उसके जादू को ही खा जायँगे तो हम भी उसीके समान जादू की ध्वनि उत्पन्न करने मे समर्थ हो जायँगे। उनलोगों ने ग्रामोफोन के बक्स को भी तोड़ डाला, मगर उसके भीतर ध्वनि पैदा करनेवाली कोई वस्तु नही देखकर वे और भी खिन्न और व्यग्र हो उठे।

[5]

The Buddhism became so important in the world largely due to a great king who ruled in India in the third century B. C. His name is Asoka. Like most famous kings in history, Asoka was a conqueror. But unlike the other great conquerors in history, he seems to have realized the suffering that war involves. He was a devout Buddhist and wanted to make other people Buddhists too. But it could not, he thought, be right to spread what you believed by violent means; and so he gave up war, while still victorious, and decided to devote himself to spreading Buddhism not by fighting but by preaching. He kept his empire at peace and ruled it wisely. On particular, he did much to make India more prosperous by digging wells, planting trees, founding hospitals, and educating his people. He even tried to educate women, which was and unheard of thing in those days. And he sent out missionaries all over Asia and into Europe to spread the teaching of Buddha.

[C. E. M. Joad

ईसा के पूर्व तीसरी शती में जो महान् राजा भारत पर राज्य करता था, वहुत अंशों में, उसी के कारण बौद्ध-धर्म संसार में इतना

प्रख्यात हुआ। उस राजा का नाम है अशोक। इतिहास के अन्य परम प्रसिद्ध राजाओं की तरह अशोक भी विजेता था। लेकिन इतिहास के अन्य महान् विजेताओं के प्रतिकूल केवल अशोक ही ऐसा समझा जाता है जिसने युद्ध-जन्य कष्टों का अनुभव किया। वह श्रद्धालु बौद्ध था और चाहता था कि दूसरे लोग भी बौद्ध बनें। लेकिन उसने सोचा कि हिंसात्मक उपायों से अपने विश्वास का प्रचार करना उचित नही है। अतः उसने विजयी होने पर भी युद्ध को त्याग दिया और लड़ाई के द्वारा नही बल्कि प्रवचन के द्वारा बौद्ध-धर्म का प्रचार करने के लिए आत्मोत्सर्ग करने का निश्चय कर लिया। उसने अपने साम्राज्य मे शाति कायम रखी और बुद्धिमत्ता से उसपर शासन किया। विशेष कर कुएँ खुदवा कर, वृक्षों को लगवाकर, औषधालयों की स्थापना कर तथा जनता को शिक्षित बनाकर भारत को अधिकाधिक समृद्धिशाली बनाने में बहुत कुछ किया। उसने स्त्रियों को शिक्षित बनाने का प्रयास किया, जो बात उन दिनों सुनी भी नहीं गई थी। उसने युद्ध के उपदेशो का प्रचार करने के लिए सारे एशिया और योरोप में अपने संदेशवाहक भेजे।

[6]

In one part of the school-garden there are a number of seedlings—little plants that have grown from seeds. Some of them are very close to one another. These seedlings are all tall and thin.

Eeach seedling wants to be in sun. It wants so much light as it can get, and so it tries to grow taller than the other seedlings. If one of them were shorter than the others it would be hidden from the sun. If we want seedlings to grow into

big plants, we must give them plenty of room. is better to grow a few plants with plenty of roon than many plants close together.

[From "In Search Of Science.

विद्यालय की वाटिका के एक भाग में बहुत-सी बिचड़ियाँ हैं—अभी-अभी बीजों से अंकुरित नन्हें-नन्हें पौधे। उनमें कुछ एक दूसरे से बहुत ही निकट हैं। वे सभी बिचड़ियाँ लंबी और पतली-पतली हैं।

प्रत्येक बिचड़ी सूर्य के प्रकाश में आना चाहती है। वह अधिक से अधिक प्रकाश प्राप्त करना चाहती है। अतः वह दूसरी बिचड़ियों से अधिक लंबी हो जाने की कोशिश करती है। अगर उनमें से कोई दूसरी से छोटी ही बनी रहे तो वह सूर्य का प्रकाश नहीं पा सकेगी।

अगर हम चाहते हैं कि बिचड़ी एक बड़े पौधे के रूप में विकसित हो तो हमें चाहिए कि हम उन्हे पर्याप्त जगह दे। बहुतेरे पोधो को एक साथ सटाकर उपजाने की अपेक्षा पर्याप्त स्थान देकर थोड़े ही पौधो को वढ़ाना कही श्रेयस्कर है।

अभ्यास

१. नीचे लिखे संदर्भों का हिंदी में, सरल भाषा में रूपान्तर करें—

[1]

Man, when he first came, must have been surrounded by many huge animals, and he must have live in fear of them. To-day man is master of the world and he makes the animals do what he likes. Some he tames like the horse, the cow, the elephant, the dog, the cat and so many others. Some he eats; and some like the lion and the tiger, he shoots for pleasure. But in those days he was not the master but a poor hunted creature him-

self, trying to keep away from the great beasts. Gradually however man raised himselfand be came more and more powerful till he become stronger than any other animal. How did he do this? Not by physical strength, for the elephant is much stronger than he is. It was by intelligence and brain power.

[Shri Jawaharlal Nehru.

[2]

Sir Jagdishchandra Bose was the first to light the torch of scientific research in India and continued to hold it aloft for nearly half a century, nay, to the last moment of his life. Long before wireless telegraphy came into existence, Sir Jagdish had actually astounded a large audience in the Presidency College by sending a message from his own laboratory to a distant room without the help of any transmitting wire. His study of plant physiology with its most marvellous result including the discovery of response in plants similar to those occurring in animals gained success and made him famous all over the world.

[3]

Plants need rain, they need the sun, and they need soil. If there were no soil there would be no plant. If you want plants to grow well, you must sow the seed in good soil.

There are many kinds of soil. One kind of soil is sticky. In wet weather it sticks to the feet. When it rains there are puddles on this soil, and the rain

lies there for a long time. That kind of soil is called clay. It may not be only clay, but it has much clay in it.

Another kind of soil is nearly all sand. Rain soon runs throu gh that kind of soil A feed minutes after the rain has stopped falling, sandy soil is dry again.

[In Search of Science, Book I.

[4]

The problem of keeping people healthy is usually considered from two aspects : (1) how the individual can keep healthy ; and (2) how the community can keep healthy. It may be healthy for the individual to drink plenty of water, but in a town at least it is the duty of the rulers to provide pure water. The individual can keep himself fit and try to avoid getting dangerous germs into his system ; but the rulers should see that there are not too many dangerous germs about. The citizens should eat only good food ; the rulers should see that bad food is not allowed to be sold. And so on with nearly every problem.

[J. C. Hill, M. Sc.

[5]

When the European nations began to make settlements in the hot parts of the earth, they found that white men could not work in the cotton, sugar and tobacco fields because of that. They therefore began to steal Negroes from

their homes in Africa ; and carry them across the seas, to sell them as slaves to the planters.

The slaves were packed into the holds of ships like berries in a barrel. Many died on the voyage, and those who lived were put up for sale as thouhgt they were cattle. They were branded with the name of their owner and often had to work very hard. Sometimes they were flogged, and otherwise cruelly treated.

[High Roads of History.]

[6]

Another example is given of his (Sultan Mahmud's) sense of duty to his people. Soon after the conquest of Irak, a caravan was out off in the desert to the east of that country. The mother of one of the merchants who was killed went to Gazni to complain. Mahmud explained to her the impossibility of keeping order in so remote a part of his territories, when the woman boldy answered, "why, then, do you take countries you cannot maintain where order and peace. For this will have to answer on the day of judgement ?" Mahmud was struck with the reproach ; and after satisfying the woman with a liberal present, he took effectual measures for the protection of the caravan.

[Eliphinston's History of India.]

[7]

Next to the land, his cattle are the peasant's most precious possession. They are useful to him,

you see, in so many ways. The bullocks draw the plough up and down in his fields and pull the cart to and from the market. The cow bears young calves which fetch a fair price. She gives milk, which the peasant's children need so badly. Besides, as some one has said, 'in a vegetarian country, what can be worse than to have no milk, butter or ghee?' In fact, everything about these animals—their skins, teeth, bones, horns and hoofs—can be put to some use for making other things. And let's not forget the cow-dung. Which is perhaps why the farmer is so anxions not to loose his cattle that he and his family often sleep in the same room with them.

[Our India]

[8]

First comes food. Why do we eat? Some of you will say you do so because you like to eat. Others will say they eat because they must, that is they eat to live and not live to eat. Both answers are correct, but here we are concerned with food as a necessity, and not as a pleasure. In this sense, food has three functions: to build or renew the body; to produce energy; and to regulate bodily process so as to maintain life. Different kinds of foods performing one or more of these three functions.

[Picture of a Plan]

[9]

When a man loves books, he has in him that which will console him under many sorrows and

strength him in various trials. Such a love will keep him at home and make his time pass pleasantly. Even when visited by bodily or mental affliction, he can resort to this book-love and be cured. And when a man is at home and happy with a book, sitting by his fireside, he must be a churl if he does not communicate that happiness. Let him read now and then to his wife and children. Those thoughts will grow and take root in the hearts of listeners.

[10]

The fundamental right of a citizen are Right to equality, Right to freedom, Right to freedom of religion, Right against exploitation, Right to property, Right to constitutional remedies etc.

The Union Parliament shall consist of two Houses; the Council of the States and the House of the people, the Upper and Lower Houses respectively. The Council shall have 250 members, while the House of the people shall comprise 500 members to be elected by the people.

परिशिष्ट (१)

कुछ चुने हुए प्रश्न

(१) नीचे लिखे संदर्भ में आवश्यकतानुसार विराम-चिह्न लगाइए—

विश्वामित्र क्रोध से सच है रे क्षत्रियाधम ! तू काहे को पहचानेगा सच है रे सूर्यकुल कलंक तू क्यों पहचानेगा धिक्कार तेरे मिथ्या धर्माभिमान को ऐसे ही लोग पृथिवी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट तै भूल गया कल पृथिवी किसको दान दी थी जानते नहीं कि मैं कौन हूँ

(२) नीचे दिये हुए वाक्यों के प्रत्येक पद का पद-निर्देश कीजिए—

पूर्व दिशा ने अपना मुँह लाल किया।
अहा, काशी की कैसी अनुपम शोभा है !

(३) नीचे लिखे शब्दों के विशेषण बताइए—

स्वर्ग, धर्म, स्वभाव, विश्वास, प्रमाण, उपार्ज्जन, ऋण, प्रसंग, स्तुति, चिंता, करुणा, अभिषेक, श्रद्धा, इच्छा, भूगोल, मूल, त्याग, पिता, आराधना, ग्राम, स्वास्थ्य, उन्नति, चलना, अर्थ, शोषण।

(४) नीचे लिखे सामासिक शब्दों का विग्रह करते हुए उनमें समास बताइए—

कृषिप्रधान, वातावरण, ग्रामोद्धार, प्रतिशत, आमूल, अनिभिज्ञ, गगनांगन, क्षत्रियाधम, राजभवन, अक्षत, दानवीर, स्वराज्य, सत्यभ्रष्ट,

त्रैलोक्य, माता-पिता, अनायास, सीताराम, पददलित, शांतिप्रिय, महात्मा, शक्तिहीन, श्रमजीवी, निर्विवाद, महाकाल।

(५) निम्नलिखित मुहाविरों का प्रयोग उनके अर्थों को दिखाते हुए कीजिए—

आड़े हाथ लेना, वृहस्पति का कान काटना, आँखें दिखाना, लंबी-चौड़ी हाँकना, दाँत खट्टे करना, कान खड़ा होना, नाक फट पड़ना, पानी-पानी हो जाना, दाँत गड़ाये रहना, टाल-मटोल करना. गाल बजाना, किसी के आगे हाथ पसारना, प्राण मुँह को आना, जली-कटी बोलना, हाथ गरम करना, खाक छानना, पिंड छोड़ना, मुँह लगाना, चुप्पी साधना, दिन रात एक करना।

(६) नीचे लिखे शब्दों के लिंग बताइए—

आँसू, गेहूँ, सादगी, पीठ, झाड़ू, देर, तलाश, लालच, होश, बुढ़ापा, पीपल, मटर, झुकाव, लू, सुभीता, आलू, तकदीर, पड़ाव, चना, बालू, बूँद।

(७) नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध कर लिखें—

(१) हम तुम्हारीं बात नही समझे। (२) बुद्धिमान धैर्यता से काम लेते हैं। (३) मैं, तू और वह चलेगा। (४) यह बात कोई को मत कहना। (५) हम ब्राह्मण को एक गाय दिये। (६) कल की सभा में बहुत लोक एकत्रित हुए थे। (७) राजा और रानी आई थीं। (८) ऐसे विपत्तियों में तुम्हें और राम की छोड़कर जा सकते हैं। (९) सोना सस्ता हो रही है, मगर चाँदी तो मँहगा है। (१०) अच्छी रोटी, अच्छी दाम—सबों को कहाँ मिलता? (११) हमें नहीं बुझाता कि क्या कहूँ।

(८) नीचे लिखे वाक्यों का वाच्य-परिवर्तन कीजिए—

(१) कहिए, इस समय कहाँ से आना हुआ? (२) इनसे काम न होगा। (३) महाराज, आपने बड़ा उपकार किया! (४) रानी

की यह दशा इन आँखों से कैसे देखी जायगी। (५) हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया।

(९) नीचे लिखे शब्दों के विपरीतार्थक शब्दों से अलग-अलग वाक्य बनावें—

अनुकूल, सूक्ष्म, सौभाग्य, पुरस्कार, विनय, उन्नति, व्यर्थ।

(१०) नीचे लिखे शब्दों को पृथक्-पृथक् इस प्रकार वाक्य में प्रयुक्त करें कि उनकी जाति (लिंग) सूचित हो—

धारा, कुशल, लड़कपन, तकिया, मशीन, लूट, झंझट, लाश, अनुभव, कीचड़, कोकिल, किरण, खटमल, शरण, शरबत, मकान, तोप, नींव, बोतल और बयान।

(११) नीचे दिये प्रत्येक वाक्यांश या खंडवाक्य से एक-एक शब्द बनाइए--

जिसके बराबर दूसरा न हो ; जो देखने लायक हो ; वह चीज जो संसार की न हो ; जिसका वर्णन किया जा सके ; इतिहास जाननेवाला ; जिसका उल्लेख किया जा सके ; जिसकी गिनती नहीं हो सके।

(१२) निम्नलिखित शब्द-समूहों के अर्थ-भेद स्पष्ट करें—

कुल, कूल ; शूर, सूर ; शर, सर ; दिन, दीन।

(१३) 'आँख' के साथ क्रियाएँ लगाकर दस मुहाविरेदार शब्द बनावें और उन्हें वाक्यों में प्रयोग करें।

(१४) नीचे लिखे मुहाविरों को अलग-अलग वाक्यों में इस प्रकार प्रयुक्त करें कि उनके अर्थ और प्रयोग स्पष्ट हो जायँ—

कलेजा काँप जाना, मुख उज्ज्वल करना, चंद्रमा चूमना, वीरगति प्राप्त होना, नसीब होना, टन बोल जाना, घी के दिये जलाना, मिट्टी के मोल बिकना, कपाल-क्रिया करना।

(१५) नीचे लिखे शब्दों को खंड-वाक्यों में परिवर्तित करें—

कल्पनातीत, लुभावन, लोकप्रिय, अनहोनी, गलितांग, चंद्रभाल।

(१६) अपने मित्र को एक पत्र लिखिए जिसमें वर्तमान युद्ध से उत्पन्न कष्टों का वर्णन हो।

(१७) निम्नलिखित शब्द-समूहों को नियमानुसार संगठित कर अलग-अलग वाक्य बनावें—

(१) संस्कृत की नहीं भाषा के अब बोलचाल रहने कारण उसके विस्तृत का साहित्य है दुर्लभ लिए हमारे अध्ययन।

(२) हैं गाँधी जी युग पुरुष आते हैं उनमें सुधारक समय-समय पर हमारे धर्म-संस्थापन बीच के लिए जो।

(३) वेदों में युग में वैदिक के भारतवासी प्रमाण हैं यथेष्ट कि आर्य व्यापार समुद्रयात्रा इस बात के लिए करते थे।

(१८) निम्नलिखित वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण करें—

(१) प्रायः देखने में आता है कि गाँवों में से जो नगरों में जीविका आदि के लिए आते हैं उनका जी बहुत दिनों तक संगी-साथी न रहने से घबड़ता है। (२) कभी उन्हें ऐसे लोगों का साथ कर लेना पड़ता है जो उनकी रुचि के अनुकूल नहीं होते। (३) यदि आप बालक को सत्य-भाषण की शिक्षा देना चाहते हैं तो सच बोलने को आकर्षक बनाइए।

(१९) नीचे लिखे विषयों पर पचास-पचास वाक्यों में पृथक्-पृथक् निबंध लिखें—

(१) आधुनिक युग में मनोरंजन के साधन।

(२) देश-देशांतरों के भ्रमण से लाभ।

(३) समाचार-पत्र और उसकी उपयोगिता।

(४) भारतीय समाज में गाय का स्थान।

(५) हमारे देश की कृषि की अवस्था में कैसे सुधार हो ?

(६) ग्राम-जीवन तथा उनके गुण और दोष।

(७) किसी जादूगर के खेल का आँखों-देखा वर्णन

(८) यदि आप अपने राज्य के मुख्य मंत्री होते ।
(९) सिनेमा से लाभ और हानि ।
(१०) किसी मेले का वर्णन ।
(११) विद्यार्थी जीवन में उपयोगिता ।

(२०) नीचे लिखे संदर्भों का हिंदी में अनुवाद करें—

[1]

Self-respect is the noblest garment with which a man cloths himself. This sentiment carried into daily life, will be found at the root of all the vertues, cleanliness, chastity, morality and religion. To think meanly of one's self is to sink in one's own estimation as well as in the estimation of others and as the thoughts are, so will the acts be. Man can not aspire if he looks down, if he will rise he must look up.

[2]

The duty of every boy and every girl at the begining of life is, as far as possible, to choose the suitable work. It is not of course, always possible for a boy or a girl, or man or woman, to get exactly the work which suits them best. In that case it is their duty to take what they can. No really worthy man or woman will stand idle because they cannot find the work they think suits them best. It is when they have a chance to do either what is suitable to them or what is unsuitable, that they should be careful. It is at such times that foolish people begin to consider: "Shall I find this work

lighter, or more genteel, or more easy to shirk ?" Instead, wise people ask, "Shall I make the best of myself at this work, or will that work suit me best ?" Those who ask this and decide accordingly will be those who will doing their duty to themselves and their country.

[3]

The horse was not used to such treatment. It wondered what funny creature it had upon its back It ran faster. John held the horse's mane more tightly than before. This upset the horse which now doubled its speed. The wind struck John's face, filled John's eyes with tears, and, then suddenly, blew John's hat away. John dared not look behind to see what happened to his old but costly hat : nor could he properly look forward because of his watery eyes. Poor John was feeling worried about the false hair (or wig) upon his head. He had no hair of his own. He was hairless or bald. So he had carefully chosen a suitable wig to hide his baldness. He wanted to hold with one hand the shaky wig upon his head, but he had not the courage to do so, for, he felt that with two hands he might somehow manage to hold fast, with only one he might soon kiss the ground. While he was thinking thus, the horse jumped across a bend and John's wig blew off, leaving John completely bald. Soon the button of his coat gave way, and it immediately followed the hat and the wig.

[4]

They then thought of a trick to drive out the robbers. The donkey was to place himself with his forefeet on the window, the dog was to climb on the donkey's backs, the cat on the dog's and the cock on the cat's.

When they had done so they all began to sing together. The donkey brayed, the dog barked, the cat mewed and the cock crowed. Then they crashed through the window into the room. The robbers jumped up at this great noise and were so frightened that they ran away into the wood. The four friends then sat down at the table, and ate their fill.

[5]

Before Ferdinand could say more, Prospero showed himself and said to Ferdinand that he was pleased with him and would show that he was sorry to have treated him so badly by giving him Miranda, who, he said with a smile, was above all praise. Then leaving them, he called his spirit Ariel who told him what he had done with Prospero's brother and the King of Naples when they were worn out with walking about, looking for Ferdinand, and half dead for want of food. Ariel had set before them rich dishes. But just as they were about to eat off them, Ariel appeared before them in the form of a huge spirit with wings, and ate all the dishes.

[6]

Addressing a public meeting at Arrah on July 8 Dada Dharmadhikari declared that Bhoodan Yajna movement was not conceived in the spirit of ideological conquest or to establish any 'ism.' Nor was it initiated to serve as an alternative or antidote to communism. For, he said, communism was not our problem. Our problem was hunger. This movement was intended to fight hunger. But it had been so shaped and conducted as to nurse certain eternal values. It represented a positive attitude, and was thus constructive and full of immense possibilities. An effort put forth simply as a measure of resistance or opposition to some other force was only negative and destructive, and needed a constructive basis to be productive of good and lasting results.

[7]

The Chief Minister Sri S. K. Sinha said that it was intriguing to know that while culture was man's creation yet man had ever remained slave of culture. Like man, social life was also found in animals and even in insects. But there was a gulf of differenec between the life of the two. While the animals worked instinctively, a man was swept by vital rational impulses. The greatest disadvantages to instinct, however was that it became stereotyped and it had no power to resist

new environment. But it was quite different with man whose only desire was to live by conquering existing environments and creating new ones in their places. This was how culture was evolved.

[8]

A gang of river dacoits attacked five country boats carrying sand and stones at Sagardi, one and a half miles from here and robbed the boat-men of their belongings. A fisher-man who raised an alarm from his boat nearby was shot by the dacoits. Several others also received bullet injuries.

[9]

I have met Gandhi—have clasped his hand, have looked into his eyes, have listened to his voice. I have sat in a great public audience, and heard him speak; I have sat alone at his feet and talked with him about many things.

The greatest Indian since Buddha and the greatest man since Jesus Christ to march on this earth, Gandhi was great among all the great of ages past.

When Gandhi spoke, it was India that spoke. When Gandhi acted, it was India that acted. When Gandhi was arrested, it was India that was outraged and humiliated. More truly, I believe, than any other man who has ever lived, "This great Indian was the incarnation of a People's soul."

परिशिष्ट (२)

पारिभाषिक शब्दावली

[A]

abdication—पद-त्याग। राजत्याग।
abide—अनुसरण। पालन। सहन।
abnormal— अ-प्रकृत। असामान्य।
aboriginal—आदिवासी। मौलिक।
above par—अधिक कीमत पर।
abridgement—संक्षेपण।
abscond—पलायन करना, भाग जाना। अपगोपन।
absconder—पलायक, भगोड़ा। अपगोप्ता।
absolute—प्रकेवल। निरुपाधि, निरपेक्ष। अविकल्प, निर्विकल्प। निस्सीम असीम। अबाध, अनियंत्रित। परम पूर्ण।
absolute monarchy—अनियंत्रित या परमैक राज।
absolute power—परम सत्ता।
abstract—सार, सारांश। अमूर्त।
acceptance—प्रतिग्रहण, स्वीकृति।
access—प्रवेश, गति। अभिवृद्धि।
accomplice—अभिषंगी। सहापराधी।
account—खाता। लेखा, संख्यान। विवरण।
accountancy—लेखा-कर्म, संख्यान कर्म।
accountant—लेखापाल, रोकड़िया, आंकिक।
accumulated—पुंजित, संचित।
accumulation—पुंजन, संचय।

accurate—परिशुद्ध, सटीक।
accusation—अभियोग। आरोप।
accused—अभियुक्त।
acquisition—अधिग्रहण, अवाप्ति।
acquittal—विमोचन, विमुक्ति, उन्मुक्ति।
act—कृत्य, कार्य। अधिनियम। विधान।
acting—कार्यकारी, स्थानापन्न। अभिनय।
action—क्रिया, कार्य। कार्यवाही, अभियोग।
active—सक्रिय, सचेष्ट।
additional—अतिरिक्त, अपर।
address—पता, बाह्य नाम। अभिनंदन-पत्र। संबोधन। अभिभाषण।
addressee—प्रेषिती, थापक।
adhoc—एतदर्थ।—committee—एतदर्थ समिति।
adjacent—संलंग्न।
adjourned—स्थगित।—sinedie—अदिन स्थगित।
adjournment—स्थगन।—motion—स्थगन प्रस्ताव
adjusted—संधानित, समंजित, समायोजित।
adjustment—संधान, समंजन, समायोजन।
administration—प्रशासन।
administrative—प्रशासक, प्रशासी।
administrator—प्रशासक, प्रबंधक।
administrator general—महाप्रशासक।
admiral—नावाधिपति।—ty—नावाधिकरण।
admission—ग्रहण। प्रवेश। मान्यता।
adoption—स्वीकरण। दत्तक-ग्रहण।
adulteration—अपमिश्रण, व्यामिश्रण।
adultfranchise—वयस्क या प्रौढ मताधिकार।
advance—अगाऊ, अग्रिम, सत्यंकार।
advice—परामर्श, मंत्रणा। प्रज्ञप्ति। सूचना।
advisory council—उपदेष्ट्री परिषद्।

advocate—अभिभावक, अधिवक्ता, वकील।
aerial—वायविक।—navigation—विमान परिवहण।
aerodrome—हवाई अड्डा।
affidavit—शपथपत्र।
affirmation—प्रकथन, अभिपुष्टि, सत्योक्ति।
agency—अभिकरण, आढ़त।
agenda—कार्यावली, कार्यक्रम।
agent—अभिकर्त्ता, आढतिया।
agrarian—कृषिक-संबंधी, क्षैत्रिक।
agreed—सहमत, सम्मत।
agreement—अनुबंध, संविदा, करारनामा।
aid-de-camp—परिसहाय।
air—वायु।—base—वायु-आस्थान।—craft—विमान।—force—विमान सेना।—route, ways—वायु-पथ।—service—वायुचर्या।—tight—वातापूवेश।
alkaloid—उपक्षार, क्षारोद।
allegience—अनुषक्ति, निष्ठा, देशानुषक्ति।
alliance—संधान, संमैत्री।
allied—व्यासक्त, संबद्ध।
allotment—आवंटन।
allowance—उपजीविका, भत्ता, वृत्ति।
alluvial—जलोढ़।
alternative—अधिदेय, वैकल्पिक। एकांतर।
altitude—उन्नतांश।
amalgamation—एकीकरण, संमिश्रण।
ambassador—राजदूत।
ambulance—आहत-वाहन।
amendment—संशोधन।
ammunitions—गोला-बारूद।
amnesty—निर्मुक्ति। द्रोहि-क्षमा।

analogy—अतिदेश, सादृश्य।
announcement—अभिविज्ञापन।
anti-dated—पूर्व-तिथीय।
antidote—मारक।
apparatus—उपकरण, उपस्कार।
appeal—पुनर्वाद, पुनर्विचार प्रार्थना।
appeasement—संतुष्टीकरण।
appelant—पुनर्वादी।
apparentice—शिशिक्षु।
appropriation—उपयोजन, नियोजन। उपादान।
approver—परिसिद्धक।
approximate—प्रायिक। आसन्न, उपसन्न।
archipelago—द्वीप-पुंज।
armed-force स-शस्त्र बल।
armistice—अवहार, विराम-संधि, युद्ध-विश्रांति।
armoury—शस्त्रागार, शस्त्रकोष।
arrear—अवशिष्ट, बकाया।
articles—अनुच्छेद, वस्तु। निबंध।
assembly—समुदाय। सभा, विधान-सभा।
assessee—निर्धारिती, करदाता।
assessment—अभिनिर्धारण, कर-निर्धारण।
assets—परिसंपद, सकल संपत्ति।
association—पार्षद।
as soon as may be—यथाशीघ्र।
atmosphere—आवह, वातावरण, वायु-मंडल।
atom—परमाणु।—bomb—परमाणु प्रस्फोट।
attached—अनुलग्न। आसंजित।
attachment—आसंग, आसंजन। प्रतिग्रहण, जब्ती।
attestation—सत्यापन, अभिप्रमाण। (वि० सत्यापित
attested—श्रावित, अभिप्रमाणित।

attorney—अभिकर्त्ता; प्रभिकर्त्ता।
auditing—लेखा-परीक्षा, संप्रेक्षण।
auditor—लेखा-परीक्षक, संप्रेक्षक।
authorised—अधिकृत, प्राधिकृत।
authoritative—अधिकारिक, प्राधिकारपूर्ण।
authority—अधिकार। अधिकारिक। अधिकारिकी।
autonomous—स्वायत्तशासी।
average—मध्यम, औसत, मध्य। गड्डु।
aviation—विमान-चालन।
axiom—स्वयंसिद्धि; स्वत:सिद्धि।

[B]

bacteria—शाकाणु।
bail—प्रतिभू, लग्नक, जमानत।
balance—शेष, अवशेष, आधिक्य। संतुलन, समपार्श्वन।
balance sheet—आय-व्यय फलक, तुला-पत्र, तल-पट।
ballot—शालाका। मतपत्र।—box—मतपेटिका।—paper—मत्रपत्र।
bank—अधिकोष।
barometer—ताप-क्रम-यंत्र, वापीडमान।
barter—वस्तु-विनिमय। भांड-प्रति-भांड।
bicameral—द्विआगरिक।
bibliography—संदर्भ-सूची।
bi-lateral—द्विपक्षी, द्विपार्श्व।
bill—प्राप्यक, देयक, विपत्र। विधेयक। विज्ञप्ति।
bill of exchange—विनिमय-पत्र, हुंडी।
bill of lading—वहन-पत्र।
biology—जीवन-विज्ञान।
blockade—समवरोध।
board—गण, समिति।
bond—बंध; बंधपत्र।

bonus—अधिलाभांश ।
book-post—पुस्त-डाक, पुस्त-प्रेष ।
botany—वनस्पति-विज्ञान ।
breach—भंग ।—of law—विधि-भंग ।—of peace—शांति-भंग ।—of trust—न्यास-भंग, विश्वासघात ।
brigade—वाहिनी ।
broadcasting—परिसारण ।
budget—आय-व्ययक, व्याकल्प ।
by-election—उपनिर्वाचन ।
bye-law—उपविधि, उपनियम ।
bye-product—उपफल, उपजात, आनुषंगिक उपज ।

[C]

cabinet—मंत्रिमंडल ।
cable—संदाम ।
cadet—नौछात्र, सेनाछात्र, बालवीर ।
camera—वेश्म, बन्द कमरा ।
calculation—गणना, कलन । परिकलन ।
cancellation—निरसन, विलोपन ।
candidate—आर्थिक, अभ्यर्थी, उमीदवार ।
capitalism—पूँजीवाद ।
capital punishment—प्राण-दंड ।
carbon—अंगारक, प्रांगार ।
card—पत्रक ।
case—अभियोग । विवाद, व्यवहार । स्थिति ।
cash—क्रि० भुनाना । संज्ञा—रोकड़, भुक्ति । वि० रोक, नगद ।
cashier—रोकड़िया, रोकपाल ।
cash-memo—रोक-टीप, विक्रयिका ।
casting vote—निर्णायक मत ।
casual—आकस्मिक ।
casuality—आकस्मिकी, समापत्ति, हताहत ।

casual leave—आकस्मिक अवकाश।
cell—कोश। कोषाणु।
census—गणना। मनुष्य-गणना।
ceremony—अनुष्ठान।
certificate—प्रमाण-पत्र, प्रमाणक।
cess—उपकर।
chairman—अध्यक्ष, सभापति।
chancellor—महामात्र, कुलपति।
charge—अभियोग, आरोप। अवधान, प्रत्यवेक्षण। परिव्यय। भार, प्रभार। शुल्क।—sheet—आरोप-फलक।
chart—रेखाचित्र, चित्र।
check—जाँच-पड़ताल। रुकावट, अवरोध (न), रोक।
chemistry—रसायन-शास्त्र।
cheque—देयादेश, धनादेश।
circle-Inspector—परिधिक।
circumscribed—परिलिखित, सीमाबद्ध।
citizen—जानपद, नागरिक।
civil—नागर। जानपद। अर्थ। सभ्य। लौकिक।—case—अर्थ व्यवहार (विवाद)।—court—अर्थ-न्यायालय, व्यवहारालय।—disobedience—सविनय अवज्ञा।—law—व्यवहार-विधि; जानपद-विधि।—marriage—नागर-विवाह; लौकिक विवाह।—procedure—अर्थ-प्रक्रिया, व्यवहार-प्रक्रिया।—right—जानपद अधिकार।—services—जानपद सेवा।—supplies—जानपद प्रदाय।—war—गृह-युद्ध; प्रजा-युद्ध।—Surgeon—जानपद भिषक्।
claim—अभ्यर्थ; अभ्यर्थन।
clerk—करणिक, लिपिक।
clinic—रुजालय।
closing balance—रोकड़-बाकी, संवरण-शेष।
closure—संवरण।
cognition—संज्ञान।
cohesion—संसक्ति, संलाग।

coinage—टंकन। संटंक।
coincidence—संपात।
collection—संग्रह। संग्रहण, समाहरण।
collector—समाहर्त्ता।
command—समादेश।
commander—समादेष्टा, सेनापति।
commander-in-chief—महा सेनापति।
commerce—वाणिज्य।
commission—आयोग। वर्तन, छूट, बट्टा।
commissionary—प्रमंडल।
commissioner—आयुक्त।
common—सर्वसाधारण। सामान्य।—wealth—समधिराज्य।
communication—यातायात, संचारण।
communique—विज्ञप्ति।
communism—साम्यवाद, साम्यतंत्र।
communist—साम्यवादी, साम्यतंत्री।
community—समुदाय, संस्वामित्व।
company—मंडली, प्रमंडल। पूग। समवाय।
complimentary—अनुपूरक। पूरक।
concurrence—सहमति। संगमन।
concurrent—समवर्त्ती। सहवर्त्ती, संगामी।
condone—संक्रमण, मार्जन।
conductor—परिचालक, संवाहक।
confederation—परिसंघ, प्रसंधान।
conference—सम्मेलन।
confession—स्वीकारोक्ति।
confirmation—दृढ़ायन, समनुरूपण।
congenital—सह-जात, सहज।
conscience—अंत:करण। विवेक, चेतना।
consecutive days—निरंतर दिवस।

consequent—समनुवर्त्ती ।
conservation—संरक्षण ।
consigned—समर्पित, परेषित ।
consignee—परेषग । समर्पिती ।
consignment—चलान, परेषण । समर्पितक । समर्पण ।
consignor—परेषक । समर्पक ।
consistancy—संगति ।
constable—आरक्षी ।
constituency—निर्वाचन-क्षेत्र, प्रतिमंडल ।
constituent Assembly—संविधान सभा ।
contitution—संविधान ।
constitutional—संविधानीय । वैध ।
consul—वाणिज्य-दूत ।
consumer—उपभोक्ता ।
consumption—उपभोग ।
contagious—संक्रामक ।
contemporary—सम-काल ी
contempt—अवमान ।
contents—अंतर्वस्तु ।
contingency—प्रासंगिकी, संभावना ।
contingent—प्रासंगिक, संभाव्य ।
contract—ठेका । प्रसंविदा ।
contract-deed—ठेकापत्र । प्रसंविदा-संलेख ।
contribution—अंशदान । सहांश ।
contributor—अंशदाता । सहांशी ।
convener—संयोजक, समाह्वायक ।
convention—अभिसमय । प्रसभा । रूढ़ि ।
converse—प्रतिलोम, विलोम ।
convex—उन्नतोदर, उदुब्ज ।—lens—उदुब्ज वीक्ष ।
conviction—अभिशंसा (वि० अभिशंसित) । आधर्षण (वि० आधर्षित) । दोषी ठहराना ।

co-operation—सहकार। सहकारिता। सहयोग।—society—सहकारी समिति, सहयोग-समिति।

copied—प्रतिलिपित।

copy—प्रतिलिपि। प्रति।

copy right—प्रतिक-स्वत्व।

corporation—निगम। संघ, प्रमंडल।

corruption—प्रदोष, भ्रष्टाचार।

cosmopolitan—सार्वभौम, विश्वव्यापी।

cost—लागत, परिव्यय।

council—परिषद्।

council of state—राज्य-परिषद्।

counter—गणित, गणना-स्थल।

counter-attack—प्रत्याक्रमण।

counter-balance—प्रतितुलन।

counter-charge—प्रत्यारोप।

counterfeit—प्रतिरूप, जाली, कूट।

coupon—पर्णिका।

court—अधिकरण, न्यायालय, कचहरी।—fee—न्याय शुल्क।—inspector—व्यवहार निरीक्षक।—of wards—प्रतिपालक अधिकरण।—martial—सैनिक न्यायालय।

craft—शिल्प।—man—शिल्पकार।

credit—समाकलन, उधार। प्रतीति, प्रत्यय, साख, पत। श्रेय।—note—समाकलन पत्रक।

creditor—उत्तमर्ण, महाजन।

crime—अपराध, दोष।

criminal—अपराध-शील, पातकी, दंड्य।—law—दंडविधि।—procedure—दंड प्रक्रिया।—tribe—अपराधशील जन-जाति।

cross-examination—प्रति-परीक्षण।

cross-ventilation—सम्मुख वातन।

culture—संस्करण। संस्कृति। पालन।

curator—संग्रहाध्यक्ष ।
currency—चलार्थ , सिक्का ।—note—चल-पत्र ।
current—चलता, चालू , चल, प्रचलित ।
सांप्रतिक ।—account—चल-लेखा ।
custodian—अभिरक्षक, संपालक ।
custody—प्रतिग्रह । अभिरक्षा ।
custom—आचार । वंधान, रूढ़ि ।
customer—ग्राहक ।
customs—निराक्राम्यकर ।—duties—प्रवेश्य-शुल्क ।
cut-motio n—कटौती या कर्तन (का प्रस्ताव)

[D]

dairy—गव्यशाला ।
dam—सेतु, बाँध ।
data—न्यास, सामग्री ।
dead-lock—जिच, गत्यवरोध ।
dealer—पणिता, विक्रेता ।
debit—विकलन, नामे ।
debtor—ऋणी, अधमर्ण ।
decentralization—विकेंद्रीकरण ।
decimal—दशमलव । दशमिक ।
declared—उद्घोषित ।
de-control—विनियंत्रण ।
decreasing return—ह्रासी प्रत्याय ।
decree—जयपत्र । आज्ञप्ति, प्रादेश ।
deed—संलेख ।
defence—प्रतिरक्षा ।
defendant—प्रतिवादी ।
deficit—ऊनता, घाटा, हीनता ।
deflation—विस्फीति । मुद्रा विस्फीति ।

defunct—निश्चेष्ट ।
degree—अंश, मात्रा । अक्षांश । उपाधि ।
delegacy—प्रतिनिधान, प्रत्यायोग ।
delegation—प्रतिनिधायन, प्रत्यायुक्ति, शिष्टमंडल
delimitation—परिसीमन ।
delivered—अभिदत्त, प्रदत्त ।
demand—अभियाचन, अभ्यर्थन, मॉग ।
demobilization—वियोजन, सैन्य-भंजन ।
democracy—लोकतंत्र ।
demonstration—उपपादन, प्रदर्शन ।
demurrage—विलंब-शुल्क ।
deposit—निक्षेप, अभिन्यास , जमा ।
depositor—निक्षेपक ।
depot—आगार, संग्राहागार ।
depreciation—अपकर्षण, अवमूल्यन, उतार ।
depression—अवसाद ।
deputation—प्रतिनिधायन, प्रतिनियुक्ति । शिष्टमंडल ।
deputed—प्रतिनियुक्त ।
deputy—प्रतिपुरुष, उपपुरुष ।
design—परिरूप, प्ररचना ।
designation—अभिधान, नामोद्देश ।
designed—संचिंतित ।
determination—अवधारण, निश्चयन ।
despatcher—प्रेषक ।
de-valuation—अवमूल्यन, अवार्हण ।
development—विकास ।
diary—दैनंदिनी, दिन-पत्री ।
diarchy—द्वैध-शासन ।
dictator—अधिनायक, एकशास्ता ।
dilemma—उभय-संकट ।

diligent—कर्मिष्ठ ।
diminishing returns—आह्रासी प्रत्याय ।
diplomacy—अंन्ताराज्यनीति, नीति, कूटनीति ।
director—निर्देशक, संचालक ।
directory—निर्देशिका ।
discharge—निस्सरण । निस्सारण । स्राव । उत्सर्जन, छोड़ना । अवरोप, अवरोपण । पालन, निर्वाहन । उन्मोचन ।
discharged—उन्मुक्त ।
discount—पूर्व प्रापण, अपहार ।
discretionary—विवेकाधीन ।
discrimination—विभेद । विवेचन ।
dismissal—निस्सारण, वियुक्ति ।
displacement—अभिक्रांति, विस्थापन ।
disposal—विनियोग । यापन । हस्तांतरण ।
dispose of—व्यवस्थापन, संपत्ति उत्सर्जन ।
disposition—विक्रय । शील ।
dissent—विमति ।
dissociation—विषंग ।
dis-solution—विलयन । विलोपन । विघटन ।
distillation—अभिस्रावन ।
distillery—अभिस्रावनी ।
distribution—विभाजन, वंटन । वितरण ।
district—मंडल, जिला ।—board—मडल-समिति, मंडलगण ।—magistrate—मंडलाधीश ।
ditto—तदैव ।
divident—लाभांश । भाज्य ।
division—प्रमंडल, विषम । विभाजन, भाग ।
document—लेख्य, प्रलेख । चीरक ।
documentary—लिखित, प्रलेखबद्ध ।
domicile—अधिवास ।

draft—पाण्डु-लिपि। प्रारूप। हुंडी, विकर्ष।
drain—निर्गम। नाली, उत्सारण
draw—आग्रहण, आहरण, कर्षण।
drawer—आदाता, आहर्ता।
due—दातव्य। प्राप्य।
duplicate—द्वितक, द्विगुणित। प्रतिलिपि।
duty—शुल्क, बलि, कर। कर्त्तव्य।
dynamic—प्रावैगिकी, गति।

[E]

E. & O. E.—लो० वि० शो० (लोप विभ्रमौ शोध्यौं)। भूल-चूक-लेनी-देनी
earmarked—प्रयोजन-विशिष्ट, पृथगुरक्षित।
earnest money—साय, अग्रिम, बेना, सत्यंकार।
economic—आर्थिक, वैत्तिक। अर्थ व्यवस्था।
economics—अर्थ-शास्त्र, अर्थव्यवस्था।
efficiency—कर्म-कौशल, दक्षता।
efficiency bar—कौशल-बाधा।
elastic—तन्यक, प्रत्यास्थ।
elasticity—तन्यता, प्रत्यास्थता।
election—निर्वाचन, चुनाव।
electrical—वैद्युत।
element—भूत, तत्त्व। अवयव।
elucidation—स्पष्टीकरण, विशदीकरण।
embassy—राजदूत का पद, कर्म या आवास।
embargo—अधिरोध, अधिरोधन।
embezzlement—अपभोग, गबन।
emergency—आपात। आकस्मिक संकट। सद्यस्कृत्यता।
emergent—आपातिक। सद्यस्कृत्य।
emigration—परियान, उत्प्रवासन।
employed, employee—सेवायुक्त। अधियुक्त।

employer—अधियोजक, नियोक्ता ।
employment—अधियोजन, सेवायुक्ति ।
enclosed—अनुलग्न, समावृत ।
enclosure—अनुलग्नक, समावृत, बाड़ा ।
encroachment—अतिक्रमण, अतिचार ।
encumbered—भारित, भाररुद्ध ।
endorsement—अनुलेख, पृष्ठांकना ।
endowment—निधि, प्राभृत ।
energy—शक्ति, तेज, उर्जा ।
engine—गंत्र, यंत्र ।
engineering—अभियंत्रणा, अभियांत्रिकी ।
enterprise—उपक्रम ।
entry—प्रविष्ट, लेखी ।
enumerator—प्रगणक ।
environment—प्रतिवेश ।
epidemic—महामारी ।
equation—समीकरण ।
equilibrium—साम्यावस्था ।
equinox—विषुव ।
errata—शुद्धिपत्र ।
errors—विभ्रम ।
establishment—अभिष्ठान । संस्था । स्थापन ।
estate—भू-संपति । भूमि । अवस्थान ।
estimate—आगणन, अनुमान ।
ethics—आचार-शास्त्र, नीति-विज्ञान । शीलाचार ।
evacuee—निष्क्रमिती ।
evaporation—वाष्पीकरण ।
evoluton—उद्विकास ।
exchange—विनिमय ।
exchequer—राज्यकोष ।

excise—प्रातिभागिक ।
excise-duty—प्रतिभाग । उत्पाद कर, मादक कर ।
executed—निष्पन्न ।
execution—निष्पादन । साधन । वधन ।
executioner—वधिक ।
executive—साधनिकी । अधिशासी ।
exemption—उन्मुक्ति, उन्मोचन, छूट । रहितत्व ।
existing—वर्तमान, प्रस्तुत ।
exofficio—पदेन, पदकारणात ।
exparte—एकपक्षीय ।
expedition—अभियान ।
expert—विचक्षण, सुपटु, प्रवर, विशारद ।
exploitation—शोषण, विदोहन ।
explosive—विस्फोटक, उत्स्फोटी ।
export—निर्यात, निष्काम्य, निष्कामण ।
express—आशुग ।—letter—आशुपत्र ।
expression—वाक्य, अभिव्यक्ति ।
extreme—परिसीमा, चरम सीमा ।

[F]

face value—अंकित मूल्य, अभिहित अर्हा ।
factory—निर्माणी, निर्माणशाला ।
facts and figures—तथ्य और अंक ।
fenatic—धर्मांध, कट्टर ।
federation—संघ, संधान । राष्ट्र-मंडल ।
ferry toll—घट्ट-कर ।
feudal system—सामंत-तन्त्र, सामंत-प्रणाली ।
file—पत्रजात । नत्थी, नेस्ती । संचिका ।
finance bill—वित्त-विधेयक, अर्थ-विधेयक ।

finance minister—अर्थ-मंत्री, वित्त-मंत्री ।
finding—अधिगम, अवधारण ।
finger-print—अंगुलि-प्रतिमुद्रा ।
fiscal—राजकोषीय ।
fisheries—मीन-क्षेत्र । मत्स्यपालन ।
folkdance—लोक-नृत्य ।
flexiblle constitution—आनम्य संविधान ।
floating—चल, अस्थायी ।
fluctuate—उच्चावचन ।
foreword—प्राक्कथन ।
form—रूपक । प्रपत्र ।
forwarding—अग्रसारण, अग्रप्रेषण ।
fossil—जीवावशेष, जीवाश्म, निखातक ।
foundry—संधानी, ढलाई घर ।
frieght—वस्तुभाटक, वहन-शुल्क ।
fraction—भग्नांश । भग्नांक, भिन्न ।
frame work—संधार ।
friction—संघर्ष, संघर्षण ।
fund—निचय, कोश ।
fundamental—तात्विक । मौलिक ।
furniture—उपस्कर ।
fusion—विलय, विलयन ।

[G]

galery—दीर्घा ।
gazette—वार्त्तायन । राजपत्र ।
gear—उपयांत्र, दंतिचक्र । सामान्य ।
generator—उत्पादक, जनित्र ।
genuine—जेन्य । प्रामाणिक, सत्य, मौलिक, यथार्थ ।
genus—गण, जाति ।

geology—भूगर्भ-शास्त्र, भौमिकी ।
germination—अंकुरण ।
gland—गिलटी, ग्रंथि ।
glucose—द्राक्ष-शर्करा ।
goods—चलक, पण्य, माल, चलसंपत्ति ।
government—सरकार, शासन, राज्य ।
governor—राज्यपाल ।
gradation—कोटि-बंध ।
grant—अनुदान ।
grant-in-aid—सहायता, सहायक अनुदान ।
graph—बिंदुरेख ।
gratification—अनुतोष, अनुतोषण, परितोष, परितोषण ।
gratuty—आनुतोषिक ।
gravitation—मध्याकर्षण ।
gross—सकल, प्रद्वादशक (१४४)
guarantee—प्रतिश्रुति, प्रत्याभूति ।
guild—श्रेणी ।

[H]

habeas cropus—बंदि-उपस्थापन ।
head—शीर्ष, शीर्षक । मद । प्रधान ।
head constable—अधिरक्षी ।
heart failure—हृद्रोध ।
heterogeneous—विजातीय ।
highway—राज-पथ ।
his excellency—परम श्रेष्ठ ।
holding—जोत, क्षेत्र ।
homecide—नर-हत्या, हत्या ।
homogeneous—सम (सह) जातिक, सजातीय ।
honesty—आर्जव !

honorarium—मानदेय ।
honorary—अवैतनिक, मान्यक ।
honour (a bill or draft)—सकारना, आदरण ।
horticulture—उद्यानकर्म, औद्यानिकी ।
house of poeple—लोक-सभा ।
hydrogen—उदजन ।
hydropholia—जलातंक ।
hypothesis—कल्पितार्थ, परिकल्पना ।
hyphothetic—परिकल्पित ।

[I]

identification—अभिज्ञान । पहचान, विभावन ।
identity card—विभावन-पत्र ।
illusion—अध्यास ।
immigration—आप्रवासन ।
impeachment—महाभियोग, प्रभियोग ।
imperialism—साम्राज्यवाद ।
implication—विवक्षा, उपलक्षण ।
import—आयात, प्रवेश्य ।
impression—चिह्न । धारणा । छाप ।
inactive—अक्रिय, निष्क्रिय, अकर्मण्य ।
inauguration—उद्घाटन ।
incendiary—दाहक ।
in-charge—अवधायक, प्रभारी ।
incidence—अनुषंग, आपात ।
incorporated—निगमति, श्रेणीकृत । अंतर्भावित ।
incorporation—निगमन, श्रेणीकरण ।
incurred—उपगत ।
indemnity—क्षतिपूर, क्षतिपूर्ति ।
indent—व्यादेश ।

index—देशना
induction—अनुगम।
industrial—औद्योगिक।
industrialization—औद्योगीकरण।
inferior service—अवर या अवकृष्ट सेवा।
inflation—स्फीति। मुद्रा-स्फीति।
inheritance—उत्तराधिकार, दाय, रिक्थ।
initial—आद्याक्षर।
injunctions—समादेश।
inland—अंतर्देशीय, देशाभ्यान्तर।
in-operative—अक्रियमाण, अप्रवर्त्ती।
insolvent—शोधाक्षम।
instalment—किस्त, खंडिका।
instinct—सहज बुद्धि, नैसर्गिक प्रवृत्ति।
institute—संस्थान, संस्था।
instruction—अधिसूचना, हिदायत, निदेश।
instrument—उपकरण, यंत्र। विलेख।
interim—अंतरिम, मध्यवर्त्ती।
internal—आंतर, आभ्यंतर, आंतरिक।
international—अंतर्राष्ट्रिय, अंताराष्ट्रीय।
internment—अंतरायण।
interpretation—अर्थापन, निर्वचन।
interval—अंतराल, अंतर, मध्यान्तर।
invention—उपज्ञा, आविष्कार।
investment—अधिष्ठान, विनियोग।
invoice—बीजक।
irrelevant—अप्रासंगिक, असंगत।
issue—निकासी, निर्गम। साध्या। अंक (सामयिक पत्रा आदि का)। संतान। प्रश्न।
item—पद।

[J]

jailor—कारागारिक।
job—कृत्यक।
judge—विचारपति, न्यायाधिकारी।
judgement—विचारणा, न्याय-निर्णय।
judicial—वैचारिक, न्यायिक।
jurisdictions—अधिक्षेत्र, अधिकार-क्षेत्र।
jury—अभिनिर्णायक।
jury, verdict of—अभिनिर्णय।
justice—न्याय-मूर्ति, न्यायाधीश। न्याय।

[K]

keeper—रक्षक, पालक।
kidnapping—अपहरण, बालापहरण।
kingdom—सर्ग। राज्य।

[L]

label—अंकितक, नामपत्र।
laboratory—प्रयोग-शाला।
labour union—श्रमिक-संघ, श्रम-संघ।
laissez-faire—यथेच्छा-कारिता।
land—भूमि।—aquisition act—भूमि अवाप्ति अधिनियम।—records—भौमिक अभिलेख।—revenue—भू-राजस्व, भूआगम।—tenure—भू-धृति, भूधारणाधिकार।
lapse—व्यापगमन।
lapsed—व्यपगत।
law—नियम, विधि।—abiding—विधि-चारी। breach of law—विधि-भंग।—of contract—संविदा प्रविधि।—of evidence—साक्ष्य प्रविधि।
lawyer—विधिज्ञ, व्यवहारज्ञ, वकील।

leaflet—पर्णक ।
lease—पट्टा, पट्ट ।
ledger—प्रपंजी ।
legacy—उत्तर-दान, पत्ररिक्थ ।
legal—विधिक, वैध ।—action—वैध-क्रिया ।—jurisprudence—वैचारिक विज्ञान ।—proceeding—विधिक व्यवहार ।
legation—दूतावास ।
legislation—विधान ।
legislative—विधायी, विधायिनी ।—assembly—विधान-सभा ।
legislature—विधान-मंडल ।
letter-box—पत्र-पेटिका ।
letter of credit—प्रत्यय-पत्र ।
lavy (a tax)—अवाप्ति । कारारोपण ।
liability—देन, देय । दायित्व । देयधन, ऋण ।
liaison—ग्रंथन, संसहकारिता ।
lift—उत्थानक ।
license—अनुज्ञापत्र ।
limited—परिमित, सीमित ।
liquidation—अपाकम, निस्तारण ।
liquidation of debt—ऋण निस्तारण या अपाकरण ।
literacy—साक्षरता ।
lithograph—प्रस्तर-मुद्रण ।
livestock—पशुधन ।
living allowance—जीवन-वृत्ति ।
lobby—प्रकोष्ठ, सभाकक्ष ।
local—स्थानिक, स्थानीय ।—board—स्थानिक परिषद् या समिति ।—bodies—स्थानिक संस्थाएँ ।—self-government—स्थानिक स्वशासन ।—tax—स्थानिक-कर ।
localisation—स्थानीयकरण । स्थान-सीमन ।
locomotive—चलित्र ।

loudspeaker—विपुलभाष, ध्वनिविस्तारक।
lower—अधस्तन अधर।—house—अवरागार।—school—अवर पाठशाला।
loyalty—निष्ठा। राजभक्ति।
lumpsum—पिंड-राशि।

[M]

machine—यंत्र।—shop—यंत्रशाला।
magistrate—दंडाधिकारी।
magnification—विवर्द्धन।
maintenance—पालन-पोषण, भरण-पोषण।
majority—वयस्कता। बहुमत।
malaria—हिम-ज्वर।
mandatory—विधायक।
manipulation—प्रहस्तन, छल-साधन।
manor—स्वामिभू।
manuscript—पांडु-लिपि।
margin—उपांत, पार्श्व, मात्रा। उधार-प्रतिभूति-अंतर।
marginal—उपांतस्थ, उपातीय, सीमात।
mass—पुंज। समूह।
materialism—देहात्मवाद, भौतिकवाद।
maternity—मातृत्व, प्रसूति।
mechanical—यांत्रिक।
market—विपणि, बाजार, मंडी, हाट।
mechanism—रचना, प्रक्रिया।
mediator—मध्यस्थ।
medical—चिकित्सक, आयुर्वैदिक, भैषजिक।
memo—पत्रक, स्मार।
memorandum—अनुबोधक। आलोक-पत्र। स्मृति-पत्र, स्मार-पत्र।
memorial—स्मारक, आस्मारक।
mensuration—क्षेत्र-मिति।

mental deficiency—मनोवैकल्य ।
merchandise—पण्य-द्रव्य, वाणिज्य-द्रव्य ।
merger—विलय, संविलन, विलयीकरण ।
meteorology—अंतरिक्ष विज्ञान, घनवातिकी विज्ञान ।
microphone—ध्वनि-क्षेपक-यंत्र ।
microscope—सूक्ष्म-दर्शक-यंत्र ।
middle-man—मध्यस्थ ।
mill—निर्माणी, पेषकी, चक्की ।
mine—खान, खनि । सुरंग ।
minerology—खनिज-विज्ञान ।
ministerial—कारणिक ।—servant—कर्मचारी ।—service—कारणिक सेवा
minor—अवयस्क, अल्प-वयस्क, लघु ।
minorities—अल्प-मत । अल्प-संख्यक । अवयस्कता ।
mint—टकसाल, टंकशाला ।
minus—वियुक्त, ऋण ।
minutes book—वृत या कार्यवाही पुस्त ।
mis-appropriation—आपहरण, गवन ।
mis-behaviour—कदाचार ।
miscellaneous—प्रकीर्ण, फुटकर ।
mobile—चलिष्णु ।
model—प्रतिमान, प्रतिकृति, निदर्शन ।
modification—परिष्करण ।
monarchy—राजतंत्र ।
monetary—आर्थिक, मौद्रिक ।
monopoly—एकाधिकार ।
monotype—एक मुद्र ।
motion—गति । प्रस्ताव ।
multi-purpose—बहुप्रयोजन, बहुमुख ।
municipal commissioner—नगरपार्षद ।
municipality—नगर-परिषद्, नगर-पालिका ।

museum—संग्रहालय, अजायब घर, कौतुकालय।
mutation—नाम-चढ़ाई, नामांतरण; उत्परिवर्तन।

[N]

narration—समाख्यान, व्याख्या।
national—राष्ट्रीय। जातीय।
nationality—राष्ट्रीयता। जातीयता।
naturalised—जानपदकृत।
naval force—नौ-शक्ति।
navigation—नौ-गमन, नौवहन परिवहन।
navy—नौ-सेना।
nerves—स्नायु, संवेदन-सूत्र।
net—शुद्ध।
nomination—नामांकन, नामनिर्देशन।
non-bailable—अलग्नदेय; अलग्नक-मोच्य।
non-cognizance—अनुत्प्रेक्षण।
non-recurring—अनावर्तक।
normal—प्रकृत, प्रसामान्य।
notation—स्वर-लिपि, संकेत।
note—टीप, टिप्पणी। आलोक। पत्रक।
notified area—विज्ञापित क्षेत्र, अधिसूचित क्षेत्र।
nuisance—कंटक।
null and void—प्रवृत्तिहीन, व्यर्थ, मोघ।
nullify—मोघीकरण, निष्फल करना।
nurse—उपचारिका।

[O]

oasis—मरु-द्वीप, शाद्वल।
obligation—आभार, दायित्व, ऋण, कर्त्तव्य।
observation—पर्यवेक्षण। वेध।
observatory—वेध-शाला।

occupancy—आभोग ।
odd—वियुग्म, विषम ।
offence—अपराध, दोष ।
offer—प्रस्ताव करना ।
offeree—प्रस्तावितो ।
office—कार्यालय । पद ।
office-in-charge—अवधायक अधिकारी ।
officiating—स्थानापन्न, निर्वाहणिक ।
off-print—अधिमुद्रण ।
oligarchy—अभिजात-तंत्र ।
omission—अकरण, लोप, लोपन । चूक, छूट ।
opening balance—आद्य-शेष, प्रारंभण-शेष ।
operation—व्यापार, पणन । चीर-फाड ।
operative—क्रियमाण, प्रवर्ती ।
opposition benches—विरोध-पीठ, प्रतिपक्ष-पीठ ।
optional—ऐच्छिक, वैकल्पिक ।
order sheet—आज्ञा-फलक ।
ordinance—अध्यादेश ।
organic—सेंद्रिय, जैव ।
organisation—संघटन, संगठन ।
original—नव, नवीन । मौलिक, मूल ।
originator—प्रवर्त्तक ।
orthodox—परंपरानिष्ठ ।
outerfoil—विपर्ण, वाह्य पर्ण ।
out-of-date—दिनातीत, गतकाल ।
over-population—अति-प्रजनन ।
over-time—अधिसमय ।
overseer—अधिकर्मी ।
ovum—डिंब । डिंबाणु ।
oxygen—जारक, दाहक ।

[P]

pacifism—शांतिवाद ।
pack, packing—संवेष्टन ।
packet—संवेष्टिका ।
pact—पाशक ।
pad—चल, लेखन-चय ।
paid—दत्त, परिदत्त ।
painting—रंजन, रंगलेप ।
panel—तालिका ।
panic—समुद्वेग, आतंक । भगदड़ ।
parachute—छतरी ।
parasite—पर-जीवी, परांग-भक्षी ।
parcel—पोट, पोटली ।
parity—समाहृता ।
parliament—संसद ।
parliamentary—सांसद ।
pass—पारणपत्र । प्रवेशपत्र । प्रवेशिका । गिरि-संकट, दर्रा । पार होना या करना ।
pass book—प्रतिलेखा, ग्राहक-पुस्तिका ।
passive—निष्क्रिय, निश्चेष्ट, अकर्मण्य ।
passport—पारपत्र ।
patent—एकस्व ।
pattern—प्रतिकृति ।
payment order—दानादेश, देयादेश, शोधनादेश ।
peace and order—योग-क्षेम ।
peace, breach of—शांति-भंग ।
penalty—दंड, शास्ति ।
pending—अनुलंबित, लंबित, सापेक्ष्य, विचाराधीन ।
peninsula—अंतरीप ।
pension—अनुवृत्ति, उत्तर-वेतन, पूर्वसेवा-वेतन ।
peon—पत्रवाह ।

peon book—पत्रवाह-पंजी ।
perennial—बहुवर्षी । वर्षानुवर्षजीवी ।
periodic—सत्रिक, नियतकालिक ।
permanent advance—स्थायी अग्रिम ।
perpetual—शाश्वत ।
personal—वैयक्तिक ।
perusal—अवलोकन ।
perverse—प्रतीप, विकृत ।
perversion—विकृति ।
pessimism—निराशावृत्ति । पापिष्ठतावाद ।
petition—याचिका, प्रार्थना-पत्र ।
philosophy—दर्शन-शास्त्र ।
phobia—आतंक ।
photograph—भाचित्र ।
photography—भाचित्रण ।
physics—पदार्थ-विज्ञान । भौतिक-विज्ञान, भौतिकी ।
pin—कंटिका, शूक, सूची ।
pirate—जल-दस्यु ।
planning—योजना, उपक्रमण ।
plantiff—वादी ।
pleader—अभिवक्ता ।
plot—खंड । कथा-वस्तु ।
police—आरक्षी ।
politician—राजनीतिज्ञ ।
polity—राज-तंत्र ।
polling—मत-दान ।
polygamy—बहु-विवाह ।
possession—अधिकार । भोग ।
post—दंड, स्तंभ । पद । डाक, प्रेष ।—bag—पत्र-स्यून, डाक का थैला । —box—पत्रपेटिका । —card—प्रेष-पत्रक । —dated chaque—

उत्तरतिथीय धनादेश। —man—पत्रवाहक। —office—प्रेषालय
—mortem— शव-परीक्षा।

poster—प्रज्ञापक।

posting—स्थापन, प्रवेशन। प्रेषण, भेजना।

potentiality—शक्यता।

power of attorney—अभिकर्त्ता-पत्र या अधिकार।

preamble—अर्थ-वाद।

predecessor—पूर्वाधिकारी।

preference—अधिमान, पूर्वाधिकार।

pre-historic—प्रागैतिहासिक।

prejudice—विधारण, प्रतिकूलता।

preliminary—प्रारम्भिक।

premium—प्रव्याजि।

pre-paid—पुरःदत्त, पूर्व-दत्त।

preparation—उपक्रम। सज्जा, तैयारी।

pre-payment—पुरःदान, पूर्व-शोधन।

prerogative—आदि-मान, परमाधिकार।

prescribe—प्रदेशन। विनिधान। निर्धारण।

prescribed—प्रदिष्ट। विहित। विनिहित।

prescription—योग। प्रदेशन, विनिधान।

preside, to—अध्यासन।

presiding—अध्यासीन।

presiding officer—अधिपति, अध्यासी अधिकारी।

presumption—परिकल्पना।

prima facie—ऊपर से देखने पर।

prime—प्रधान।—minister—प्रधान मंत्री।

principle—सिद्धांत। प्रनियम।

printing press—मुद्रणालय।

priority—प्राथमिकता, पूर्वता।

privation—वंचन।

privilege—विशेषाधिकार ।
privileged—प्राधिकृत ।
probable—संभाव्य, संभावित ।
probation—परिवीक्षण, परिवीक्षा ।
problem—संपाद्य । समस्या ।
procedure—प्रक्रिया, कार्यप्रणाली ।
process—प्रक्रिया । आदेशक । विधा ।
proclamation—उद्घोषणा ।
production—उत्पत्ति । उत्पादन ।
profession—वृत्ति, व्यवसाय, वाणिज्य ।
professor—प्राध्यापक ।
prohibition—प्रतिषेध ।
prohibitory—निषेधक, प्रतिषेधक ।
project—प्रक्षेप । परियोजना । योजना ।
proletariat—श्रमजीवी, सर्वहारा ।
promissory note—विश्रुति-पत्र । प्रतिज्ञा-अर्थपत्र ।
promotion—उन्नयन । पदोन्नति, प्रोन्नति ।
prompt—सत्वर ।
promulgation—प्रचारण । प्रवर्त्तन ।
property—गुण । संपत्ति ।
prorogue—समावसान करना ।
prospectus—प्रविवरण ।
protectorate—रक्षित राज्य ।
provident fund—संभरण-निधि । प्रावधायी, नीविका ।
provision—निर्देश । संभरण । प्रावधान ।
psychology—मनोविज्ञान ।
public place—महाभूमि, सार्वजनिक स्थान ।
public works—लोक-वास्तु, लोक-कर्म ।
purposely—कामतः ।

[Q]

qualitative—गुणात्मक ।

quantitative—मात्रिक, परिमाणात्मक ।

quantum—प्रमात्रा, विशेष मात्रा ।

quasi—आभास ।

quorum—इयत्ता, गणपूरक ।

quota—यथांश, अभ्यंश ।

quotient—भाग-फल, लब्धि ।

[R]

race—जाति, प्रजाति ।

radicalism—चरम-पंथ, उन्मूलनवाद ।

radio—वितंतुक, नभोवाणी ।—broadcast—वितंतु-परिसार ।

railway—अयोमार्ग, संयान ।

ratification—अभिपोषण, संशोधन ।

ratio—निष्पत्ति, अनुपात ।

ration—अनुभक्तक, अन्नमात्रा ।

rationalism—बुद्धिवाद, परिमेयवाद ।

rationing—अनुभाजन ।

reader—उपस्थापक । पाठक, वाचक । पाठावली ।

reading—पाठ । अधिगमन । वाचन । व्याकृति ।

ready made—निष्पन्न ।

realism—यथार्थवाद ।

rebate—छूट, अवहार ।

receipt—प्राप्ति, प्राप्तिका, रसीद ।

receiver—प्रतिग्राहक, आदाता, प्रापक ।

recess—मध्यावकाश, विश्रांति ।

recommendation—अनुशंसा, अनुरोध ।

recording—अभिलेखन ।

record-keeper—अभिलेख-पाल ।

recovery—प्रत्यादान, आरोग्य-लाभ ।

recruit—रंगरूट।
recurring—आवर्त्तक।
reduction—छँटनी (व्यक्तियों की)। छूट, कमी (मूल्य, देन आदि की)।
प्रह्रासन।
re-enactment—पुनर्विधायन।
referee—निर्णायक, निर्देश्य पुरुष।
referred—अभिदिष्ट, निर्दिष्ट।
reference—अभिदेश, निर्देश, प्रेषण, भेजना।
reformatory—सुधारालय; चरित्रशोधगृह।
refund—प्रतिनिचयन, प्रत्यर्पण।
refugee—शरणार्थी।
register—पंजी। पंजीयन, निबंधन।
registered—निबंधित, निबद्ध।
registrar—निबंधक। कुल-सचिव।
registration—निबंधक, पंजीयन।
regulation—अधिनियम, आनियम।
regulator—नियामक।
re-habilitation—पुनर्वासन।
rehearsal—प्राभ्यास।
rejected—अपासित, अस्वीकृत।
remark—टिप्पणी। शंसिका।
relative—सापेक्ष, आपेक्षिक।
remission—अवसर्ग, छूट, परिहार, मोक।
renaissance—नवाभ्युत्थान, नवोत्थान।
renewal—नवकरण, नवकार।
rent—भाटक, भूभाटक, लगान, भाड़ा।
repeal—विकर्षण, विखंडन।
replacement—प्रतिस्थापन।
republic—गण-तंत्र, गणराज्य।
requisition—अधियाचन।

research—गवेषणा, अन्वेषण ।
reservation—व्यासेध पश्चाद्धृति । संचयन, आरक्षण ।
resolution—प्रस्ताव । संकल्प ।
resources—संबल ।
restoration—पुनरुद्धार । प्रत्यानयन ।
resumption—पुनर्ग्रहण । प्रत्याहार । पुनरारंभ ।
retired—अवसर-प्राप्त, विरत ।
return—परिलेख । प्रतिदान, प्रत्याय । विवरण ।
returning officer—निर्वाचन अधिकारी ।
revenue—राजस्व, आगम ।
revenue court—माल-न्यायालय, राजस्व-न्यायालय ।
revolution—क्रांति, परिद्रोह ।
right wing—दक्षिण पक्ष ।
rigid—परिदृढ, अनानम्य ।
roll—नामावलि ।
royal seal—राज-मुद्रा
royalty—स्वामित्व, अधिकार-शुल्क ।
ruling—व्यवस्था; निर्णय ।
rural—ग्राम्य ।

[S]

safeguard—अभिरक्षा, अभिरक्षण ।
sanction—अनुज्ञप्ति, अनुज्ञा, सम्मोदन ।
sanitation—शुचिता ।
sanitorium—स्वास्थ्य-निवास ।
scarcity—स्वल्पता; दुष्प्राप्यता ।
schedule—अनुसूची ।
scrutiniser—संपरीक्षक, परिनिरीक्षक ।
scrutiny—संपरीक्षण, परिनिरीक्षण ।
seconding—समर्थन ।
secret—गूढ, गुह्य ।

secretariate—सचिवालय।
secretary—सचिव।
secular—ऐहिक, लौकिक, धर्म-निरपेक्ष।
security—प्रतिभूति, क्षेम।
sedition—राज-द्रोह।
select committee—प्रवर समिति।
selection—प्रवरण।
seniority—ज्येष्ठता।
session—सत्र।—court—सत्र-न्यायालय।
set aside—उत्सादन, अन्यथा करना।
settlement officer—आवंधक अधिकारी।
sexual—यौन, लैंगिक। मैथुनिक।
sexuality—कामिता, यौनता।
shelf—निधाय।
shell—कवच। गोला (तोप का)।
short-hand—संकेत-लिपि, आशु-लिपि।
silver screen—रजत-पट।
simplification—सरलीकरण।
sine die—अनियत दिन पर्यंत।
sketch—आलेख्य। रूप-रेखा। रेखा-चित्र।
socialism—समाजवाद।
sociology—समाज-शास्त्र।
solar system—सौर जगत।
sole—एकक, एकल।
source—स्रोत, साधन।
sovereign—परम सत्ताधिकारी।
specialist—विशेषज्ञ।
specimen—प्रतिरूप, नमूना।
speculation—सट्टा। परिकल्पना।
speculator—सट्टेबाज। परिकल्पक।

spokesman—प्रवक्ता ।
stabilisation—स्थिरीकरण, स्थायीकरण ।
staff—कर्तृक, कर्तृ-वर्ग, कर्मचारिवर्ग ।
stamp—अंक-पत्र । मुद्रांक ।
standard—मानक, प्रमाप ।
standing committee—स्थायी-समिति ।
starch—श्वेत-सार, मॉड़ ।
state language—राज-भाषा ।
statement- कथन, वक्तव्य, आवेदन ।
statesman—राज-पुरुष ।
static—स्थैतिक, स्थायी ।
station—अवस्थान ।
stationery—लेखन-सामग्री ।
statistics—आँकडे । सांख्यिकी ।
statusquo—यथापूर्व, यथास्ति ।
statute—प्रविधान, परिनियम ।
statutory—प्राविधानिक । वैधानिक ।
stipend—वृत्तिका ।
stock—भांडार । स्कंध । राजऋण । सामग्री ।
stock-book—भांडार-पंजी, स्कंध-पंजी ।
store—संभार, भंडार ।
stores—कोष्ठागार, आगार-भांड, गोला ।
strata—स्तर ।
sub—अनु, उप । —caste—अनुजाति । —clause—अनुखंड। —committee — उपसमिनि । —deputy inspector — उप-प्रति-निरीक्षक । —division—उपविषय, अंतर्भाजन । उपधारा ।
subject—विषय । प्रजा ।
subject committee—विषय-समिति ।
sub-marine—डुबकनी, पन-डुब्बी ।
subterranean—अंतर्भौम ।

succession—उत्तराधिकार । उत्तरोत्तरता ।
summon—आकारक । आह्वान ।
super charge—अधिभार । अधिशुल्क ।
superintendent—अधीक्षक ।
superseded—अधिक्रांत ।
supersession—अधिक्रमण ।
supervision—पर्यवेक्षण ।
supervisor—पर्यवेक्षक ।
supplement—पूरक । क्रोड़-पत्र ।
supplementary—अनुपूरक ।
supplied—समायुक्त, प्रदत्त ।
supplier—समायोजक, प्रदायक ।
supply—समायोग, प्रदाय ।
surcharge—अधिभार ।
surplus—बचत । अतिरेक, आधिक्य ।
survey—पर्यवलोकन । भू-मापन ।
surveyor—भू-मापक । भूमीक्षक ।
survival—अति-जीवन, परिजीवन ।
suspended—अनुलंबित, निलंबित ।
suspense—अनुलंब, । उचंत ।—account—अनुलंबखाता, उचंत ।
syndicate—अभिषद् ।
synthesis—संश्लेषण, संवाद ।
synonym—पर्याय ।
synopsis—रूपरेखा, संक्षेप ।
table—सारणी । पटल ।
tangible—मूर्त ।
technical—पारिभाषिक । औद्योगिक । व्यवसायिक । प्रावैधिक ।
technique—प्राविधि ।
telegram—दूरसंदेश, दूरलेख ।
telephone—दूरभाष ।

telescope—दूरेक्ष ।
television—दूरदर्श ।
tender—उपेक्षप । निविदा ।
term—अवधि । पण । पद । सत्र ।
terminal—सत्रिक । आंतिक । सावधि ।—tax—आंतिक कर, सीमा कर ।
tax—आंति कर, सीमा कर ।
theorem—उपपाद्य ।
ticket—प्रवेशपत्र, टिकट, पत्रक।
time table—समय सारिणी ।
title—आगम । उपाधि । शीर्ष ।
toll-tax—मार्ग-कर ।
tracing—प्रत्यंकन ।
tractor—हल-यंत्र ।
tradition—अनुश्रुति । परंपरा ।
tragedy—दुर्विपाक । वियोगांत ।
training—प्रशिक्षण ।
tranquility—प्रशांति ।
transferee—अंतरिती, हस्तांतरिती ।
transference—अंतरण । बदली । हस्तांतरण ।
transferred—अंतरित,हस्तांतरित, स्थानांतरित ।
transition—संक्रमण, अंतर्वर्तन ।
transit pass—पारनयन अनुमतिपत्र ।
transmitter—परिषक ।
transparent—पारदर्शक ।
transport—परिवहन, निर्वासन ।
treasurer—कोषाध्यक्ष ।
treasury—कोषागार ।
treasury benches—राज-पीठ ।
tresspass—अपचार । अनिधिकार-प्रवेश ।
trial—परिदर्शन । परीक्षण । अन्वीक्षा ।
tribunal—न्यायाधिकरण ।

truce—विराम-संधि ।
trust—न्यास । प्रन्यास ।
tube-well—नल-कूप ।
type-writer—टंकण-यंत्र । मुद्र लिखा ।

[U]

ultimatum—अंतिमेत्थम ।
ulta-violet—पारनील लोहित ।
ulta-vires—शक्तिके परे ।
undertaking—उपक्रम ।
uniformity—एक-रूपता ।
uni-lateral—एक-पक्षीय ।
unit—मात्रक, एकाई, इकाई ।
united nations organisation—संयुक्त राष्ट्र-संघ ।
universal—सार्विक, सार्वभौमिक, विश्वजनीन ।
un-parliamentary—असांसद ।
up-to-date—दिनाप्त । आजतक ।
usuge—प्रथा, रीति ।
usual—प्रायिक ।

[V]

vacancy—रिक्ति ।
vacation—विराम-काल । दीर्घावकाश ।
vacuum—शून्य ।
valid—मान्य, समर्थ, विध्यानुकुल ।
valuation—मूल्यन । अर्हापण ।
value—मूल्य, अर्हा, अर्घ्य ।
verdict (of jury)—अभिनिर्णय ।
verification—सत्यापन ।
vested interest—अधिष्ठित या निहित स्वार्थ ।
veterinary—शालिहोत्रीय । पशुचिकित्सा ।
veterinary doctor—शालि होत्री ।